Gandhi Memorial College Of Education

ISSN 2231-0460

प्रगतिशील

वसुधा

90

प्रगतिशील लेखक संघ का प्रकाशन
जनवरी-मार्च 2012

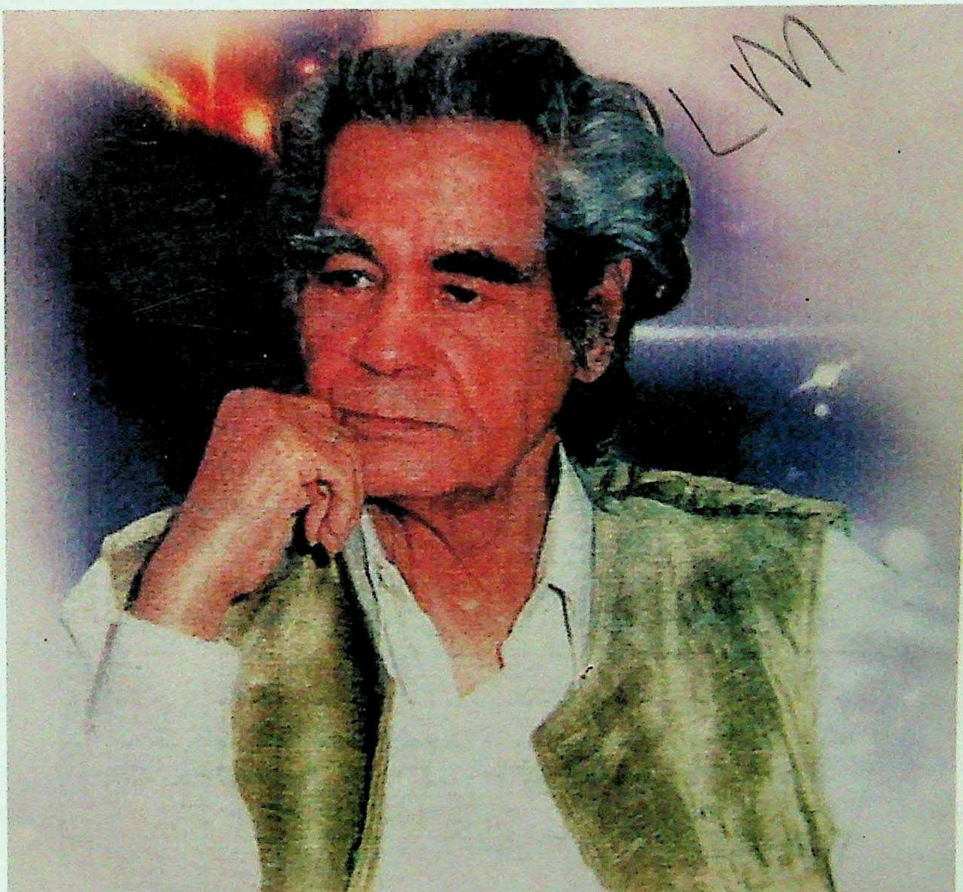

अली सरदार जाफ़री

علی سردار جعفری

Ali Sardar Jafri

1912 - 2000

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

Remembrance

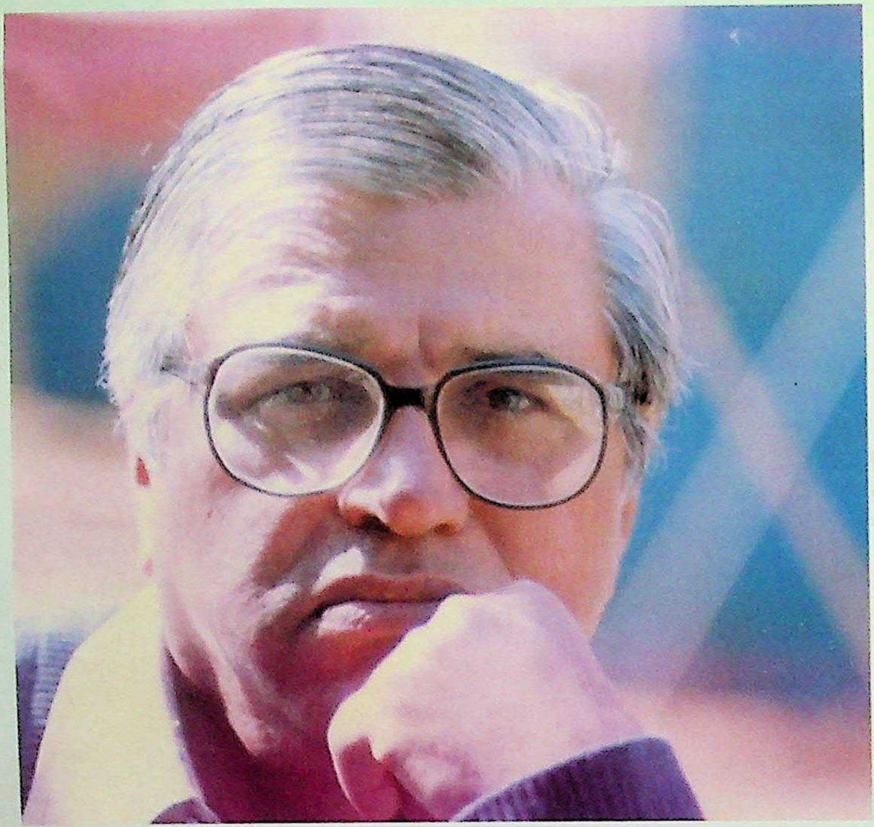

Kamla Prasad ji

14.02.1938 to 25.03.2012

He was my north my south my east and west
My working week and my Sunday rest
My noon my midnight my talk my song
We thought he would be forever but we were wrong

W.H. Auden

Space Contributed

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रगतिशील

वसुधा -90

वर्ष-8 संख्या-2
MPHIN/2005/14693
ISSN 2231-0460

संस्थापक सम्पादक
हरिशंकर परसाई

सम्पादक
स्वयं प्रकाश
राजेंद्र शर्मा

सहयोग
ओम भारती

भीतरी रेखांकन
के. रवीन्द्र

अग्निशेखर और क्षमा कौल द्वारा यह पुस्तक सप्रेम भेंट

G.M. College of Education Raipur, Bantalab Jammu
Acc No. 4009
Dated. 16.12.2023

संपादकीय कार्यालय
सम्पादक, प्रगतिशील वसुधा
मायाराम सुरजन स्मृति भवन
शास्त्री नगर, पी.एण्ड.टी. चौराहा, भोपाल (म.प्र.) 462003
टेलीफैक्स : 0755-2773290, मोबाइल : 09425392954, 09425018290
ई-मेल : vasudha.hindi@gmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सम्पादकीय सम्पर्क

स्वयं प्रकाश

3/33, ग्रीन सिटी, ई-8 अरेरा कॉलोनी भोपाल,

फोन-2562960 मो. 94250-18290

राजेन्द्र शर्मा

एम-24, निराला नगर, दुष्यंत मार्ग, भदभदा रोड, भोपाल-462003

फोन : 2761253 मो. 94253-92954

vasudha.hindi@gmail.com

शब्दांकन : राजेश प्रजापति मो. 99936-11459

मुद्रक : महेन्द्र गगन, पहले पहल प्रिंटरी, भोपाल, फोन 2555789

निवेदन

प्रगतिशील वसुधा के एक वर्ष में चार संकलन प्रकाशित होते हैं। व्यक्तिगत ग्राहक इन चारों संकलनों को डाक द्वारा प्राप्त करने के लिए 250/- रुपये तथा संस्थाएं 450/- रुपये की सहयोग राशि का भुगतान 'प्रगतिशील वसुधा' भोपाल के नाम से देय डिमांड ड्राफ्ट के रूप में ही करें। चैक भेजने की दशा में बैंक चार्ज 35/- रु. अतिरिक्त शामिल करें। बिना नाम पते के कोरे संदेश कूपन वाले मनिआर्डर से हमें व्यवस्थापकीय और अन्य शहरों के चेक से हमें आर्थिक असुविधा होती है।

नमूने की प्रति या किसी विशेष अंक को मँगाने के लिए पत्र के साथ पचास रुपए के डाक टिकिट अवश्य भेजें। पुराने अंक उपलब्धता के आधार पर ही भेजे जा सकेंगे। माँग के अनुरूप अंक उपलब्ध न होने पर अगला अंक भेज दिया जायेगा।

'वसुधा' का एक बचत बैंक खाता इलाहाबाद बैंक, टी.टी. नगर ब्रांच भोपाल में है। हमारे सहयोगी अन्य शहरों से भी इलाहाबाद बैंक में हमारे खाते में अपनी सहयोग राशि सीधे जमा कर सकते हैं। खाता क्र. 20437443131 है। राशि जमा करने के उपरांत कृपया एक पोस्ट कार्ड से हमें सूचना अवश्य दें।

कृपया सभी पत्र व्यवहार सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही करें तो हमें सुविधा होगी। सहयोग बनाए रखें।

एक प्रति का मूल्य : 50/- रुपये मात्र

विदेश में : $ 10

प्रगतिशील वसुधा का यह अंक अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है।

इस तकनीकी सहयोग के लिए हम युवा कथाकार पंकज सुबीर के आभारी हैं।

http://pragatisheelvasudha.blogspot.in

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनुक्रम

सम्पादकीय

स्वयं प्रकाश - 5

श्रद्धांजलि स्मरण

शोर-गुल एक धीमी आवाज़: विजय कुमार - 12

एक बेहद भरोसेमंद और प्रिय आवाज़ का जाना: विजय बहादुर सिंह - 22

गदरी बाबाओं और भगत सिंह की विरासत..... : लाल्टू और दलजीत अमी- 32

जन्मशती विशेष

मैं अपने अहले-वतन के एहसास और जज़्बात की ज़बां हूँ: कुन्दन माली - 39

एक अधूरी नज़्म: अली सरदार जाफ़री - 48

विशेष कविता

मानगढ़: हरिराम मीणा - 57

साहित्यिकी

नवजागरण की यात्रा में रवीन्द्रनाथ टैगोर : अमरेन्द्र कुमार शर्मा - 67

हिन्दी दलित कविता और संत साहित्य-: ओमप्रकाश वाल्मीकि - 79

कवि चर्चा

कविता का आत्मीय चेहरा : नन्द भारद्वाज - 87

अल्पविचारित कवि और साहित्यिक सुयोग्यता : सुधीर रंजन सिंह - 94

कविताएँ

त्रिनेत्र जोशी-107, राजकिशोर राजन- 108,

शशिभूषण द्विवेदी- 110, बनाफर चन्द- 112, राज्यवर्द्धन- 113,

जगतनन्दन सहाय- 115, श्रीधर करुणानिधि-116, हेमधर शर्मा-117,

प्रदीप राज-118, सुशीला पुरी-119, निर्मला तोदी-120, जितेन्द्र धीर-121

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सामयिकी

गौरैया : नवारुण भट्टाचार्य – 122

नवारुण ने फिर खींची प्रत्यंचा : कृपाशंकर चौबे – 123

कहानियाँ

दो एकांत : पंकज सुबीर – 125

ओ मेरी नदी...! कहानी : शेखर मल्लिक – 143

छठवें वेतनमान समय में एक दो कौंड़ी का आदमी..... : कैलाश बनवासी – 158

हवा ने रुख बदल लिया है : सुषमा मुनीन्द्र – 171

जन्मदाता : कुन्दनसिंह परिहार – 183

भाषांतर

कैदखाना : ज्याँ पॉल सार्त्र – 188

किताब के बहाने

इतिवृत्त में अतिवृत्तः व्योमकेश दरवेश : अष्टभुजा शुक्ल – 199

किताब चर्चा

समझ और काव्यानुभूति का लोकवृत्तः रेवतीरमण – 208

धरती और मनुष्य के साथ लगाव की कविताएँः वैशाली चन्द्रा – 217

ठिठके समय की कवितों का कोलाजः रमेश खत्री – 220

मुअनजोदड़ो जो विमर्श भी है और उत्सव भीः विनोद शाही – 225

विरासत को सहेजते हुए एक जरूरी अध्ययनः मनीषा झा – 229

मुक्तिबोध से ही समझा जायेगा–आज का सचः ओम भारती – 232

कुछ अपनों से, कुछ अपनी सी

एक ख़त संजीव के नामः सुल्तान अहमद –235

आधी सदी की गवाही

फ़िदेल कास्त्रो से इग्नासियो रैमोनेट की बातचीत – 242

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-GMT

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सम्पादकीय

संगठित सार्वजनिक प्रतिरोध और जनउभार की दृष्टि से सन् 2011 काफी घटनापूर्ण रहा और काफ़ी सबक सिखा गया।

28 जनवरी 2011 को ट्यूनिशिया में एक सार्वजनिक प्रदर्शन हुआ। प्रदर्शनकारियों ने मोहम्मद बोआज़िजी नामक एक युवक की तस्वीर वाले पोस्टर उठा रखे थे जो स्नातक होने के बावजूद बढ़ती बेरोज़गारी के कारण फल-सब्ज़ी का ठेला लगाने पर मजबूर हो गया था। फिर एक दिन जब पुलिस ने उसका ठेला भी जब्त कर लिया तो विरोधस्वरूप उसने एक सार्वजनिक स्थल पर आत्मदाह कर लिया।

11 फरवरी 2011 को काहिरा के तहरीर चौक में हज़ारों-लाखों लोग होस्ने मुबारक के तीस साला शासन की समाप्ति का जश्न मना रहे थे। यूनियनों ने हड़तालों-प्रदर्शनों के माध्यम से इस सफल अभियान में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी।

9 अगस्त 2011 को चिली में छात्रों ने पिनोशेत सरकार द्वारा स्थापित शिक्षा के नवउदारवादी ढाँचे के विरोध में जोरदार प्रदर्शन किया जो कई लातीनी अमरीकी देशों में फैल गया।

21 मई 2011 को मेड्रिड में स्पेन के युवकों ने बढ़ती बेरोज़गारी के विरुद्ध 'इनडिग्नाडोस' (नाराज़ हम) नामक एक व्यापक आन्दोलन आरम्भ कर दिया।

यूरोप भी इससे अछूता नहीं रहा। नवम्बर 2010 में लंदन में छात्रों का एक विराट प्रदर्शन हुआ था। इसी क्रम में मार्च 2011 में लंदन में एक मोर्चा निकाला गया। इसे यूनियनों द्वारा आयोजित किया गया था और इसमें चार लाख से भी अधिक लोगों ने भाग लिया। कहा जाता है कि पिछले बीस सालों में यह यूनियनों का सबसे बड़ा मोर्चा था। इसके पार्श्व में यूरोप में बढ़ती बेरोज़गारी थी। सन् 2011 के आरम्भ में 25 वर्ष से कम आयु के युवकों में से इटली में 26 प्रतिशत, ग्रीस में 30 प्रतिशत, स्पेन में 43 प्रतिशत और पूरे यूरोप में औसतन 20 प्रतिशत बेरोज़गार थे।

10 जून 2011 को एथेन्स में ग्रीक सरकार द्वारा बढ़ती कटौतियों और बढ़ते करों के विरोध में सरकारी कर्मचारियों ने एक विशाल प्रदर्शन किया। 5 अक्टूबर 2011 को न्यूयॉर्क में हज़ारों अमरीकी नागरिकों ने 'वॉल स्ट्रीट पर कब्ज़ा करो' आन्दोलन आरम्भ कर दिया। पुलिस ने प्रदर्शनकारियों के तम्बू हटा दिये, लेकिन यह आन्दोलन आज भी चल रहा है। इनका नारा है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'तुम हो एक प्रतिशत, और हम हैं निन्यानवे प्रतिशत।' अमरीका में हालत यह है कि लोग कर्ज के सहारे ही जी रहे हैं। कर्ज मुख्यत: तीन प्रकार के हैं- मकान के लिए, पढ़ाई के लिए और क्रेडिट कार्ड पर! एक अनुमान के अनुसार वहाँ एक करोड़ बीस लाख मकान गिरवी पड़े हैं और उन्हें कभी नहीं छुड़ाया जा सकेगा। पढ़ाई का खर्च बेतहाशा बढ़ रहा है। मसलन बर्कले में दस साल पहले ट्यूशन फीस 2716 डॉलर प्रति वर्ष थी जो आज 11,160 डॉलर हो गयी है और 2015-16 तक 23,000 डॉलर हो जाएगी।

28 नवम्बर 2011 को लॉस एन्जलीस की केलिफोर्निया यूनिवर्सिटी में छात्रों ने निरन्तर बढ़ती फीस के विरोध में प्रदर्शन किया। अमरीका में पढ़ाई के लिए लिया गया कर्ज़ एक लाख करोड़ डॉलर तक पहुंच गया है। क़रीब इतना ही क्रेडिट कार्ड पर उठाया गया कर्ज़ भी है।

कोई सोच भी नहीं सकता था कि अरब दुनिया जैसे बन्द, पारम्परिक और शान्त समाज में इतना बड़ा ज़लज़ला उठ खड़ा होगा। कर्नल गद्दाफी इतिहास के कूड़े में फेंक दिये जाएंगे, सीरिया में संघर्ष की लपटें फैल जाएंगी और यह अरब सैलाब धीरे-धीरे सारी दुनिया को अपनी चपेट में ले लेगा।

हज़ारों-लाखों लोगों को बेरोज़गार बनाकर मुट्ठी भर लोगों को करोड़पति बनाने वाले वैश्वीकरण के ही ये दुष्परिणाम हैं जो तथाकथित आर्थिक प्रगति, जीडीपी और सेन्सेक्स की चिकनी-चमकदार त्वचा पर कोढ़ की तरह फूट रहे हैं। साम्यवादियों, मार्क्सवादियों और प्रगतिशीलों की अहर्निश खिल्ली उड़ाने वाले और फिर भी खुद को 'पूँजीवादी' कहने में शरमाने वाले, पता नहीं किन शब्दों में अपने आक़ाओं की इन हरकतों का समर्थन कर पायेंगे।

ट्यूनिस से सेंटियागो से वॉल स्ट्रीट तक फैले सन् 2011 के इन जन उभारों के यूं तो अलग-अलग कारण और पृष्ठभूमि रही हैं लेकिन इनमें एक सामान्य बात यह है कि नवउदारवाद और वैश्वीकरण के कारण पैदा हुई जनता की कठिनाइयों यथा बेरोज़गारी, महंगाई, आर्थिक असमानता और भ्रष्टाचार से कोई सरकार- चाहे वह तानाशाही हो या लोकशाही-उन्हें छुटकारा नहीं दिला पायी है और इसलिए कुल मिलाकर जनता का व्यवस्था से और सभी राजनीतिक दलों से मोहभंग आरम्भ हो गया है।

दूसरे, अलग-अलग पृष्ठभूमियों-कारणों और माँगों के बावजूद इन जनउभारों को एक दूसरे से काटकर नहीं देखा जा सकता और व्यवस्था विरोधियों को भी समझ में आ गया है कि जब पूँजी और उसकी विकृतियों ने, शोषण ने और अमानुषिकता ने वैश्विक स्वरूप धारण कर लिया है, तो उसके विरुद्ध विद्रोह को भी अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप अख्तियार करना पड़ेगा और उसने वैसा करना आरंभ भी कर दिया है। विश्व में एक-दूसरे से मीलों दूर चल रहे आन्दोलन, फेस-बुक, यूट्यूब आदि पर मोबाइल वीडियो फोटो व समाचार अपलोड कर तुरन्त परस्पर सम्पर्क स्थापित करते हैं और न सिर्फ एक वैश्विक जनमत का निर्माण करते हैं अपितु आततायी के लिए छिपकर अत्याचार करना भी असम्भव बना देते हैं। पाशविकता तब बहुत मुश्किल हो जाएगी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जब लाखों आँखें उसे देख रही होंगी! इस सबूत को मिटाना और इस कलंक को धोना लगभग असंभव हो जाएगा। इसलिए वैश्विक जनमत की जागरूकता काल की बेआवाज़ लाठी की तरह काम करेगी। यह व्यवस्था परिवर्तन की गारंटी नहीं, इस बात की जमानत है कि आसुरी आर्थिक असमानता से ग्रस्त मनुष्य समाज अब चमत्कारी सीईओपुचकारियों और एन्टीलियावासी सेठों के अप्रत्यक्ष शासन को ज्यादा बरदाश्त नहीं करेगा।

2011 के जनउभारों का दूसरा सबक मुस्लिम भयाक्रांत साम्राज्यवादी राष्ट्रों को मिला है। सबक़ यह है कि सभी मुस्लिम बुरे नहीं हैं। कुछ अच्छे मुस्लिम भी हैं जो वर्ल्ड बैंक, आईएमएफ और अमरीकी संप्रभुता को साष्टांग स्वीकार करने को तैयार हैं, जैसे 'मुस्लिम ब्रदरहुड', उन्हें मित्र समझते रहना चाहिए और उनकी सहायता करते रहना चाहिए।

एक सबक़ आतंकवादियों को भी मिला है। सबक़ यह है कि बेगुनाहों का खून बहाए बगैर भी सत्ता हासिल की जा सकती है बशर्ते 'उदार लोकतंत्र' में प्रतिक्रियावादी शक्तियों और फौजी ताकतों का गठजोड़ बनाकर जनता के साम्यवादी-समाजवादी तत्वों और अवशेषों को नेस्तनाबूद कर दिया जाए!

प्रख्यात विचारक एज़ाज अहमद ने इस सबका विस्तारपूर्वक विवेचन-विश्लेषण किया है (फ्रंटलाइन, 10 फरवरी 2012) लेकिन वे इस सबको निष्कर्षत: प्रतिकांतिकारी मानते हैं क्योंकि विचार विहीन इस विद्रोह की परिणति प्रतिक्रियावादियों, पुनरुत्थानवादियों और तानाशाहों की सत्ता प्राप्ति में होती है।

(भारत में अन्ना हजारे आन्दोलन की परिणति 'कांग्रेस को वोट मत दो' में होती है, जैसे जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रांति की परिणति जनसंघ को विश्वसनीयता प्रदान करने और स्वमूत्रपायी प्रधानमंत्री वाले जनता पार्टी राज में हुई थी!)

लेकिन मैं अब भी यह समझता हूँ कि खराब से खराब लोकतंत्र भी अच्छी से अच्छी तानाशाही या राजशाही से बेहतर होता है। और इसलिए तानाशाही या राजशाही का जाना और उसके स्थान पर लोकशाही का आना एक प्रगतिशील क़दम है।

• •

जब पूँजीवादी व्यवस्था की निर्विकल्पता को मन ही मन स्वीकार कर लिया जाता है तो पूंजीवाद को नष्ट करने की या कमज़ोर करने की नहीं, इसी को एक सौम्य, सदय, मानवीय चेहरा देने की कोशिश की जाती है। तब व्यवस्था परिवर्तन नहीं अपितु भ्रष्टाचार, कालाधन, सुशासन (गुड गवर्नेन्स) और विकास मुख्य मुद्दा बन जाते हैं। तब सिंगूर और नन्दीग्राम के नाम पर बंगाल की जनहितकारी वामपंथी सरकार को गिरा दिया जाता है और मोदी 'विकास पुरुष' बन जाते हैं। तब एक लाख किसानों की आत्महत्या 'पीपली लाइव' का संगीतमय तमाशा बन जाती है और सेज़ के नाम पर उपजाऊ और कृषि योग्य भूमि उद्योगपतियों को प्रदान कर दी जाती है (सरकार बताये कि देश के शीर्षस्थ पचास बड़े उद्योगपति, बैंकों का कितने हज़ार करोड़ कर्ज़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खाकर बैठे हैं, उनके दरवाज़े कितने बाउन्सर भेजे गये और उनमें से एक ने भी आत्महत्या क्यों नहीं की ?)

ऐसी स्थिति में कोई अजब नहीं कि व्यक्ति धीरे-धीरे आत्मकेन्द्रित हो जाता है और सामूहिकता के सिलसिले विदीर्ण हो जाते हैं। परस्पर विश्वास का विश्वास इस क़दर दरक जाता है कि विवाह जैसी संस्थाएं भी टूटने लगती हैं और लोग बेटियों के जन्म से डरने लगते हैं। सफलता जीवन का चरम-परम लक्ष्य बन जाती है और 'लूज़र' सबसे बड़ी गाली। तब विचारधाराएं असंगत हो जाती हैं और रचना सफल का अनुकरण। तब प्रयोग की वृत्ति क्षीण हो जाती है और विज़न गायब। 'विक्रेयता' एक पूरी पीढ़ी को स्वप्नविहीनता के बंजर में पटककर जिन्स की तरह बरबाद कर देती है।

• •

कभी-कभी मुझे लगता है कि आत्मकेन्द्रित और ग़ैर प्रतिबद्ध होने के लिए युवा पीढ़ी को दोष देने की बजाय हमें उनके साथ अपने स्वप्न, अपना विज़न शेयर करना चाहिए। कहीं हम अपने बौद्धिक आलस्य और मानसिक काहिली का ठीकरा बाजार और वैश्वीकरण के सिर पर फोड़ने की कोशिश तो नहीं कर रहे हैं ? मैंने मार्क्स की 'पूँजी' का प्रथम खण्ड (हिन्दी अनुवाद) छह रुपये में ख़रीदा था और 'कम्पलीट वर्क्स ऑफ लेनिन' (अंग्रेजी अनुवाद) के दो खण्ड पन्द्रह रुपये में। आज कितने शहरों की कितनी दुकानों में मार्क्स-लेनिन की पुस्तकें हिन्दी, अंग्रेजी या क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध हैं ? या किस विश्वविद्यालय के किस पाठ्यक्रम में मार्क्सवाद पढ़ाया जा रहा है ? यह भी तो हो सकता है कि मार्क्सवाद से अपने अल्पपरिचय को लेकर नयी पीढ़ी खुद मन ही मन परेशान हो!

आज अनेक युवा मित्रों को लगता है प्रगतिशीलों और कम्युनिस्टों में कोई फर्क नहीं है। 'प्रगतिशील' सुनते ही उन्हें 'कम्युनिस्ट' याद आते हैं, 'कम्युनिस्ट' कहते ही उन्हें 'सोवियत संघ' याद आता है, और 'सोवियत संघ' का ज़िक्र होते ही उन्हें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और स्टालिन का ध्यान आ जाता है। यह पूँजीवाद के अनथक, दीर्घकालीन और महंगे प्रचार का परिणाम है। जबकि हक़ीकत यह है कि जो प्रगतिशील है ज़रूरी नहीं कि वह मार्क्सवादी, हो और जो मार्क्सवादी है ज़रूरी नहीं कि वह कम्युनिस्ट हो, और जो कम्युनिस्ट है, ज़रूरी नहीं कि वह सोवियत संघ का समर्थक या स्तालिन का प्रशंसक हो।

अनेक लोग समझते हैं कि कम्युनिस्टों का लक्ष्य एक समाजवादी समाज या 'कम्यूनिस्ट राज' स्थापित करना है। जबकि ऐसा हर्गिज़ नहीं है। अनेक लोग समझते हैं कि कम्युनिस्ट साम्यवादी शासन प्रणाली लाना चाहते हैं। ऐसा भी नहीं है। कम्युनिस्टों का लक्ष्य समाजवादी समाज की स्थापना या साम्यवादी शासन प्रणाली की स्थापना नहीं है! कम्युनिस्टों का लक्ष्य है 'राज्य विहीन समाज'। कम्युनिस्ट सोचते हैं क्या मनुष्य कभी इतना सभ्य और विकसित नहीं हो सकता कि उसे अपने ऊपर किसी 'शासन' करने वाले की आवश्यकता ही न रहे ? यह भी कोई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बात हुई कि हम वोट देकर अपने पर 'शासन' करने वाला चुन रहे हैं! और एक बार नहीं, बार-बार! और इसे बहुत अच्छी बात समझ रहे हैं! इसका गर्व के साथ उल्लेख कर रहे हैं! देखिए साहब! हम हर पाँच साल में अपना 'शासक' चुनते हैं!! क्या ऐसा नहीं हो सकता कि समाज की व्यवस्था कुछ स्वैच्छिक सहकारी समितियाँ वैज्ञानिक सेवातंत्र के माध्यम से संचालित करें और इसमें 'सत्ता' का कोई दंभ या दोष न हो?

कम्युनिस्ट एक ऐसे समाज का सपना देखते हैं जिसमें वकील न हों, अदालत न हों, जेल न हों, भिखारी न हों, वेश्याएं न हों। जहाँ हर व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार काम करे और काम के अनुसार दाम पाये। नहीं नहीं। इससे भी ऊँचा आदर्श! जहाँ हर व्यक्ति अपनी इच्छानुसार काम करे और अपनी आवश्यकतानुसार प्रतिसाद पाये। क्या यह असंभव है? क्या इससे बड़ा, महान और उदात्त सपना दुनिया में किसी ने देखा है? देखा हो तो बताइये। हम मार्क्सवाद छोड़कर उसके अनुयायी बन जायेंगे।

कई लोगों को लगता है कि वर्गहीन समाज बनाना असम्भव है। मानो वर्ग ईश्वर ने बनाए हों! जबकि स्वयं ईश्वर को किसने बनाया, वे नहीं जानते। उन्हें लगता है असमानता हमेशा रही है और हमेशा रहेगी क्योंकि पाँचों उंगलियाँ बराबर नहीं होतीं। मानो कम्युनिस्ट कोई विशाल सरोता या दराँती लेकर खड़े हों और लाइन से सबकी उंगलियाँ एक नाप में काट रहे हों।

ठीक है, प्राकृतिक असमानताएँ एक सीमा तक ही समाप्त की जा सकती हैं, लेकिन वर्गविभक्त समाज में मनुष्य द्वारा निर्मित अन्यायपूर्ण, अधार्मिक और अमानवीय-असमानताएँ? क्या उन्हें समाप्त या न्यूनतम नहीं किया जा सकता? यदि अनाचार-अत्याचार-दुराचार-पापाचार-व्यभिचार हमेशा से होता आया है तो क्या हमें उसे प्रारब्ध या जीने की शर्त की तरह स्वीकार कर लेना चाहिए? क्या प्लेग-चेचक और नारू समाप्त नहीं हो गये? क्या रंगभेद-गुलामप्रथा, नरबलि और सती प्रथा समाप्त नहीं हो गये? क्या अकाल-भुखमरी और महामारी समाप्त नहीं हो सकती? जिन्होंने बरसों-बरस इसके लिए प्रयास किये, अपने प्राणों की आहूति तक दे दी उन्हें हमें स्वतंत्रता के शत्रु, हिंसाप्रेमी और ईश्वरीय व्यवस्था में अनावश्यक-अवांछित हस्तक्षेप करने वाला और अत: निन्दनीय और भर्त्सना योग्य मानना चाहिए? मनुष्य और पशु में सबसे बड़ा अन्तर तो यही है कि पशु जीने के लिए परिस्थितियों के अनुसार खुद को ढालता है जबकि मनुष्य परिस्थितियों को अपने अनुरूप ढाल लेता है।

और रही विकास की बात... तो क्या मनुष्य कभी इतना समझदार नहीं हो सकता कि कहे भैये हमें अपना वि कास करना होगा तो खुद कर लेंगे? आप बरसों से हमारा विकास कर रहे हैं। अब कृपया हमें बख्शिये! आप होते कौन हैं हमारा विकास करने वाले? आप तो विकास के नाम पर हमारी ज़मीन की खनिज सम्पदा, हमारी नदियों का पानी और हमारे वायुमण्डल की तरंगें तक बेच खाएंगे। और इस निमित्त प्राप्त दलाली स्विट्ज़रलेण्ड या कहीं और छिपाकर रख देंगे। ताकि पूत सपूत हो तो सब उसे मिल जाये और पूत कपूत हो तब तो उसे ज़रूर ही मिल जाये! वैसे भी हम विकास की आपकी अवधारणा से सहमत नहीं। विकास की वर्ल्डबैंकीय

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अवधारणा पर जबर्दस्त पुनर्विचार की आवश्यकता है।

अच्छा साहित्य भी यही करता है। वह परम्परा से चली आती अवधारणाओं को पुर्नपरिभाषित करता है। दोस्तोएव्स्की बताते हैं कि 'क्राइम' जिसे तुम समझते हो वह 'क्राइम' नहीं और 'पनिशमेण्ट' जिसे तुम मानते हो वह 'पनिशमेण्ट' नहीं। वह 'ईडियट' में 'ईडियोसी' को पुनर्परिभाषित करते हैं। प्रेमचन्द के 'गोदान' में होरी-धनिया का तमाम हर्ष-विषाद, सुख-दुख, मरना-जीना चित्रित हो चुका था। गोदान तो वैसे भी नहीं होना था। क्योंकि गाय-बछिया थी ही कहाँ? फिर अंत में मुंशीजी ने धनिया का 'सर्वस्व' क्यों 'हरवाया'? सूरदास के संघर्ष की चार पंक्तियां एक महान प्रगतिशील रचनाकार का दुर्निवार विज़न है। 'वे जला दें तो?', 'हम फिर बना लेंगे', 'जो वे फिर जला दें तो?', 'तो हम फिर बना लेंगे।'

ईरान के शाह को हटाने से अयातुल्ला खुमैनी आ गये तो? हम उन्हें भी हटा लेंगे। मुशर्रफ को हटाने से ज़रदारी आ गये तो? हम उन्हें भी हटा देंगे। गोर्बाचोव की जगह येल्तसिन आ गये तो? हम उन्हें भी हटा देंगे। क्रांति की कक्षाएँ नहीं होतीं। जनता संघर्ष करते हुए ही सीखती है। उसकी आँखों में सपनों की रोशनी धुंधली न पड़े-यह देखना साहित्यकार का काम है।

• •

इस बीच कुछ ऐसा ही सपना लिए शहरयार, विद्यासागर नौटियाल, गुरशरण सिंह और अदम गोंडवी मज़हर इमाम, द्रोणवीर कोहली, करतार सिंह दुग्गल, प्रभुनाथ सिंह आज़मी मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष और प्रगतिशील आंदोलन के बुजुर्ग साथी प्रोफेसर अक्षय कुमार जैन और रंगकर्मी अलखनंदन भी चले गये। अपने शब्द शरीर में वे हमारे साथ हैं और अभी बहुत दिन रहेंगे। और बात खत्म करने से पहले देश की पहली फोटो जर्नलिस्ट होमाई व्यारावाला को आखिरी सलाम जो एक कम सौ वर्ष हमारी दुनिया में रहकर पिछले दिनों चली गयीं। 'दादी! आपने नेहरूजी के जो फोटू पाड़े.... आह! केटलो खूबसूरत!!'

- स्वयं प्रकाश

हमारी हर संभव कोशिश है कि प्रगतिशील वसुधा का आगामी अंक बहुप्रतीक्षित समकालीन मलयालम साहित्य पर केन्द्रित विशेषांक के रूप में प्रकाशित हो सके। हमारे अतिथि संपादक प्रो. ए. अरविन्दाक्षन इसके श्रमसाध्य संपादन में जुटे हैं और हम आशा करते हैं कि विशेषांक की पांडुलिपि हमें अप्रैल 2012 के अंत तक अवश्य ही प्राप्त हो सकेगी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विस्लावा शिम्बोर्स्का

एक छोटे से सितारे के नीचे

बीते युगों के युद्धो मुझे माफ करना
कि मैं फूलों के साथ घर लौट रही हूँ
रिसते नाखूनों मुझे क्षमा करना
कि मैं अपनी उंगली में सुई चुभोकर आयी हूँ
मैं क्षमा मांगती हूँ उनसे
जो एक धीमे नाच की धुन के रिकार्ड के लिए पुकार रहे हैं
रेलवे स्टेशन के लोगों से क्षमा मांगती हूँ
सुबह पांच बजे सोने के लिए
मुझे माफ करना टूटी उम्मीद
कि जब-तब मुस्करा देती हूँ
मुझे माफ करना मरुस्थलो
कि एक चम्मच पानी लेकर न आ सकी
काट डाले गये वृक्ष
मैं तुमझे क्षमाप्रार्थी हूँ
मेज़ के चार पायों के लिए
बड़े सवालों, माफी चाहती हूँ
छोटे जवाबों के लिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शोर-गुल में एक धीमी आवाज़

विजय कुमार

शिम्बोर्स्का पर मेरा यह लेख वर्ष 2007 में एक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। विडम्बना है कि अपनी नई पुस्तक में संकलन के लिए इस लेख के प्रूफ पढ़ रहा था तभी यह दुखद समाचार मिला कि 1 फरवरी 2012 को शिम्बोर्स्का नहीं रहीं। लेकिन क्या इस वज़ह से प्रूफ पढ़ते समय मैं उनके जीवन की सभी वर्तमान कालिक क्रियाओं को अब भूतकालिक क्रियाओं में तब्दील कर दूँ?

शायद शिम्बोर्स्का इसे भी जीवन के एक 'विट' की तरह ही देख रही होंती। वे मनुष्य के नश्वर जीवन को रचना के शब्दों में 'फ्रीज़' कर देने की पक्षधर थीं ताकि वह अनवरत हो जाये। यही सोच कर प्रूफ में काल सूचक सभी क्रियाओं को मैंने ज्यों का त्यों रहने दिया है। इस महान कवयित्री को विनम्र श्रद्धांजलि।

विस्लावा शिम्बोर्स्का ने पिछले पचास वर्षों में कुल जमा 250 कविताएं लिखीं हैं-यानी प्रतिवर्ष केवल 4 या 5 कविताएं, लेकिन इतने भर से विश्व कविता में उनका स्थान अग्रिम है। उनकी लगभग हर कविता 'मास्टरपीस' है। पिछले दस वर्षों में दुनिया की तमाम भाषाओं में उनके अनुवाद हुए हैं और उन्हें अतिशय लोकप्रियता मिली है। उनकी कविता पुस्तकें लोकप्रिय उपन्यासों की तरह बिकी हैं। लेकिन 1996 में जब तक उन्हें नोबेल पुरस्कार नहीं मिला था, पोलेंड के बाहर बहुत कम लोग उनकी कविताओं के बारे में जानते थे। भाषा में उनका पहला कविता संग्रह 'यही कारण कि हम जिंदा हैं' 1952 में प्रकाशित हुआ था। 1965 में उन्हीं की पीढ़ी के एक कवि चेश्वाव मिवोश ने युद्धोतर पोलिश कविताओं का एक छोटा सा संचयन 'पोस्टवार पोलिश पोएट्री' शीर्षक से अंग्रेजी में संपादित किया था तब उसमें शिम्बोर्स्का की केवल एक कविता शामिल थी। बाद में 1981 में उनकी चुनी हुई कविताओं के अंग्रेजी अनुवादों का एक संग्रह 'साउंड, फीलिंग्स, थॉट' शीर्षक से प्रकाशित हुआ और दुनिया भर के पाठकों का ध्यान उनकी कविताओं की ओर गया। आज हम इस बात को किंचित गर्व के साथ याद कर सकते हैं कि नोबल पुरस्कार मिलने के काफी पहले ही उनकी कविताओं से हिंदी पाठकों को कवि असद ज़ैदी ने परिचित करा दिया था। 1992 में विनोददास द्वारा संपादित लघु पत्रिका 'अन्तर्दृष्टि' में असद जैदी ने शिम्बोर्स्का की छह-कविताओं के बड़े सुंदर अनुवाद किये थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिंदी पाठकों की एक ऐसे स्वर से मुलाकात हुई जो सुदूर भौगोलिक परिवेश और ऐतिहासिक परिस्थितियों से उठा था पर इसके बावजूद संवेदना और अभिव्यक्ति को धरातल पर अपने बहुत निकट का लगता था। शिम्बोर्स्का की कविताएं अनुवाद में एक बड़ी हद तक बची रह जाती हैं। इसके बाद तो मंगलेश डबराल, राजेश जोशी, कुमार अंबुज, विष्णु खरे, अशोक वाजपेयी, विजय अहलूवालिया और इन पंक्तियों के लेखक ने शिम्बोर्स्का की अनेक कविताओं के हिन्दी अनुवाद किये हैं। इसके बाद तो विजय अहलूवालिया, विष्णु खरे और अशोक वाजपेयी के अनुवाद पुस्तकाकार भी छपे हैं। अशोक वाजपेयी ने रेनाता चेकाल्सका के साथ मिलकर ये अनुवाद सीधे पोलिश से हिन्दी में किये हैं, जिनका शीर्षक है 'कोई शीर्षक नहीं' इन अलग-अलग अनुवादों की वजह से शिम्बोर्स्का का नाम आज हमारे लिए उसी तरह अति परिचित हो गया है, जैसे कि नेरुदा या नाज़िम हिकमत का। यह एक अध्ययन का विषय हो सकता है कि विस्लावा शिम्बोर्स्का की कविताओं की विषय-वस्तु, भाषा, शैली और स्वर ने किस कदर समकालीन हिंदी कविता पर अपना असर डाला है।

शिम्बोर्स्का ने तमाम लोकप्रियता, प्रचार-प्रसार और 'सेलिब्रिटी' की हैसियत से बाहर रहकर अपना एक अनिवार्य एकांत चुना था। 1996 में नोबेल पुरस्कार मिल जाने के बाद भी उनके निजी जीवन के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध हुई थी। नोबेल पुरस्कार मिलने के बावजूद उन्होंने कभी कोई इन्टरव्यू नहीं दिया, अपनी कविता के बारे में कभी कोई बात नहीं की, किसी सेमिनार में नहीं गयीं। 88 वर्ष के अपने इतने लंबे जीवन जीवन में वे बहुत कम पौलेंड से बाहर निकली थीं। बल्कि अपने शहर क्राकोव से भी बाहर ज्यादा नहीं निकलीं। क्राकोव शहर में एक पुरानी इमारत की पांचवीं मंजिल पर वे रहती रहीं, जिसमें कोई लिफ्ट नहीं थी। उनके 4-5 गिने-चुने मित्र थे जिन्होंने उनकी अतिशय विनोदप्रियता और ज़िंदादिली को जाना। शिम्बोर्स्का जब 8 वर्ष की थीं, जब अपने परिवार के साथ क्राकोव चली आयी थीं और तब से वहीं रहती रहीं। दूसरे महायुद्ध के दौरान नाज़ियों ने जब पोलैंड पर कब्जा कर लिया था और माध्यमिक स्कूलों और विश्वविद्यालयों पर पाबंदी लगा दी थी तब चोरी-छिपे उन्होंने अपनी स्कूली पढ़ाई पूरी की थी। युद्ध समाप्त हो जाने के बाद उन्होंने विश्वविद्यालय में पोलिश साहित्य और समाज विज्ञान का अध्ययन किया और फ्रेंच साहित्य से पोलिश में अनुवाद करती रहीं। 1948 में उनका कवि-संपादक अदम व्लोदक से विवाह हुआ। पर छह वर्ष बाद विच्छेद हो गया। 1952 से 1981 तक वे सांस्कृतिक पत्रिका 'साहित्य जीवन' में एक स्तंभ लिखती रहीं। शुरुआत में साम्यवादी व्यवस्था में उनकी कविताओं को छपने में कठिनाई हुई थी। संस्कृति के संरक्षकों ने यह कहकर उनकी कविताओं को अस्वीकार कर दिया था कि उनमें सामाजिक-यथार्थवाद का स्वर बहुत अस्पष्ट है। इन 55 वर्षों में पोलिश भाषा में शिम्बोर्स्का के 17 कविता-संग्रह छप चुके हैं। उनकी इधर की कविताओं के अंग्रेजी अनुवादों का एक नया संग्रह 'हियर' शीर्षक से अभी वर्ष 2010 में आया है। उनके गद्य के अंग्रेजी अनुवादों की भी एक पुस्तक 'नॉन रिक्वायर्ड रीडिंग' वर्ष 2002 में आयी जिसमें कई दशकों तक जो कॉलक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उन्होंने लिखा था, वह संकलित है। इस पुस्तक के आने से पहले लोगों को यह अंदाजा नहीं था कि शिम्बोर्स्का ने इतना अद्‌भुत गद्य भी लिखा है।

शिम्बोर्स्का हमारे एक ऐसे युग की कवयित्री हैं, जिसमें शोर-शराबा, आर्तनाद और सनसनी इतनी ज्यादा है कि लोगों ने धीमी आवाजों को सुनना बंद कर दिया है। वे बहुत बड़े सवालों के सामने छोटे-छोटे जवाबों में पेश आने की हिकमत करती हैं। यह दो महायुद्धों के बाद की दुनिया है, जिसमें मनुष्यता के महान आविष्कार और महान अपराध एक साथ उपस्थित हैं, एक-दूसरे के बगल में हैं। बड़े-बड़े सिद्धांतों, व्यूह-रचनाओं, यूटोपिया और उपयोगितावाद बरक्स वे औसत मनुष्य के संसार को रखना चाहती हैं। उसकी औसत रोज-मर्रा की कशमकश, उसमें बिंधी इच्छाएँ, आकांक्षाएं, स्मृतियां, विस्मृतियां, कौतूहल, विस्मय, विडम्बनाएं और वक्रताएं। इन कविताओं में इतिहास के तमाम सरलीकरणों और 'क्लीशों' के सामने जीवन की आकस्मिकताओं और संयोगों पर विचार है, कुछ अनसुलझे सवाल हैं। शिम्बोर्स्का के कविता संग्रह 'चमत्कार मेला' की भूमिका में चेस्वाव मिवोश ने लिखा है कि एक कविता जो प्रेम, संघर्ष, पीड़ा के भय, उम्मीद, चीजों के तेजी से बदलते जाने और मृत्यु के बारे में हो, वह हमें इसका यकीन दिलाना चाहती है कि कवि हममें से ही कोई एक है और वह हमारी इस सामूहिक नियति में साझा करता है। कविता में आया उनका 'मैं' एक सामुदायिक एकवचन है।

हमारे समय में कविता और क्या हो सकती है? वह उस सीमा-रेखा की खोज है, जिसके एकतरफ अर्थहीन शोर है और दूसरी तरफ जड़ खामोशियां। कविता इन दोनों स्थितियों के बीच इतिहास की तमाम विडम्बनाओं और त्रासदियों से गुजरती हुई तमाम तरह के धोखों, फरेबों, प्रपंचों और बदकारियों का सामना करती हुई भरोसे की कोई अंतिम चीज़ बन जाना चाहती है। वह इस पूरे समय का एक निदान चाहती है और इस बुनियादी सवाल को उठाती है कि 'यह सब क्यों?' 'इस ग्रह पर कौन हैं हम लोग?' लेकिन जाहिर है कि यह कोई आसान काम नहीं है। शिम्बोर्स्का का मनुष्य अस्तित्व की जटिलताओं के सरल समाधानों में यकीन नहीं है। उनकी एक कविता की पंक्तियाँ हैं-

ओ वाणी, मुझसे खफ़ा न होना
कि मैंने तुमसे उधार ले लिये चट्टानों से भारी शब्द
और फिर उम्र भर उन्हें तराशती रही इस कोशिश में
कि वे परों से हल्के लगने लगे

शिम्बोर्स्का के यहां एक बुनियादी संशयवाद है, प्रश्नाकुलता है। लेकिन इसी के चारों ओर लिपटी हुई एक विनोदप्रियता, वक्रता, कौतुल, मितकथन और सारगर्भित स्थितियों की बुनावट है। उनकी कविताएं अवसर दार्शनिक प्रश्नों से शुरू होती हैं और तमाम तरह की विरोधाभासी स्थितियों और 'एब्सर्ड' की तहें खोलती जाती हैं। इन कविताओं में बीसवीं सदी की विडम्बनाओं से जूझते कुछ दूसरे बड़े यूरोपीय कवियों की तरह की आत्मगत मनोदशाएं और अवचेतन की दुरूह दुनिया नहीं, बल्कि तीक्ष्ण तर्कवाद है। शिम्बोर्स्का की कविताओं में एक

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by MoE-IKS

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रत्यक्ष कथन है। ये कविताएं निजी परिस्थितियों से शुरू भी होती हैं तो एक ठंडी तटस्थता के साथ और वे तुरन्त किसी सार्वजनिक सच तक पहुंच जाना चाहती हैं। उनमें आत्म-संलग्नता, भटकन, भावनात्मक बहाव लगभग नहीं है। वे आधुनिक जीवन के अधिकाधिक अन्तर्विरोधों और दुश्वारियों की तरफ सीधी सरल भाषा में जाती हैं। यहां पाठक का ध्यान भाषा के किसी रैटारिक से नहीं, बल्कि सीधे-सीधे एक गहरे विडम्बना बोध और स्थितियों की वक्रता से खिंचता है। जिन भौतिक संदर्भों को कवयित्री उठाती हैं, उनमें ज्यादातर जगह कुछ कॉमिकल परिस्थितियों और एक विनोदपूर्ण मस्तिष्क की कसी हुई कविताएं हैं। लेकिन इनमें जिस तरह की वक्रता और गहरी कल्पनाशीलता है, वह हमेशा उन्हें अप्रत्याशित दिशाओं में ले गयी है-

बदला कुछ भी नहीं
यह देह उसी तरह दर्द का कुंआ है
इसे खाना, सांस लेना और सोना होता है
इस पर होती है महीन त्वचा
जिसके नीचे खून दौड़ता है
इसके दांत और नाखून होते हैं
इसकी हड्डियां होती हैं जिन्हें तोड़ा जा सकता है
जोड़ होते हैं जिन्हें खींचा जा सकता है

बदला कुछ भी नहीं है
सिवाय नदियों, घाटियों, रेगिस्तानों
और हिमशिलाओं के आकारों के
हमारी छोटी से आत्मा-दर-दर भटकती फिरती हैं
खो जाती है, लौट आती है
करीब होती है, दूर निकल जाता है
अपने आप से अजनबी होती हुई
अपने अस्तित्व को कभी स्वीकारती और कभी नकारती हुई
जबकि देह बेचारी नहीं जानती
कि जाएं तो कहां जाएं

शिम्बोर्स्का की कविताओं को पढ़ते हुए लगता है कि चारों तरफ की अस्थिरताओं, संवेदनशीलताओं, आतंक, दमन, उत्पीड़न, विस्मृति, भूख और मृत्यु के बीच साधारण जीवन की अतिसाधारण अनिवार्य का उत्सव मनाना अभी भी संभव है। वे अनिवार्यताएं जो इस जीवन की पुनर्रचना करती हैं, उसका आकार गढ़ती हैं।

ऐसा हुआ है कि मैं एक वृक्ष के नीचे बैठी हूँ
एक नदी के किनारे
एक उजले धूप वाले दिन
यह एक तुच्छ सी घटना है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह इतिहास में दर्ज नहीं होगी।
यह न तो लड़ाइयां हैं, न संधियां
जिनके कारणों पर शोध की जा रही हो
और न ही आततायियों की हत्याएं याद करने योग्य।

शिम्बोर्स्का चुनती हैं कि हमारा तात्कालिक क्या है। उनके यहाँ मूर्त परिस्थितियां चाक्षुष बिंब हैं, जिनकी एक सार्वभौमिक अपील है। वे आसान समाधानों, 'क्लीशों' से बाहर निकल कर अप्रत्याशित में जीवन की अनन्त संभावनाएं ढूंढती हैं। 'चमत्कार मेला' जैसी कविता में रात के मौन में अदृश्य कुत्तों का ----- कि चमत्कार की तरह घटित होता है। एक पतला नन्हा बादल भारी चन्द्रमा ढक सकता है। जल में वृक्षों की छायाएं, हवाओं का मंद गति से बहना और तूफान में तेज हो जाना-इन असंख्य चमत्कारों से यह दुनिया भरी हुई है। साधारण वस्तुओं के भीतर हमेशा एक असाधारण है। लेकिन वस्तुनिष्ठ नियमों और सामान्यीकरणों के निकट भुखमरी शिविर जैसी कविता में शिम्बोर्स्का सामान्यीकरण करने वाली ताकतों के विरुद्ध अकेले व्यक्ति की इसी गरिमा की देती दिखाई पड़ती है-

इतिहास कंकालों की गिनती पूरी करता है शून्य पर।
एक हजार एक फिर भी एक हजार है।
उस एक का जैसे कभी कोई वजूद ही नहीं था:
वह एक कल्पित भ्रूण, एक खाली पालना
खालीपन सीढ़ियों से उतरता हुआ बगीचे की ओर जाता हुआ
कतार में उस एक नहीं की जगह।

संख्याओं का मानकीकरण तो वैयक्तिक इकाई को अनदेखा कर देता है। जिम्मेदारी कवि पर आ जाती है कि उस एक हजार एक वीं संख्या को खोने से बचाये। यह कविता जैसे कि उन तमाम फेंकी हुई, रद्द की हुई, अनदेखी कर दी गयी इकाइयों का पुनर्वास करना चाहती है। ये फेंकी हुई और उपेक्षित रह गयी इकाइयां जैसे कि संजो कर रखे गये सचों से ज्यादा मूल्यवान सच की ओर ले जाती हैं। यह शिम्बोर्स्का की कविता का स्वभाव है कि वह सबसे ज्यादा अप्रासंगिक और फालतू मान ली गयी चीजों के विवरणों और वृतांतों को जुटाती है। शिम्बोर्स्का के लिये यह एक खास तरह की भाषा है जिसने बड़े सतर्क तरीके से स्वयं को ऐतिहासिक घटनाओं, स्थूल तथ्यों और कवि की सामाजिक जिम्मेदारी जैसी बड़ी-बड़ी बातों से दूर रखा है। यह कवयित्री उन सचों पर यकीन करना नहीं चाहती जो दार्शनिक सिद्धांतों, विचारधारणाओं के घटाटोप, लोगों के विश्वासों, आदतों, ढर्रेदार विकृतियों और वर्जनाओं से बने हैं। यह एक ऐसी भाषा है जिसमें उन सबके लिए करुणा है जो गलत साबित हुई है। मनुष्य जीवन में एक बची रह गयी किसी मामूली प्रसन्नता का उत्सव मनाना उसे भारी-भरकम चर्चाओं से ज्यादा मूल्यवान लगता है। यह मनुष्य की तर्कहीनताओं और त्रासदियों को बहुत निकट जाकर देखती है। विडम्बनाओं से, विरोधाभासों से एक-दूसरे को काटती हुई स्थितियों से,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परस्पर टकराते हुए सचों से जैसे कवयित्री को जीवन की अनन्तता का एक ड्रामा खड़ा करने का आधार मिलता है। शिम्बोर्स्का की ये कविताएं एक प्रेक्षागृह की तरह लगती हैं जिसमें एब्सर्ड, करुणा और तीक्ष्ण तार्किकता के मेल से बनी एक अ़जीब सी पटकथा मंचित हो रही हो, जिसमें हम सब मानो इस अत्यंत भोंड़े प्रहसन के अभिनेता हैं, जिन्होंने ठीक रिहर्सल तक नहीं किया है और औचक मंच पर धकेल दिये गये हैं। इस तरह के तमाम दृश्यों से भरी ये कविताएं कुछ तल्ख़ किस्म की विडम्बनाओं की ओर से हमें ले जाती हैं। ये साधारण से दिखाई पड़ते बुनियादी सवाल एक दुःस्वप्न की तरह लगते हैं, जिनका इतिहास के पास कोई जवाब नहीं है-

मैंने प्रश्नों की एक सूची तैयार की
जिनके उत्तर पाने के लिए मैं जीवित नहीं रहूँगी
क्योंकि या तो उनके लिए बहुत जल्दी है
या मैं उन्हें समझ नहीं पाऊँगी

वास्तविक क्या था
और क्या सिर्फ वैसा लगा था
इस मंच पर

युद्ध कब बंद होंगे
और उनकी जगह क्या आ जायेगा

उन एक दर्जन लोगों का क्या हुआ
क्या हम सचमुच एक-दूसरे को जानते थे

किन बुरी चीजों को
मैंने अच्छी चीज़ें समझा
और मेरे लिए क्या जरूरी है
कि मैं फिर गलतफहमी में न पड़ूं?

कुछ प्रश्न मैंने नोट किये
ऊँघने के मिनट भर पहले
जागने पर मैं
उनके बारे में तय नहीं कर पायी

शिम्बोर्स्का एक विषय को चुनती हैं और उसके समस्त विरोधाभासों को किसी गणितीय तीक्ष्णता के साथ फैलाती चली जाती है। इनमें गति का एक अजीब सा रचाव है। एक स्थिति दूसरी स्थिति को ध्वस्त करती जाती है। दार्शनिक जिज्ञासाएं उभरती हैं और अति साधारण के साथ एक क्रीड़ा भरे अंदाज में गुंथ जाती हैं। जैसे-जैसे कविता आगे बढ़ती जाती है हम वक्ता को भी एक श्रेणी से दूसरे श्रेणी में स्थानांतरित होते देखते हैं। इसमें प्रत्यक्ष कथन, वार्तालाप स्वगत-सभी कुछ शामिल है। मामूली अनदेखी स्थितियों की नाटकीयताएं हैं। कविताएं जैसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हमें हर बार किसी विस्मृत की ओर ले जाना चाहती हैं। कई बार आधुनिक युग की एक आत्मग्लानि ही कविता का केन्द्रीय भाव बन गयी है। कवयित्री जैसे तमाम ---- वस्तुओं, धारणाओं, स्थलों और लोगों से क्षमा याचना सी करती दिखाई पड़ती है...

मैं नहीं चाहती
कि लहरों का झाग मेरे इशारों पर
उभरे और डूब जाए
मैं नहीं चाहती
कि जंगल मेरे लिए अपने रंग बदले
-कभी हरा
कभी नीला
कभी भूरा होता चला जाए
लेकिन मैं यह भी नहीं चाहती
कि मुझे फिर लौटना पड़े
इस खूबसूरत दुनिया में
मैं छोड़ देना चाहती हूँ
अपने होने का अधिकार

('विदाई एक दृश्य से')

शिम्बोर्स्का की ये कविताएं अपनी बुनावट में इसलिए विलक्षण हैं क्योंकि इनमें तत्व-चिंतन और सांसारिक तथ्यात्मकता साथ-साथ चलती रहती है। वृतान्त और मंथन साथ-साथ हैं। वृहद संदर्भों और 'माइक्रो रियलिटी' की एक आवाजाही है। दृश्य का ड्रामा उनकी हर कविता में है। 'संग्रहालय' शीर्षक कविता ध्वंस के कितने आयामों को रचती है-

रकाबियां सामने हैं लेकिन भूख नहीं
शादी की अगूंठियां हैं लेकिन
उनकी अदला-बदली नहीं
कम से कम तीन सौ साल से
पंखी पड़ी है-कहाँ है गुलाबी गाल ?
तलवारें हैं-कहां गया क्रोध
सूर्यास्त के समय नहीं बजती अब यह बंसी
ताज बचा हुआ है, सर कभी का जा चुका
दस्ताना रह गया है, हाथ नहीं रहा
जूता-रखा हुआ है, पैर हार गया
और मैं सच जानिये मैं अभी जिंदा हूँ
अपनी पोशाक के साथ मेरी प्रतिस्पर्धा जारी है
आपको अंदाजा नहीं मेरी इस प्रतिद्वंद्वी की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जीतने की इच्छा का
आगे निकल जाने की वासना का

युद्धोतर पोलैंड में चेश्वास मिवोश, तारयुश रोज़ेबिच, ज्बिग्न्य हर्बेत के साथ विस्लावा शिम्बोर्स्का उस पीढ़ी की कवयित्री थीं, जिसे 'पोलिश स्कूल ऑफ पोएट्री' कहा जाता है। युद्धोतर पोलैंड के कवियों की यह पीढ़ी बीसवीं सदी के इतिहास के दो सबसे विराट अनुभवों से होकर गुजरी है-दूसरा महायुद्ध और साम्यवाद। इन्होंने पहले हिटलर की तानाशाही को झेला और फिर स्तालिन के समय को। सत्ता और ताकत की बुनियादी बर्बर प्रकृति, राजनीतिक संस्थाओं के समक्ष साधारण मनुष्य को नियति, सर्वसत्तावाद, प्रचार आधारित सच के खोखलेपन और मूल्य विशृंखलित दुनिया को इस पीढ़ी ने देखा और उसमें कवि-कर्म की अनिवार्यता को अपने-अपने तरीके से खोजा है। यह विलक्षण है कि इन चारों कवियों के अनुभवों की जड़ें कुछ ठोस ऐतिहासिक परिस्थितियों में हैं पर वे अपने इस अनुभव को भूगोल, भाषा और संस्कृति की सीमाओं के पार ले जाते हैं। इन सभी कवियों में ऐसी संवेदना है जो सार्वकालिक है, सार्वलौकिक है। इन चारों ने अपनी-अपनी विशिष्ट राहें चुनी हैं। मिवोश आत्म-निर्वासन की ओर गये। हर्बेत की जड़ें क्लासिक परम्परा में हैं। रोजेविच इतिहास के झंझावत के बीच खड़े होकर भाषा में 'अन्डरस्टेटमेंट' और उपस्थित-अनुपस्थित का एक जादू रचते हैं। शिम्बोर्स्का तमाम विपरीत स्वभाव वाली चीजों का अद्‌भुत मेल कराती हैं। यथार्थ और विभ्रम। समय और समयहीनता। इतिहास और शाश्वतता। सामुदायिक और वैयक्तिक। अवसाद और जीवन की ललक। गांभीर्य और क्रीड़ा-भाव। सब एक साथ हैं यहां।

मैं दुनिया का एक नया और संशोधित संस्करण बना रही हूँ
जिसमें बेवकूफों के लिए मज़ाक
उदास लोगों के लिए अवसाद
गंजों के लिए कंघे
और बूढ़े कुत्तों के लिए करतब होंगे

जिस निरायासत्ता और सादगी को उन्होंने साधा है उसमें हल्के-फुल्के पन और अनौपचारिक सी दिखती भंगिमा के बावजूद भाषा की आंतरिक तहों में खास तरह की विकलताएं हैं। बल्कि विकलताओं, सेंस, ऑफ ह्यूमर और खिलवाड़ का यह एक ऐसा मेल है जो ताकत की दुनिया में नैतिक प्रतिरोध का एक अनिवार्य हिस्सा लगता है। इस सादगी में एक कसावट और सतर्कता है, जो एक लंबे आत्म-संघर्ष से आयी है। कवयित्री भले ही निरायस ढंग से कुछ कहती प्रतीत हो पर वह जानती है कि इस दुनिया में अब कुछ भी सीधा और सरल नहीं रह गया है। वह कहती है 'निश्चितता सुंदर है पर अनिश्चतता उससे कहीं ज्यादा सुंदर।' नोबेल पुरस्कार के समय शिम्बोर्स्का ने जो भाषण दिया, उसमें ऐसी ही बात को रेखांकित किया गया था कि आज सभी तरह के अत्याचारी, निरंकुश, कट्टरपंथी और जननायक एक भयावह आत्मविश्वास से भरे हुए हैं और प्रचंड उन्माद के साथ अपने-अपने कार्यों में लगे हुए हैं। वे जानते हैं कि जितना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी उन्होंने जान लिया है, वह उनके लिए और बाकी सबके लिए पर्याप्त है। ताक़त के संसार में पाशविकता और आत्मविश्वास की इस थीसिस को शिम्बोर्स्का ने बड़े निराले ढंग से उठाया है। इस संदर्भ में उनकी एक कविता की कुछ पंक्तियां देखने लायक हैं-

क्या किसी बाज ने अपना गुनाह माना है ?
-शिकार पर झपटने के पहले कभी झिझका है कोई चीता ?
डंक मारते हुए बिच्छु शर्मिन्दा नहीं था
और अगर सांप के हाथ होते तो
वह भी उन्हें बेदाग ही बताता
नरभक्षी व्हेल का दिल यों
चाहे एक टन का हो
और सभी मायनों में बिल्कुल हल्का होता है
सूर्यमाला के इस तीसरे ग्रह पर
पशुता की पहली निशानी है
निर्द्वंद्व आत्मा और अडिग विश्वास

('आत्मग्लानि के हक में')

शिम्बोर्स्का अपने इस नोबल पुरस्कार भाषण में कहती हैं 'यदि कोई सचमुच कवि है तो हमेशा इस बात को दोहराएगा कि 'मैं नहीं जानता'। कवि जब कभी पूर्णता की ओर आता भी है तो फिर से एक अधूरेपन और अपर्याप्तता को चुनता है। यह संशय, बेचैनी और सतत प्रश्नाकुलता ही उसके लिए बुनियादी चीजें हैं।'

शिम्बोर्स्का की एक कविता की पंक्तियां हैं-

'कविता
लेकिन कविता है क्या
एक कमजोर उत्तर भर ललचाया
इस प्रश्न से
लेकिन मैं नहीं जानती और नहीं जानती और
मैं इसे पकड़े हूँ
मुक्तिदायी जीने की रेलिंग की तरह'

अपने अधूरेपन की यह स्वीकृति कला में कितने अप्रत्याशित मानवीय अर्थों को रच सकती है। शिम्बोर्स्का के कविता संग्रह 'एक कुत्ते का एकालाप' में 11 सितम्बर 2011 को न्यूयार्क में वर्ल्ड ट्रेंड सेंटर की गगनचुम्बी इमारतों पर हुए आतंकवादी हमले पर एक कविता है- 'ग्यारह सितम्बर का फोटोग्राफ'। एक स्थिर चित्र में वे इमारतों से कूद रहे हैं और शिम्बोर्स्का बस इसी एक क्षण पर कविता 'फ्रीज' कर देती हैं, क्योंकि वहां अभी भी जीवन बचा हुआ है। कविता में अधूरेपन का यह आशय कितना अर्थपूर्ण है-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वे अभी भी हवा के दायरे में हैं
पड़ोस में उन जगहों के
जो अभी-अभी खुली है।
मैं सिर्फ दो चीजें कर सकती हूँ उनके लिए
उड़ान का बने रहना
और आखिरी पंक्ति न जोड़ना

शिम्बोर्स्का अब जब नहीं रहीं तो उनकी ये पंक्तियाँ याद आ रही हैं-

'मैंने प्रश्नों की एक सूची तैयार की है
जिनके उत्तर पाने के लिए मैं जीवित नहीं रहूँगी
क्योंकि या तो उनके लिए बहुत जल्दी है
या मैं उन्हें समझ नहीं पाऊँगी'

महावीर, 8302, महावीर रचना, प्लाट 84
सेक्टर-15, सीवीवी वेलापुर, नवी मुंबई-400614
मो. 09820370825

लेख में कविताओं के उद्धरण अशोक वाजपेयी के अनुवाद ('कोई शीर्षक नहीं')
और विजय अहलूवालिया के अनुवाद ('बीतती सदी में') से साभार लिये गये हैं

सदानीरा

कविता की अनिवार्य किताब

- पहली किताब अप्रैल 2012 में प्रकाशित।
- कविताओं के अतिरिक्त कवियों द्वारा लिखी डायरियाँ, नोटबुक्स, जर्नल्स और यात्रा-वृतांत भी आमंत्रित।
- कवियों से साक्षात्कार, उनके द्वारा किए रेखांकनों का भी प्रकाशन।
- प्रकाशक और कवि अपने कविता संग्रह समीक्षार्थ भेज सकते हैं।

मूल्य : एक प्रति रु. 25/-वार्षिक : रु. 300/-

सम्पर्क

महेन्द्र गनन
25-ए, प्रेस काम्पलेक्स
महाराणा प्रताप नगर, भोपाल
फोन: 0755-2555789
मो. 9425011789
E-mail : pahlepahal@gmail.com

आग्नेय
बी-207, चिनार वुडलैण्ड,
कोलार रोड, भोपाल-462016
फोन 0755-2424126
मो. 09303139295
E-mail : agneya@hotmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

श्रद्धांजलि स्मरण: अदम गोंडवी

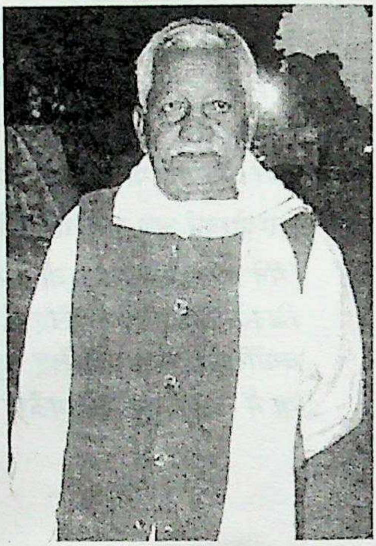

एक बेहद भरोसेमंद और प्रिय आवाज़ का जाना

विजय बहादुर सिंह

कानपुर में आयोजित उत्तरप्रदेश के जनवादी लेखकों के उस पहले सम्मेलन में मध्यप्रदेश के अध्यक्ष के नाते मैं भी पहुंचा था, अपने कवि मित्र शलभ श्रीरामसिंह के साथ। दिन भर की संगठनात्मक गतिविधियों के बाद रात जो कवि सम्मेलन हुआ उसमें हम दोनों भी श्रोता रूप में बैठे थे याद पड़ता है उस सम्मेलन की अध्यक्षता शीलजी कर रहे थे। जिसमें उत्तर प्रदेश के दो दर्जन कवि और शायर पाठ कर रहे थे। निश्चय ही अधिकांश जन- कवियों का पाठ आकर्षण शून्य और प्रभावहीन था। तभी एक और नाम पुकारा गया- अदम गोंडवी। हमने समझा कोई बूढ़ा होगा, गया-गुजरा उर्दू शायर गोंडा का। शायरों की जानी-पहचानी अदाएं लिए हुए-लंबा कुरता, ढीला-ढाला पायजामा, ऊपर काली शेरवानी और सिर पर शायरों वाली वही जानी-पहचानी काली टोपी। ऊपर से आँखों में धारदार सुरमा, होंठ दिन भर चबाए गए पान की पीक से रंगे हुए होंगे। पर हमारा यह सारा अनुमान इस तस्वीरतोड़ू शायर को देख यकबयक ढह गया। देखा कि वह घुटनों से जरा से नीचे तक धोती पहने, खादी के बिल्कुल मोटे-झोटे कुरते और जाकेट में नाटे कद किन्तु चमकीले गोरे रंग का एक पैंतीस-चालीस साल का ठेठ देहाती अल्हड़ नौज़वान, गले में गमछा लपेटे माइक पर आ खड़ा है। उसके खड़े होने का अंदाज़ ऐसा बेढब और आत्म विश्वास से भरा हुआ था जैसे कोई खिलाड़ी खेल के मैदान में हो और अपने हुनर को लेकर काफी हौसलामंद हो। अब उस दृश्य की याद आती है तो कविवर केदारनाथ अग्रवाल की 'चन्द्रगहना से लौटती बेर' की ये पंक्तियां याद आ रही हैं ''देखता हूँ दृश्य अब मैं/ मेड़ पर इस खेत की बैठा अकेला/ एक बीते के बराबर/ यह हरा ठिगना चना/बाँधे मुरैठा शीश पर/छोटे गुलाबी फूल का/सजकर खड़ा है....''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'अदम' उस मंच पर सचमुच कुछ-कुछ ऐसा ही अंदाज़ लिए प्रकट हुए थे और उनका वह रूप-रंग जो निपट कवि-विरोधी और देहाती था हमें कुछ-कुछ चकित-विस्मित कर रहा था। हम दोनों अब तक ढेर सारे औसत से भी नीचे के कवियों को सुनते हुए अधमरे से हो चले थे और हल्के-फुल्के मूड में आ गए थे। सोच भी रहे थे कि अगर यही जनवादी कविता और शायरी है, तो हो चुका संगठन। पर हमारी यह सोच तब एकदम से पलटी खा गई जब अदम ने अपने शेर पढ़े-

तुम्हारी फाइलों में गांव का मौसम गुलाबी है
मगर ये आँकड़े झूठे हैं ये दावा किताबी है।।

• •

इनसान काले गोरे के खेमे में बंट गया
तहज़ीब के बदन पे सियासी लिबास है

रोटी के लिए बिक गई धनियां की आबरू।
लमही में प्रेमचंद का होरी उदास है।।

हमारी खुशी, उत्सुकता और हमारा हौसला जब इस कदर बढ़ और गहरा रहे थे तभी हमारे कानों में उसके ये बोल भी पड़े-

खुदी सुकरात की हो याकि हो रूदाद गांधी की।
सदाक़त ज़िंदगी के मोर्चे पर हार जाती है।।

फटे कपड़ों से तन ढाँके गुज़रता हो जहाँ कोई।
समझ लेना वो पगडण्डी अदम के गाँव जाती है।।

याद नहीं अदम ने उस रात यह शेर भी पढ़ा या नहीं-

यूं खुद की लाश अपने काँधे पे उठाए हैं।
ऐ शहर के बाशिन्दो हम गाँव से आए हैं।।

पर जितना सुनाया था उसी ने हमारे भीतर अदम को लेकर अजब सा आकर्षण पैदा कर दिया था। रात ही यह आकांक्षा प्रबल हो उठी थी कि इसके पास जाया जाय और दोस्ती का प्रस्ताव रखा जाय।

उस रात तो हम दोनों अपने-अपने बिस्तर पर आ गए पर सबेरे की चाय पीने के तत्काल बाद ही हमने अदम नाम के उस अलबेले शायर को हमने ढूंढना शुरू कर दिया था। और वो मिला तो फिर ऐसे कि हमेशा के लिए हमारा अपना हो गया। सो भी हर तरह से। इसके कई और कारण भी थे, पर सबसे बड़ा कारण तो उसकी वह अनोखी शायरी और उसका पढ़ने का अंदाज़ ही था। कहते हैं कि है ग़ालिब का अन्दाज़ बयाँ और... ।

अदम उस सुबह हमसे मिलकर कितने खुश हुए यह तो हम नहीं समझ सके पर हम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दोनों यह महसूस करने लगे थे कि अब हमारा त्रि-भुवन बन गया। खासकर मैं, जिसे मध्यप्रदेश में प्रगतिशील लेखकों के सुसंगठन के बावजूद जलेस के प्रान्तीय अध्यक्ष के रूप में अपनी भूमिका निभानी और साबित करनी थी। प्रलेस में उस समय हरिशंकर परसाई जैसे बड़े लेखक, ज्ञानरंजन और कमला प्रसाद जैसे सिद्ध लेखक और संगठक मेरे सामने थे।

अदम को पाकर मैं अपनी ताकत दुगुनी महसूस करने लगा था। उनकी शायरी में वह सब कुछ था जिसकी जरूरत न केवल हम सब लेखकों बल्कि दुख और असूझ निराशाओं के बीच घिरा समूचा त्रस्त लोकजीवन महसूस कर रहा था। उनकी शायरी में इन तमाम तकलीफों की ब्यौरेवार पहचान थी। आजादी के बाद के वे सारी विडंबनाएं, सारे सामाजिक राजनीतिक रोग, जो समस्त राष्ट्रीय जीवन में धीरे-धीरे महामारी की तरह फैल चुके थे अदम उन्हें बाकायदा अपने शेरों में एक-एक कर गिनवा रहे थे। उस व्यवस्था की ओर भी तीखे आक्रामक इशारे कर रहे थे, जो इन तमाम रोगों की जननी थी। लोगों के मन में अब अपनी ही चुनी हुई सरकारों पर कोई भरोसा नहीं रह गया था। आक्रामकता और लोकगुहार उनकी शायरी की खूबसूरती थी-

पैसे से आप चाहें तो सरकार गिरा दें।
संसद बदल गई है यहां की नख़ास में।।

पक्के समाजवादी हैं तस्कर हों या डकैत।
इतना असर है खादी के उजले लिबास में।।

जनता के पास एक ही चारा है बगावत।
यह बात कह रहा हूँ मैं होशो हवास में।।

जलेस के उस सम्मेलन में अदम से जो मुलाकात हुई थी उसके मूल में तो उनके तल्ख़ और मुकम्मल शेरों की खूबसूरती आधारभूत थी, पर पढ़ने के उस अनूठे अंदाज़ की भी कम नहीं थी। यह जान लेने पर कि अदम भी हमारी तरह न केवल अवध के हैं बल्कि हमारे ही अपने गांव-जवार के हैं और हमारी बोली-बानी भी एक है, उनके प्रति हमारा आकर्षण गहरे अपनत्व और आत्मीयता में ढलता चला गया। जब गाँव घर की बात चली तो पता लगा कि मेरे पड़ोस के गाँव की लड़की अदम के गाँव ब्याही है और वे बाराती के रूप में हमारा इलाका अब तक कई कई बार रौंद चुके हैं। इस जानकारी के बाद तो हम अदम के लिए कभी कभी ससुराल वाले हो उठते और वे देशी मजाकों पर उतर पड़ते।

जिन दिनों उनका विदिशा आना-जाना जलेस के आयोजनों के बहाने शुरू हुआ, वे चौरासी-पचासी के आस-पास के दिन थे। वेणुगोपाल, तब तक अपने पिता की आकस्मिक मौत का तार पा हैदराबाद लौट चुके थे। शलभ श्रीराम सिंह अपनी दो बेटियों-प्रतिभा और प्रज्ञा के साथ कल्याणी भाभी- को उनके भाग्य के भरोसे कोलकाता छोड़ विदिशा आ मेरे साथ रहने लगे थे। कविश्री नागार्जुन का आना तो सरसठ-अड़सठ से बदस्तूर जारी था ही। आने की ऋतु, मौसम और तारीखें वे खुद तय किया करते, जाने की तारीखों के साथ। जब कभी किसी

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आयोजन के निमित्त मेरा निमंत्रण उनके पास पहुंचता तब भी अपने रुकने और प्रस्थान करने की अवधि वे खुद ही सुनिश्चित करते। युवा कवि नरेन्द्र जैन भी तब तक भोपाल से तबादला ले सेन्ट्रल बैंक विदिशा में आ गए थे और नागपुर के युवा कथाकार जयशंकर अपनी पहली ही पोस्टिंग में स्टेट बैंक की कृषि शाखा में। वे हमारे लिए सबसे यादगार दिन थे। इतने सारे छोटे-बड़े ज्ञात-अज्ञात साहित्य-नक्षत्रों का एक साथ उठना-बैठना कम्यून जैसी समृद्धि और आभा लिए हुए था। इसका सौन्दर्य तब और बढ़ जाता जब पड़ोस भोपाल से राजेश जोशी, विनय दुबे या नवीन सागर आ धमकते। विदिशा के साहित्यिक इतिहास के ये सबसे सुनहले दिन थे। साल में दो एक बार मध्यप्रदेश या महाराष्ट्र की साहित्यिक यात्राओं या फिर अपने पूज्य विनोबा भावे से मिलने वर्धा जाते वक्त कवि श्री भवानी भाई भी दो-चार दिनों के लिए स्वेच्छा से हॉल्ट कर लिया करते।

सन् छियासी में मेरी शोध छात्रा सविता (भार्गव) भी शादी कर मेरे ही मुहल्ले में आकर पास ही किराए से रहने लगी। एक डेढ़ साल भी नहीं बीते होंगे कि विदिशा की तहसील गंजबासौदा से उसकी प्रिय छात्रा और आज की चर्चित युवा कवयित्री नीलेश रघुवंशी भी गाहे-बगाहे आने-जाने लगी और एकाध साल के भीतर ही बासौदा से बी.ए. कर चुकने के बाद उसने मेरे ही कॉलेज के हिन्दी विभाग से एम.ए. करना शुरू कर दिया था। रहती भी वो सविता के साथ ही थी। इसलिए हम तीनों का खाना-पीना, उठना-बैठना लगभग साथ साथ चला करता। एकांत श्रीवास्तव भी इस बीच में शोध छात्र के रूप में अपने गाँव कोमा, जिला रायपुर छत्तीसगढ़ से चलकर प्रवासी पंछी की तरह महीने-दो-महीने के लिए आने लगा था। इनमें से कोई भी किसी होटल लॉज या धर्मशाला में नहीं ठहरता। खाने-पीने और सोने के लिए हम दोस्तों के घर काफी थे। कोई तख़त के ऊपर तो कोई नीचे फर्श दरी पर। हमारे दिलों इतनी जगह थी कि हमें कोई अतिरिक्त नहीं महसूस होता। शलभ, नागार्जुन और एकान्त मेरे यहां, वेणु और जयशंकर ठाकुर साहब यानी (राणा) रघुनाथ सिंह के यहां, भवानी भाई महिलाश्रम वर्धा की अपनी पुरानी छात्रा श्रीमती केशर लड्ढा के यहाँ। अन्य बचे-खुचे सविता और नीलेश के मिनी ड्राइंग रूम में। हाँ, कैफ़ भोपाली साहब जरूर अपने नियत होटल में ही ठहरा करते और हमसे सिर्फ दारू और खिचड़ी का टैक्स वसूलते। ये ही दिन थे जब मेरी भतीजी शशी भी पढ़ाई के लिए मेरे साथ आ रहने लगी थी।

नहीं जानता यह कैसा संयोग था, पर था अद्‌भुत। एक ऐसा नायाब साहित्यिक विश्वविद्यालय जिसमें सब अपने-अपने उस्ताद। एक से एक बढ़कर, नयों को अपना पुराना गुर सिखाते हुए।

शलभ, नरेन्द्र जैन, छायाकार मित्र शरद श्रीवास्तव और बीच-बीच में भोपाल से चलकर आने वाले कविमित्र विनय दुबे, उधर ग्वालियर से मुकुट बिहारी सरोज। जनवादी लेखक संघ की संगठनात्मक गतिविधियाँ तेजी से जारी थीं और प्रदेशाध्यक्ष के तौर पर मैं विदिशा को उसका केन्द्रीय कार्यालय जैसे बनाए हुए था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसी कम्यून में अदम भी आने-जाने और उठने-बैठने लगे थे। महीने-दो-महीने के लिए इलाहाबाद से चलकर नीलकांत और चार-छह रोज के लिए कभी-कभार भाई शरद जोशी। बाद में तो अष्टभुजा शुक्ल भी। विदिशा के उन दिनों पर कोई चाहे तो एक पूरी किताब लिख सकता है। वे हमारी साहित्यिक सम्पन्नता और ऐतिहासिक सक्रियता के दिन थे।

अदम हमारे जरा से बुलावे पर आ जाते और कम्यून में अपनी उपस्थिति बाकायदा दर्ज किया करते। वह हमारा एक अलग गोकुल और मधुवन था। साहित्यिक घाट और छोटा-मोटा जमघट भी। स्थानीय स्तर पर चित्रकार रघुनाथ सिंह उर्फ ठाकुर साहब (वेणु का दिया हुआ नाम), गायक के रूप में हम सबके प्रिय विनोद रंजन उपाध्याय, छायाकारों में अत्यन्त प्रतिभाशाली शरद श्रीवास्तव (अब स्व.) के अलावा प्रकृत प्रतिभा का धनी छायाकार अशोक महेश्वरी जिसे नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, कवि शील से लेकर बौद्ध विहार सांची के भन्ते संभावना प्रकाशन हापुड़ के अशोक अग्रवाल और प्रख्यात लेखक खुशवंत सिंह भी अपने लिए पंसद किया करते। नरेन्द्र जैन और शलभ तो अशोक और शरद को जोड़कर एक चौकड़ी सी ही बना लिया करते जो कभी-कभी अपनी अराजकता के चलते असह्य भी हो उठा करती। अराजकता का सौन्दर्य भी किन्तु देखने लायक ही बनता। अड़तालीस स्वर्णकार कालोनी विदिशा का मेरा वह निवास जिसे याद करते हुए कवि नरेन्द्र जैन ने अगस्त 2009 में एक कविता लिखी-

विदिशा में 48 स्वर्णकार कालोनी
अदीबों के बीच जुबान पर चढ़ा मुहावरा हो गया था
उस एक ठिकाने पर नागार्जुन, कैफ भोपाली
त्रिलोचन, भवानी प्रसाद मिश्र भाऊ समर्थ, शलभ श्रीरामसिंह
विश्वेश्वर, माहेश्वर तिवारी, नीलकांत
वेणु गोपाल, विनय दुबे, उदय प्रकाश, राजेश जोशी
शरद श्रीवास्तव, अशोक महेश्वरी, अशोक अग्रवाल
नवीन सागर, अष्टभुजा शुक्ल, एकांत श्रीवास्तव और
अंतरंग नामों की एक फेहरिस्त है जो वहां
आते ही रहे।
48 स्वर्णकार कालोनी में अब कोई नहीं रहता
मुमकिन है कि बंद दरवाजे से फेंक दी जाती हो
कोई चिट्ठी भीतर
इस पते के रहवासी अब आबाद किए हैं भोपाल
मैं नहीं जाता उनके नये पड़ाव की ओर
अलबत्ता विदिशा की उस पुरानी गली से
अब भी रोज गुजरता हूँ
गली, जिसके सिर पर एक आरा मशीन है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और जहाँ निरन्तर शोर के बीच
आरी से झरता रहता है बारीक बुरादा।

इस सूची में जाने कैसे सत्यप्रकाश मिश्र, अदम और दूधनाथ सिंह या फिर राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के महामंत्री डी.पी. त्रिपाठी का नाम छूट गया। इसी मण्डली के बिन्दास सदस्य रामकृष्ण अग्रवाल आरा मशीन वाले भी- जिनके बगैर शाम की महफ़िलें रंगीन ही नहीं होतीं।

अदम हमारे बुलावे पर विदिशा आते तो जमकर रहते और लौटते हुए विदाई की याद के लिए कोई मजाकिया जुमला छोड़ जाते-' डॉक्टर साहब। एह माँ से हमरयौ लिए एकाध छूटन-छाटन मिलै क चाही। हमहूँ तो ते पहिनी-ओढ़ी।' यानी कि मेरे विलास में उनका भी स्वाभाविक हिस्सा बनता है और यह उन्हें नाते-रिश्तेदार के नाते बतौर हक आते-जाते मिलना ही चाहिए। मैं कभी उनके लिए कोई अच्छा सा खादी का कुरता या जॉकेट खरीदता। जाड़े के दिनों में पीताभ खादी की ऊनी शाल तो पहले से उनके कंधों पर होती शुद्ध खादी की।

अदम की अभिरुचि में था क्या सिवाय धोती-कुरता और गमछा के। जाड़े में जाकेट, शॉल और चमड़े की एक देहाती पनही। अण्डरवियर से लेकर बहँकटी तक सबका सब देशी और खादी का। अलावा इसके बीड़ी या फिर कोई सस्ती सी सिगरेट। अदम की जिन्दगी में किन्तु सबसे आखिर में, जुड़ी शराब ऐसे दुखद रूप से जुड़ी कि घुटाए न छुटी। अंततः वह उन्हें अपने साथ ही ले गई। लगभग हम लोगों की बाहों से छीन और झपट कर।

एक बार मैं बेटे के साथ शाम के वक्त गोण्डा पहुंचा तो कुछेक परिचितों की यह टिप्पणी मुझे दहशत से भर गई कि शाम पांच छह बजे से ही अदम होश में नहीं रहा करते। इसलिए उन्हें इस वक्त खोजना और मिलने की कोशिश करना व्यर्थ ही होगा। शराब और वो। बस कोई भी तीसरा इस वक्त उन्हें मंजूर नहीं। पर ऐसा भी नहीं था। लखनऊ में हुई एकाध मुलाकातों में, जिसमें पूरी रात हम एक ही कमरे में साथ रहे, अदम नशे की हालत में भी बेहद संतुलित रहे। इस पूरे ख़्याल के साथ कि मैं उनके साथ हूँ और उनके किसी भी व्यवहार से मुझे असुविधा का अनुभव नहीं होना चाहिए। और यह सब किसी स्वार्थ या भय के चलते नहीं सहज अपनत्व, सघन विश्वास और उससे उपजे आदर और प्रेम के चलते। अदम का यह गहरा इंसानीबोध हमेशा बरकरार रहा।

अदम एक बार विदिशा आए तो मेरे लिए प्रसिद्ध समाजविज्ञानी विचारक पूरनचन्द जोशी की लिखी किताब 'परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम' लिए हुए। यह 1987 की बात है। किताब मु े बेहद अच्छी लगी। खासतौर से उसकी भूमिका जिसमें जोशी जी ने लिखा 'भारतीय विकास और परिवर्तन सम्बन्धी प्रायः सभी जटिल प्रश्नों और समस्याओं को प्रखर रूप से पहचान और उन पर एक भारतीय मूल दृष्टि (या मूलदृष्टियों) के निर्माण में गांधी-नेहरू संवाद की एक महत् भूमिका रही है। इस माने में भारतीय सन्दर्भ में गांधी और नेहरू एक दूसरे के बिना अपूर्ण हैं।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'आज के वर्ग में कौन-सा वर्ग गांधी और नेहरू की युगान्तरकारी विरासत का योग्य अधिकारी बनेगा और कौन गांधी और नेहरू युग की सीमाओं को लाँघकर राष्ट्रीय शक्तियों के नये गठन में सहायक होगा- यह गांधी-नेहरू युग के बाद का मुख्य प्रश्न बना हुआ है जो भारत की नयी पीढ़ी के सामने ऐतिहासिक चुनौतियाँ प्रस्तुत करता है।'

अदम मेरे लिए यही किताब लेकर क्यों आए, यह तो मैंने उनसे कभी नहीं पूछा पर इसमें लेखक का गांधी-नेहरू संवाद पर जोर देना बेहद महत्त्वपूर्ण लगा। तथापि शायर अदम का अपना भरोसा शायद इस बात पर कभी नहीं रहा। कांग्रेसी समाजवाद के तो वे कटु आलोचक थे ही, स्वातंत्र्योत्तर भारत में उसकी विकराल परिणतियों को देख बेहद क्षुब्ध और आक्रामक भी रहे- गाँधी के फलसफे पर तो वे खुद अपनी ही पार्टी लाइन से विचलित होते दिखे-

ये नई पीढ़ी पे निर्भर है वही जजमेंट दे।
फलसफा गांधी का मौजूँ है कि नक्सलवाद है।

इससे अलग वे यह तो लिख ही चुके थे-

देखना सुनना व सच कहना जिन्हें भाता नहीं
कुर्सियों पर फिर वही बापू के बंदर आ गए

एक राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में वे भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के साथ थे, किन्तु बगावत, हिंसा और नक्सलवाद पर उनका कवि कभी कभी कुछ अलग ही ढंग से सोचा करता था- 'जनता के पास एक ही चारा है बगावत' जैसे मिसरे उनकी शायरी में हैं। पर जनता किसके विरुद्ध बगावत करे? क्या अपने ही सांसदों, विधायकों, चुनी हुई सरकारों और नौकरशाहों के खिलाफ। उसी बगावत का स्वरूप और चरित्र कैसा हो- इस तरह के कई सवाल हैं जो अदम को सुनते और पढ़ते हुए उठते हैं। उनकी शायरी में इसका कोई विवरण या संकेत नहीं मिलता। इससे यह भी लगता है कि गुस्से के एक खास मुकाम पर पहुंच कर उनके मुँह से ये बातें अकस्मात निकल पड़ती हैं। इसके पीछे कोई सोची समझी प्रक्रिया या फिर किसी तरह की कोई सैद्धांतिकी नहीं दिखती है। अधिक सही यह कि शायर का यह एक विशेष भाव-क्षण (मूड) है।

अदम यहां अकेले भी नहीं हैं। उनके साथ नागार्जुन, मुकुट बिहारी सरोज, दुष्यंत कुमार और मोहनदास कहानी के लेखक उदय प्रकाश भी हैं। कहानी के नायक मोहनदास का बेटा कहानी के अंत में बस्तर के जंगलों की तरफ सशस्त्र जाता दिखाया गया है। पर ऐसा भी नहीं कि यह सब नीम बेहोशी का लेखन हो।

पत्थर उछालने की बात तो दुष्यंत भी करते हैं। एक पार्टी कार्यकर्ता होकर भी अदम अपनी शायरी में पार्टी लाइन का अतिक्रमण करते हैं और इसी से हम पाठकों को यह अनुभव करने का अवसर मिलता है कि उनके कवि पर उनका कार्यकर्ता कभी भी हावी नहीं होता पाया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गया। यह भी कि अदम कवि पहले हैं, कार्यकर्ता बाद में। यह तभी संभव है जब रचनाकार की मूल भित्ति को उसकी नैसर्गिक प्रतिभा का बल मिला हुआ हो। अब साबित करने की जरूरत नहीं कि अदम के पास सचमुच यह प्रतिभा बल था।

उनके श्रोता और पाठक, दोनों जानते हैं कि अदम की निगाह अपने आस-पास से लेकर दूर-दराज तक की सभ्यताओं की तमाम गतिविधियों के प्रति बेहद चौकन्नी और चुस्त थी। न केवल साम्राज्यवादी अर्थनीति और राजनीति को लेकर बल्कि आधुनिकतावादी, उत्तर आधुनिकतावादी साहित्य-प्रवृत्तियों को लेकर भी वे सचेत और चौकन्ने थे। वे भले ही कहते रहे कि उनकी किसानी शायरी गँवारू किस्म की है पर जो समकालीन कविता और शायरी थी, उसकी प्रत्येक सोच और चाल पर उनकी बहुत गहरी और बारीक निगाह थी।

साहित्य जन-संघर्ष का एक अहम हथियार है इसे मानते हुए वे यह भी कहते रहे कि जन-संघर्ष का चेहरा-मोहरा बदलेगा तो साहित्य की अन्तर्वस्तु और उसका रूप-विधान भी क्यों नहीं बदलना चाहिए। मुख्य शर्त है साहित्य की सम्प्रेषणीयता का। फिर अदम जैसों के लिए तो और भी, जिसकी कविता गाँव-कस्बों से लेकर स्वयं को अति सुपठ और जागरूक मानने वालों के बीच आती-जाती थी। इसलिए उनके सामने मुख्य समस्या समय के उस चेहरे को ठीक से चित्रित करने की थी, जो सच्चा था। अदम ने लिखा भी-

शब्द दर्पण में समय का चित्र बिम्बित हो उठा
सत्य को गरिमा मिली कवि कल्पना की कोर से।

कवि का मुख्य काम यही है कि वह अपनी काव्य-शक्ति से जीवन की सच्चाइयों की रक्षा करे न कि काव्य-कल्पना के विहार के लिए उनका उपयोग-

दर्द के दरिया में अश्कों की रवानी है ग़ज़ल
हुस्ने फ़ितरत से मुसलसल छेड़खानी है ग़ज़ल

जामो-मीना की खनक से भी ये वाबस्ता ज़रूर।
देखिए अब ज़िन्दगी की तर्जुमानी है ग़ज़ल।।

अदम ने तभी यह आवाज़ भी लगाई-

भूख के अहसास को शेरो सुखन तक ले चलो।
या अदब को मुफ़लिसों की अन्जुमन तक ले चलो।।

जो ग़ज़ल माशूक के जल्वों से वाकिफ हो गई।
उसको अब बेवा के माथे की शिकन तक ले चलो।।

• • •

ग़ज़ल को ले चलो अब गाँव के दिलकश नज़ारों में।
मुसलसल फन का दम घुटता है इन अदबी इदारों में।।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'दर्द के दरिया में अश्कों की रवानी' या फिर 'बेवा के माथे की शिकन' की कल्पना यह साबित करने के लिए पर्याप्त है कि अदम ग़ज़ल के चेहरे-मोहरे को बदलने के लिए कृत संकल्प थे। और उन्होंने इसे बदला भी। उनका यह बदलना लोगों द्वारा महसूस भी किया गया।

अदम ने अपनी शायरी में अपना वह साहित्यिक कुनबा भी रेखांकित किया जिसके पुरोधा प्रेमचंद थे। उनकी मृत्यु के बाद इधर आई कई टिप्पणियों में यह बात कही गई है कि उनकी शायरी 'खांटी किसानी' तेवर लिए हुए है। उनके पढ़ने का ढंग भी कुछ-कुछ ऐसा था, बेहद चुस्त-दुरुस्त, नपा-तुला, मन पर गहरी छाप छोड़ने वाला। मुकुट बिहारी सरोज स्मृति न्यास (ग्वालियर) की सचिव मान्यता सरोज ने उनकी स्मृतियों को संजोते हुए ठीक ही टिप्पणी की कि उनकी शायरी खुर्द जमीन पर जिन्दगी के सच्चे जज़्बातों को मौलिक जरूरतों के संघर्षों को स्वर देने का काम करती है। उसमें तल्खी भी खूब है, बेबाकी भी। सीधे-सपाट, किन्तु अर्थों की गम्भीरता लिए, शब्द सिर्फ चार्जशीट ही नहीं परोसते, फैसले भी सुनाने को आतुर रहा करते हैं। मान्यता ने ठीक लिखा है कि अदम साहब की संवेदनशील शायरी ने इस मिथक को तोड़ा कि ग़ज़ल सिर्फ कोमलता की भाषा है। यह भी कि वह किताबों से नहीं अनुभवों की पाठशाला से जन्मी है।

अदम का यह ठेठ देशी, किसानी अंदाज़ तब समझ में आता है जब वे मैकाले के बेटों और देरिदा के मुरीदों पर तल्ख टिप्पणियां करते हुए धूमिल, नागार्जुन, प्रेमचन्द, रेणु और तुलसी के प्रति अपनी गहरी आस्थाओं का इज़हार करते हैं।

अदम को उन सारे 'मैकाले के बेटों' को लेकर गहरा ऐतराज़ था जो परंपरागत भारतीय जीवन की सृजनशीलता, जुझारूपन और न्याय-अन्याय बोध को उसकी अपनी पदावली और मुहावरे में न समझ किन्हीं पराए मुहावरों में समझने और उन्हीं में व्यक्त करने वाले लेखन को आधुनिक और जन-प्रतिबद्ध मानते थे। यों अदम को गांधी को लेकर तो आपत्तियां थीं ही और यह सन्देह भी कि गांधी देशी पूंजीपतियों के आदमी हैं और उनके रास्ते चल कर यहां की कामकाजी श्रमिक आबादी को कभी भी मुक्ति नहीं मिल सकती। आश्चर्य फिर भी है कि प्रेमचन्द जैसे लेखकों में उनकी गहरी निष्ठा थी-

वह सिपाही थे न सौदागर थे न मजदूर थे
दरअसल मुंशी जी अपने दौर के मंसूर थे

अपने अफसानों में औसत आदमी को दी जगह
जब अलिफ लैला के किस्से ही यहां मशहूर थे

स्वभावतः यह आम/औसत आदमी वही था जो प्रेमचन्द के यहाँ मौजूद है- यानी कि खेती-किसानी करने वाला, फिर भी न्याय-वंचित रह जाने वाला खेतिहर और खेत मजदूर। बाद के लेखन और खासतौर से परवर्ती, नव प्रगतिशील, नव जनवादी कविता में उसकी उपस्थिति

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पता नहीं किन वजहों से क्षीण होते-होते लगभग विलुप्त सी ही हो गई। अदम उसे दुबारा अपनी शायरी और कविता में ले आए। इस तरह उन्होंने वह साहित्यिक न्याय प्रदर्शित किया जिसकी आजादी के बाद के लेखन में सबसे ज्यादा जरूरत थी।

आजादी के बाद और आस-पास आने वाले प्रतिबद्ध कवियों/गीतकारों में मुकुट बिहारी सरोज, शलभ श्रीराम सिंह, रमेश रंजक और गोरख पाण्डेय जैसों की याद करें तो कहना होगा कि ये सब जनवादी शास्त्रीय यथार्थवाद के नहीं, उस प्रत्यक्ष देशी यथार्थ के कवि हैं जो कविता के मार्फत जनता की लड़ाई उसकी अपनी बोली-बानी और मुहावरों में लड़ रहे हैं। इनमें वह कथित बौद्धिकता और पश्चिमोन्मुख आधुनिकता नहीं है। ये वे कवि हैं जों यह संकेत करते हैं कि पारंपरिक जीवन की बोलचाल और भाषा के लय और छंद में अभी भी वह सामर्थ्य बची है, कि आजादी बाद की नंगी हकीकतों का बयान संभव है। इतना ही नहीं, उस भाषा में वे जन-संघर्ष भी संभव हैं जिनके मार्फत भारत के औसत आदमी को मुक्ति मिलनी है। दुष्यंत, शलभ श्रीराम सिंह, अदम गोंडवी ने गीत, कविता और ग़ज़ल की राह पकड़ हिन्दी कविता और पाठक-समाज के बीच उस रिश्ते को भी पुनर्जीवित किया जो टूट गया था। इन कवियों में जैसी प्रत्यक्ष संप्रेषणीयता थी उर्दू-हिन्दी मैत्री का जैसा स्वाभाविक और सौन्दर्य था, जानी-पहचानी वास्तविकताओं और क्रूर सच्चाइयों की जितनी अचूक पहचान और उनका सटीक बयान था, उसने इन्हें हमारे भरोसेमंद जनकवि के रूप में प्रतिष्ठा दी।

अदम साहित्य के इसी कुल-खानदान और बिरादरी के कवि थे। यथार्थ की समझ भले ही उन्हें वामपंथी पार्टियों से मिली हो पर देखा तो उसे उन्होंने अपने अनुभवों की आंख से। इसलिए उनके देखने में 'आतम अनुभव' (कबीर) जैसी साहसिकता और बेखौफी, नागार्जुन जैसी अचूक वेधकता और धूमिल जैसी आक्रामकता थी।

इस सारे अर्जन के पीछे अदम की वह अनन्य लोकपरायणता और गहरी जनआस्था थी जिसके बीच वे पले-बढ़े और रह रहे थे। संभवतः इसीलिए वे हर जगह यह घोषित कर ऐलान करने से बाज नहीं आते थे- 'ऐ शहर के बाशिन्दो हम गांव से आए हैं।' निस्सन्देह ऐसा कहने में केवल शहर के लोगों का समाज ही नहीं, पश्चिमी दिमागों वाले मैकाले के बेटों वाली बिरादरी भी स्वभावतः उनके इशारों में शामिल थी।

अदम के अकस्मात और असमय चले जाने से हिन्दी उर्दू कविता और समाज का आकाश सूना हुआ है। उनके जाने से कविता की मशालें कम हुई हैं और विशाल जुझारू जन-समाज ने अपनी एक बेहद प्रिय और भरोसेमंद आवाज़ खो दी है।

ऐसी आवाज़ के प्रति हमारी विनम्र प्रणति और श्रद्धांजलि।

एम-29, निराला नगर, दुष्यंत मार्ग, भदभदा रोड, भोपाल
मो. 09425030392

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

श्रद्धांजलि स्मरण: गुरशरण सिंह – 'भ्रा जी'

गदरी बाबाओं और भगत सिंह की विरासत का चमकता सितारा

लाल्टू और दलजीत अमी

पंजाब के बारे में अभी कुछ साल पहले तक बाकी भारत के लोग यह जानते थे कि वहाँ हरित क्रांति हुई है और वहाँ लोग बहुत मेहनती हैं। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में क्रांतिकारी विचारधारा का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय पंजाब के साथ जुड़ा है, यह बात स्कूली शिक्षा में कम ही बतलाई जाती है। हालांकि भगत सिंह के बारे में हर कोई जानता है, उनके पहले और बाद में क्रांतिकारी गतिविधियों का एक विशाल इतिहास है। पंजाबी साहित्य और रंगमंच के अनन्य व्यक्तित्व और समकालीन भारतीय इतिहास में सांस्कृतिक जनांदोलनों के शिखर गुरशरण सिंह भ्रा जी इसी इतिहास के समकालीन स्तंभ थे। उन्हें हर कोई भ्रा जी या हा जी कहता था। पिछले साल 27 सितंबर, शहीद भगत सिंह के जन्मदिन को 82 साल की उम्र में वे हम सब को छोड़ कर चले गए। लंबी अस्वस्थता के बाद जाना ही था। फिर भी तकलीफ होती है। उन जैसा संवेदनशील व्यक्ति ढूँढ कर भी नहीं मिलता। उनकी आवाज़ में एक अनोखी कंपन थी, जो संसार भर की पीड़ाएँ अपने अंदर समेटे हुए थी।

पिछले साल हम उनसे मार्च में मिले थे। बिस्तर पर लेटे हुए समझाते रहे कि हमें दुबारा सोचना है कि क्या गलतियाँ हुई हैं हमसे। रोजाना डायालिसिस पर थे, पर उनको अपने जीवन की चिंता नहीं थी। भारतीय समाज और मानव के भविष्य के लेकर वे चिंतित थे। फिर अपने छात्र जीवन की क्रांतिकारी गतिविधियों के बारे में बतलाने लगे।

बारह साल की उम्र में एक दिन बालक गुरशरण को पता चला कि उसका सहपाठी शिंगारा आगे पढ़ाई जारी न रख पाएगा। शिंगारा एक मेधावी छात्र था, उसकी लिखाई कक्षा में सबसे ज्यादा खूबसूरत थी। पर वह गरीब परिवार से था और उसे कामगर ही बनना था। अपने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
मित्र शिंगारा की मजबूरी में अन्याय और गैरबराबरी पर आधारित समाज को पहचानते हुए गुरशरण रो पड़ा। जीवन के आखिरी दिनों तक भ्रा जी इस कहानी को सुनाते हुए रो पड़ते थे। उसी छोटी उम्र में उनके जीवन की दिशा तय हो गई। समाज में क्रांतिकारी परिवर्त्तन के लिए आजीवन काम करते रहना ही उनकी नियति थी। हर तरह के अन्याय के खिलाफआवाज़ बुलंद करना उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य बन गया।

16 सितंबर, 1929 को मुलतान में जन्मे गुरशरण सिंह को 1947 में देश के विभाजन पर अपना जन्मस्थान छोड़कर भारत आना पड़ा। सांप्रदायिकता के खिलाफ उनकी लड़ाई तब से शुरू हुई। उनका कहना था कि नरसंहार का वह उन्माद देखने के बाद वे जीवन भर कभी खुशी से हँस न पाए। ताज़िंदगी पीड़ितों का वह सैलाब उनकी स्मृति में लौट आता और उन्हें सांप्रदायिक ताकतों के खिलाफसंघर्ष करने के लिए प्रेरित करता। बचपन से ही वे पंजाब की इंकलाबी परंपरा से जुड़ गए थे। गदरी बाबाओं की ग़दर पार्टी में काम करते स्वतंत्रता सेनानी और शहीद भगत सिंह की क्रांति चेतना एक लहर की तरह पंजाब के युवाओं में फैली हुई थी। 1952 के पहले आम चुनावों में विधान सभा के लिए वे ग़दर पार्टी के संस्थापक सदस्य बाबा सोहन सिंह भखना के चुनाव प्रचार में पूरी शिद्दत के साथ शामिल हुए। भखना एक भूतपूर्व सरकारी अफसर से चुनाव हार गए तो हतोत्साहित गुरशरण को उन्होंने समझाया कि देश से बर्त्तानवी साम्राज्यवाद के अंत से राज्य और शोषक श्रेणियों के संबंध में कोई दरार नहीं आई है और सच्ची आज़ादी के लिए लगातार संघर्ष करते रहना पड़ेगा। गुरशरण ने इन विचारों को मन में गाँठ बाँध कर रख लिया और जीवन भर याद रखा।

अधिकतर लोग गुरशरण सिंह को एक वामपंथी नुक्कड़ नाटक निर्देशक के रूप में जानते हैं। वे सही अर्थों में बहुमुखी प्रतिभा संपन्न थे। उनका औपचारिक प्रशिक्षण सीमेंट टेक्नोलोजी एम एस सी में हुआ था और वे भाखड़ा बाँध परियोजना के शुरूआती अभियंताओं में से एक थे। उनका कहना था कि बाँध पर काम करते हुए उन्होंने जाना कि मनुष्य कितना ताकतवर है। नदियों का प्रवाह पथ बदलने की क्षमता रखने वाला इंसान समाज के ढाँचे को क्यों नहीं बदल सकता यह सवाल ही आजीवन उनका ध्येय बना। भाखड़ा बाँध परियोजना के उद्घाटन समारोह के दौरान सांस्कृतिक कार्यक्रम के आयोजन का दायित्व उन पर था। समारोह में प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू और सोवियत रूस के प्रीमियर निकिता खुरुश्चेव आए। सुरक्षा और अन्य कारणों से सामान्य कामगारों को इस समारोह में आने की अनुमति न थी। गुरशरण ने कलाकारों से औपचारिक कार्यक्रम की समाप्ति पर एकदिन और रुक कर कारीगरों के लिए अलग से कार्यक्रम करने का आग्रह किया। कलाकारों ने उनके आग्रह पर ऐसा ही किया। सांस्कृतिक गीत-संगीत के साथ सामान्य जन का जुड़ाव और उनकी उत्तेजनापूर्ण प्रतिक्रिया से गुरशरण अभिभूत हो गए। उन्होंने यह जाना कि जन मानस के साथ जुड़ने और उन तक अपनी बात पहुँचाने के लिए नाटक ताकतवर माध्यम है। यही भारतीय नाटक और खासकर पंजाबी रंगमंच में गुरशरण की कभी न मिटने वाली छाप की शुरूआत थी। वामपंथी चिंतन में उनकी आस्था

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

छात्रावस्था से थी। अमृतसर में कालेज के दिनों में वे वामपंथी छात्र संगठन के सक्रिय कार्यकर्ता भी थे। पर उनका राजनैतिक चिंतन संकीर्ण खेमेबाजी से परे था। सामान्य जन से लगातार जुड़े होने की वजह से उनकी समझ व्यावहारिक थी, और साथ ही नियमित मार्क्सवादी साहित्य के अध्ययन और चिंतकों के साथ चर्चाओं में शामिल होते रहने से उनकी सैद्धांतिक समझ भी गहरी थी। गुरुशरण पंजाब में इप्टा के संस्थापक सदस्यों में थे। उनका पहला नाटक लोहड़ी दी हड़ताल भाखड़ा बाँध परियोजना के श्रमिकों के लिए 1955 में लिखा गया। 1964 में उन्होंने अमृतसर नाटक कलाकेन्द्र का गठन किया जहाँ कलाकारों को प्रशिक्षित किया जाता था। समकालीन पंजाबी रंगमंच की कई नामी हस्तियाँ वहीं से निकली हैं। सत्तर के दशक में पंजाब के युवाओं, खासकर साहित्यकारों पर नक्सलबाड़ी के आंदोलन का गहरा असर था। पंजाब की भूमि पर पनपे सिख धर्म में अन्याय के खिलाफ लड़ने की सशक्त परंपरा है। इस परंपरा में किसानों मजदूरों की लड़ाई स्वतः जगह बनाती है। प्रतिरोध की यह परंपरा समूचे पंजाबी युवा-वर्ग को सदियों से प्रेरित करती रही है। 1969 में गुरुनानक देव के 500 वें जन्म दिन पर गुरुशरण सिंह ने नानक के प्रगतिशील विचारों को आधार बनाकर गुरुदयाल सिंह सोढ़ी के नाटक 'जिन सच्च पल्ले होय' को खेला। भ्रा जी का नाटक तैयार हो तो सैंकड़ों गाँवां में खेला जाता था। 1600 गाँवों में इसका मंचन हुआ। महानायक भगत सिंह के जीवन और विचारधारा पर आधारित नाटक 'इंकलाब जिंदाबाद' और ऐसे ही कई नाटकों के कई कई सौ बार मंचन हुए। लोक नाट्य, ग्रामीण बतरस आदि शैलियों का वे बखूबी प्रयोग करते थे।

1975 में गुरशरण ने इंदिरा गाँधी द्वारा इमर्जेंसी की घोषणा का विरोध सड़कों पर उतर कर किया। उन्होंने पश्चिमी पंजाब के प्रसिद्ध साहित्यकार नज़्म हुसैन सैयद के नाटक 'तख्त लाहोर' को खेला, जो पाकिस्तान में जेनरल अयूब खान की तानाशाही के खिलाफलिखा गया था। 1976 में जम्मू विश्वविद्यालय में इस नाटक को खेला गया। पंजाब के तत्कालीन मुख्य मंत्री ज्ञानी जैल सिंह ने यह नाटक देखा और इसकी प्रशंसा की। चार दिन बाद जब यही नाटक अमृतसर में खेला गया, लोगों पर नाटक का प्रभाव देखते हुए गुरशरण को नौकरी से सस्पेंड कर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। लोकतांत्रिक और मानव अधिकारों के हनन के अनुभव गुरशरण के जीवन में लगातार आते रहे। 'ए एफ डी आर', पी यू सी एल, पी यू डी आर आदि संगठनों और जसवंत सिंह खालरा जैसे मानव अधिकार कार्यकर्ताओं के साथ उनका संबंध आजीवन रहा।

अस्सी के दशक के आखिरी वर्षों में वे चंडीगढ़ में बस गए और उन्होंने चंडीगढ़ स्कूल आफड्रामा की स्थापना की। नाटक उनका मुख्य कार्यक्षेत्र बना, पर नाटक के अलावा अन्य कई क्षेत्रों में उनका बहुत काम है। उत्कृष्ट और जनपक्षधर साहित्य को लोगों तक पहुँचाने के लिए 'बलराज साहनी प्रकाशन' के नाम से अनगिनत किताबें छापीं। इसी प्रकाशन से समता नाम की एक पत्रिका भी वे निकालते थे। जब पंजाब में सांप्रदायिक उन्माद और उग्रपंथ का दौर आया और संत जरनैल सिंह भिंदरावाले और दूसरे खाड़कुओं की हिटलिस्ट्स का आतंक चारों ओर फैला हुआ था, तो गुरशरण ने इसके विरोध में 'हिट लिस्ट' शीर्षक कहानी 'समता' में लिखी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी में यह ऐलान किया गया कि लोगों के नाम हिट लिस्ट में डालने वाले आतंकवादी को जनता ने अपनी हिट लिस्ट में डाल दिया है।

अस्सी के दशक में उन्होंने 'बाबा बोलता है' शृंखला के नाटकों के जरिए पंजाब में गाँव गाँव में सांप्रदायिक ताकतों और राज्य द्वारा दमन दोनों के खिलाफ चेतना फैलाई इनमें भाई मन्ना सिंह नामक एक व्यक्ति, जो वे स्वयं थे, सूत्रधार के रूप में आता है और सामाजिक राजनैतिक संरचनाओं पर सवाल उठाता है। कुछ समय तक दूरदर्शन के जालंधर केंद्र से भी ये नाटक प्रसारित हुए।

शुरुआती दौर में मुख्यत: मंच से नाटक करने के थोड़े ही समय बाद वे नुक्कड़ पर आ गए। उनके अनुसार मंच के लिए सिर्फ एक थड़ा चाहिए। थड़ा का मतलब है कहीं भी जैसे तैसे तैयार किया मंच। नाटकों में विषय वस्तु हमेशा समकालीन सामाजिक राजनैतिक विषयों से जुड़ा होता था। रोजाना खबरों से ही उनके नाटक का कथ्य बनता था। उनके नाटक बेसहारा, बेआवाज लोगों की आवाज बन गए। गरीब खेत मजूरों की व्यथाएँ, जात-पात आधारित भेदभाव का विरोध, स्त्रियों की करुण स्थिति, यह उनके नाटकों के विषय थे। असगर वजाहत की कहानी ('गड्ढा' पंजाबी में 'टोआ') हो या उनका अपना लिखा 'कर्फ्यू' उनकी कोशिश रहती कि क्रांतिकारी विचारधारा की सीमाओं में रहते हुए भी नुक्कड़ नाटक के फार्म में सौंदर्य-शास्त्र के स्तर पर भी कुछ काम किया जाए। यह बहुत कठिन काम था और आलोचक निष्ठुरता से उनको तुच्छ दिखलाने में लगे रहते। निजी तौर पर भ्रा जी भावुक होकर गरजते- उनके लिए नाटक मुख्यत: एक माध्यम था। उनका नाटक नान-फिक्शन का गंभीर थीएटर था। वे राज्य सत्ता को और राज्य सत्ता के बारे में सच बतलाना चाहते थे। उद्देश्य क्रांतिकारी ताकतों को सहारा देना था, लोगों में क्रांतिकारी चेतना फैलाना था। वे निडर होकर लोगों के बीच में जाकर अपनी बात कहते थे। पटियाला के पंजाबी यूनिवर्सिटी में पत्रकारिता विभाग में कार्यरत प्रोफेसर नवजीत सिंह जोहल ने अपने संस्मरण में 1989 में भ्राजी के साथ की एक यात्रा के बारे में लिखा है। उन दिनों आतंकवादियों के ख़ौफ से देर रात को बसें चलती नहीं थीं। जालंधर से चंडीगढ़ की आखिरी बस में आते हुए वे रास्ते में नवांशहर में रुके। जोहल के पूछने पर रात के अँधेरे में गुरशरण आतंक के माहौल को नज़रअंदाज़ करते हुए जटिल राजनैतिक परिस्थितियों पर चर्चा करने लगे। बातें करते हुए उनकी आवाज़ ऊँची होती रहती थी। धीरे धीरे उनके आस-पास भीड़ बढ़ने लगी और थोड़ी ही देर में वहाँ दूकानों, ढाबों आदि से, कामगरों समेत हर कोई उठकर उनकी बातें सुनने आ गया। घंटे भर वे निडरता से बोलते रहे। यथार्थवादी जननाट्य का इससे बेहतर कोई उदाहरण न हो सकता था।

भ्रा जी ने राज्य के सभी क्रांतिकारी वाम गुटों को एक मंच पर लाने की एक अनोखी कोशिश की। अस्सी-नब्बे के दशकों में करीब दस साल तक, हर एक मार्च को आठ संगठनों के कार्यकर्त्ता भ्रा जी के नेतृत्व में निकलते और सारे पंजाब का दौरा कर भगत सिंह के शहीदी दिवस 23 मार्च को उनके पुश्तैनी गाँव खटकर कलाँ में इकट्ठे होते। 1988 की 23 मार्च को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आतंकवादियों ने क्रांतिकारी कवि अवतार सिंह पाश की हत्या कर दी। इसके बाद से हर साल यह जन-यात्रा पाश के गाँव तलवंडी सलेम में खत्म होती। यात्राओं के दौरान जगह जगह सभाओं का आयोजन कर लोगों में सांप्रदायिक ताकतों और राज्य द्वारा दमन, दोनों के खिलाफ चेतना फैलाई जाती। ऐसी सभाओं में संत राम उदासी जैसे क्रांतिकारी लोकगीतों के गायक भी शामिल होते थे। 'ना हिंदू राज ना खालिस्तान, राज करे मजदूर किसान' के नारों के साथ सैंकड़ों लोगों के जुलूस शहरों गाँवों में घूमते। इन दिनों उनकी सरगर्मी इतनी अधिक थी कि उनकी जान को हर वक्त खतरा था। वह समय ऐसा था कि एक ओर आतंकवादी, प्रगतिशील ताकतों को खत्म कर रहे थे तो दूसरी ओर पुलिस और अर्द्धसैनिक बल भी गैरकानूनी ढंग से बेइंतहा दमन में लगे हुए थे।

मौका मिलते ही उनके साथ हम कुछ करने की कोशिश करते। हम कुछ साथियों ने मिलकर लोकतांत्रिक अधिकारों की रक्षा के लिए 'चंडीगढ़ सिटिजन्स कमेटी' नाम की संस्था बनाई, तो उसके मुख्य संरक्षक भ्रा जी थे। बड़े स्नेह के साथ हमारी बातें सुनते, हमें सलाह देते। पोखरण नाभिकीय विस्फोटों और कारगिल युद्ध के बाद 'साइंस ऐंड टेक्नोलोजी अवेयरनेस ग्रुप' के नाम पर हमलोग स्कूलों और अन्य सार्वजनिक स्थानों पर घूम घूम कर युद्धविरोधी चेतना फैलाने में लगे थे। हमारे पास राष्ट्रीय स्तर पर युवा वैज्ञानिकों का तैयार किया स्लाइड शो था, जिसमें नाभिकीय विस्फोटों और हिरोशिमा नागासाकी की विभीषिका पर जानकारी थी। भ्रा जी ने हमारी स्क्रिप्ट के आधार पर नाटक तैयार किया और वह नाटक भी कम से कम सौ बार खेला गया। चंडीगढ़ के सेक्टर 17 में भ्रा जी के साथ कई बार हम लोग खड़े होते, कभी सरकारी दमन के प्रतिवाद में तो कभी सांप्रदायिक ताकतों के खिलाफ आवाज उठाने। एक बार बारिश में भीगते हुए यूनिवर्सिटी से सेक्टर 17तक गए। प्रख्यात रंगकर्मी नीलम मानसिंह चौधरी भी साथ थीं, हमलोग दीपा मेहता की फिल्म की शूटिंग पर हुए हमले के खिलाफ प्रतिवाद कर रहे थे। रास्ते भर हम जनगीत गाते रहे। युद्धविरोधी नाभिकीय विस्फोटों वाले नाटक के साथ भी गीत गाए जाते- मैं और अन्य साथी क्रांतिकारी गीतों के पोस्टर बनाकर ले जाते और ऊँची आवाज में दर्शकों को पढ़ कर सुनाते।

वर्ष 2005 में चंडीगढ़ के पंजाबी ट्रिब्यून अखबार की ओर से सर्वेक्षण करवाया गया कि सबसे उल्लेखनीय पंजाबी व्यक्ति कौन है। क्रमश: लोकनाटककार गुरशरण सिंह, बाबा बलबीर सिंह सीचेवाल (एक प्रदूषित नदी को सामूहिक कार सेवा द्वारा साफकरवाने से प्रख्यात) और सेना प्रमुख जे जे सिंह का नाम आया। संयोग से ये परिणाम 11 जनवरी को प्रकाशित हुए, जिस दिन कुछ वामपंथी संगठनों की पहल पर 25000 लोगों ने मोगा के पास कोस्सा नामक गाँव में खेतों के बीच समारोह कर गुरशरण सिंह को सम्मानित किया। हालाँकि वामपंथी गुटों की आपस में काफी अनबन है, फिर भी 25000 लोगों का एक नाटककार को सम्मानित करना अपने आप में एक अद्भुत घटना थी। यह खबर किसी मुख्यधारा के अखबार या दृश्य मीडिया में नहीं आई। गुरशरण सिंह अपने आप में लोहड़ी के त्यौहार के दिनों में पंजाब में हर जगह गाए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जाते लोक गीतों के नायक 'दुल्ला भट्टी' जैसा एक प्रतीक बन गए हैं, जिन्होंने कभी किसी राजनैतिक ताकत की परवाह नहीं की और सरकार और आतंकवादियों के खिलाफ हिम्मत और असंभव साहस के साथ गाँव गाँव जाकर नाटक के जरिए संघर्ष किया। सम्राट अकबर के जमाने में लाहौर से उत्तर की ओर पंजाब के इलाकों में दुल्ला भट्टी नामक एक दस्यु या डाकू हुआ था, जो धनी ज़मींदारों को लूटकर गरीबों की मदद करता था। गुरशरण सिंह ने 58 वर्षों से लगातार नाटक क्षेत्र में सक्रिय रहकर पंजाब में नाटकों के कई आंदोलन खड़े किए। वैसे तो उन्हें राष्ट्रीय स्तर पर संगीत नाटक अकादमी और मध्यप्रदेश सरकार से कालिदास सम्मान जैसे कई पुरस्कार मिले हैं, पर जो स्नेह उन्हें पंजाब के गाँवों में नाटक खेलते हुए लोगों के विशाल हुजूमों से मिलता है, वह मैंने एक दो बार देखा है और मैं कह सकता हूँ एक कलाकार के लिए लोगों की ऐसी स्वत:स्फूर्त्त भावनाएं मैंने कहीं और नहीं देखीं। जिस तरह दुल्ला भट्टी सदियों तक पंजाब के लोक मानस में अन्याय के खिलाफ लड़ने का प्रतीक बना रहा, उसी तरह भ्रा जी या बाबा मन्ना सिंह नाम से भी जाने जाने वाले गुरशरण सिंह के लिए जुग जुग जीने की सदाएं उस दिन कोस्सा गाँव में गूँजती रहीं। पिछले दो दशकों में ऐसे अनगिनत जन समारोहों में भ्रा जी को सम्मानित किया गया है।

दुल्ला भट्टी, भगत सिंह आदि की तरह ही गुरशरण सिंह के लिए भी पंजाब के गाँवों में जन-उत्सवों के दौरान लोकगीत गाए जाते हैं। इस परंपरा को कवीश्शरी कहते हैं। ऐसे ही एक कवीश्शर अमर सिंह शौंकी का गीत है:-

लक्खाँ बंदे जहान विच्च जांदे ते औंदे	*लाखों लोग जहाँ में आते जाते हैं*
मरदां वाले मुरातबे विरले पौंदे	*मर्दों जैसे मुरातबे विरले ही बो जाते हैं*
विरली जम्मदी माँ है जो शेर सदौंदे	*विरलीजनमती है माँ संतान जो शेर कहलाते हैं*
कथनी दे कई शेर ने कुछ कर दिखलौंदे	*कथनी के कई शेर हैं, कुछ ही कर दिखलाते हैं*
लक्खाँ विच्च कोई सूरमें है फ़र्ज निभौंदे	*लाखों में कुछ; ही सूरमें हैं जो फ़र्ज निभाते हैं*
दुनिया करदी याद है जो करम निभौंदे	*दुनिया करती याद है; उनको जो करम निभाते हैं*
शौंकी जिहदे नाम नूँ जग विच्च बड़ेऔंदे	*शौंकी कहता इनके नाम जगत में बड़े हो जाते हैं*

इसमें आखिरी पंक्ति को बदल कर अक्सर यूँ गाया जाता है:-

साड्डे हा गुरशरण सिंह उहनाँ विच्च औंदे	*हमारे ये गुरशरण सिंह उनमें ही आते हैं*

वैज्ञानिक चेतना, स्त्री अधिकारों के लिए संघर्ष, ऐसे हर ज़रूरी विषय पर वे नाटक तैयार करते और सूत्रधार की भूमिका में नाटक में शामिल होकर दर्शकों से सीधी बातचीत करते। एक वक्त उन्होंने यह आंदोलन छेड़ा कि स्त्रियों के प्रति अपमानजनक शब्द बोलनेवालों को सजा दी जाए। ऐसा अपराधी अगर सरकारी मुलाजिम हो या पुलिस का आदमी है तो उसके लिए सजा सामान्य नागरिक से ज्यादा होनी चाहिए। ऐसी एक समझ का विकास वे नाटकों के जरिए कर रहे थे। पंजाबी साहित्य में भ्रा जी का बहुत बड़ा अवदान है। जब भी हम उनसे मिलते तो आग्रह करते कि पंजाबी कहानियों को हिंदी के पाठकों तक पहुँचाया जाए। इसी के फलस्वरूप कई

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानियों का अनुवाद किया गया।

भ्रा जी के लिखे कुल नाटकों की तादाद लगभग 70 है। उनके नाटक जितने बार खेले गए हैं, वह संख्या असाधारण है। ऐसा न पहले कभी हुआ है, न ही फिर कभी हो सकता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी कई मुल्कों में, जहाँ भी पंजाबी या हिंदी बोलने वाले लोग हैं, वे अपना छोटा सा ग्रुप लेकर गए हैं और सैंकड़ों बार नाटक किए हैं। उनकी छवि ऐसी बन गई थी कि लोग उनका नाम सुनते ही आना चाहते थे, उनको और उनका नाटक देखना चाहते थे।

भ्रा जी ने क्या नहीं किया। वे भगत सिंह और ग़दर पार्टी के इतिहास पर हुए काम के मुख्य प्रेरणा स्रोत थे। जालंधर के 'देश भगत यादगार हाल' में सालाना इन्कलाबी सांस्कृतिक सम्मेलनों की जान भ्रा जी थे।

हमें पता था कि वे संजीदगी से काम न करने वालों को बुरी तरह डाँटते हैं, पर हम लोगों के लिए उनके मन में अगाध स्नेह था। अध्यापक संगठन का काम करते हुए हम कई बार उन्हें यूनिवर्सिटी ले आए। उन्होंने कभी मना नहीं किया। कम से कम खर्च में वे काम करते और खुद तो पूरी लगन के साथ काम करते ही, ग्रुप के बाकी सभी से भी अपेक्षा रखते कि सभी अपना बेहतरीन काम दर्शकों को दें।

पंजाब के कई शहरों में साहित्यिक और सामाजिक राजनैतिक विषयों पर चर्चाएँ करने वाली एकाधिक संस्थाएँ उनके आग्रह से बनीं। चंडीगढ़ की संस्थाएँ 'साहित्त चिंतन', 'चेतना मंच' उन्हीं की बनाई हैं, जिनमें हम लोग सक्रिय रहे। राजनैतिक कैदियों के अधिकारों के लिए बनाई मानव अधिकार संस्थाओं जैसी कई राष्ट्रीय संस्थाओं के संस्थापक सदस्यों में भी वे एक हैं। क्रांतिकारी राजनैतिक दलों के लिए भी उन्होंने सलाहकार की भूमिका निभाई।

जैसा कि भावुक मानवतावादियों के साथ हमेशा होता है, भ्रा जी भी ताज़िंदगी बेहतर भविष्य के लिए लड़ते रहे। उनकी ऊर्जा असीम थी। पंजाब के अनगिनत कलाकारों ने उनसे प्रारंभिक शिक्षा ली। देर सबेर राज्य सत्ता के साथ जुड़े संस्कृति मुल्लाओं ने उन्हें कुछ सम्मान भी दिए। 1990 में उन्हें लुधियाना की पंजाबी अकादमी ने सर्वश्रेष्ठ नाटक लेखन के लिए, 1993 में राष्ट्रीय संगीत नाटक अकादमी ने और 2004 में मध्य प्रदेश सरकार ने कालिदास सम्मान से पुरस्कृत किया। भारतीय नाट्य संसार में उनके अवदान के लिए उन्हें 2006 में राष्ट्रीय संगीत नाटक अकादमी का फेलो चुना गया। जीवन के आखिरी समय मई 2011 में पंजाब आर्ट काउंसिल ने उन्हें लाइफटाइम अचीवमेंट अवार्ड का पुरस्कार दिया।

हमने उनको बहुत कम जाना, जितना जाना वही कभी पूरा लिख नहीं पाएँगे। रह रह कर बातें याद आती रहेंगी।

द्वारा प्रो. हरजिन्दर सिंह, सेंटर फार कम्प्यूटेशनल नेचुरल साइंसेज एंड बायोनामिक्स, आई आई आई टी-एच
गच्ची बावली, हैदराबाद-500032
मो. 09908811010

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शताब्दी स्मरण: अली सरदार जाफ़री

मैं अपने अहले-वतन के एहसास और जज़्बात की ज़बां हूँ

कुन्दन माली

अली सरदार जाफ़री की कविता जीवन के अनगिनत पहलुओं को छूती है जिसमें प्रेम, वतनपरस्ती, प्रकृति से इन्सान के रिश्तों में आने वाले बदलाव, सामाजिक असमानता, विषमता, अन्याय, उत्पीड़न, वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारत की भूमिका तथा अपने नैतिक-मानवीय मूल्यों एवं गंगा-जमनी तहज़ीब के बल पर भारत का परचम अलग और बाकी दुनिया से कहीं ऊँचा होने की बात उजागर होती है। मतलब देश के अखिल भारतीय कलेवर, खुशबू तथा रंगत को उसकी बुलंद आवाज़-अदायगी में देखना हो तो अली सरदार जाफ़री की कविता पढ़नी चाहिये।

अली सरदार जाफ़री की शायरी के अलग मिज़ाज और परिवेश को रेखांकित करते हुए सज्जाद ज़हीर ने काफ़ी मौजूं टिप्पणी करते हुए लिखा है- 'शायरी का यह मैदान इतना विस्तृत है कि अगर इसमें एक तरफ़ ललित लेखन की क्षमता है, जिस तरह चित्रकला में छोटे-छोटे सूक्ष्म लघु चित्रों की, तो दूसरी तरफ बड़े-बड़े कैनवास पर मोटी-मोटी रेखाओं और चमकीले रंगों के सम्मिश्रण से बनाये गये चित्रों की भी है।.... सरदार जाफ़री की बड़ी कविताओं में ऐसी ही बड़ी-दीवारी चित्रकारी का आनंद है। उनके शब्द स्पष्ट और शक्तिशाली हैं, उनकी लय ऊँची और जोश से भरी हुई है, निश्चित रूप से उनकी शैली उपदेशकों-जैसी है, इसलिए कि वे जनसमूह में सुनाने के लिये भी कही गयी हैं। और यह उनका गुण है अवगुण नहीं। क्या मौलाना रूमी की मसनवी का, मीर अनीस के मरसियों का, इक़बाल के शिकवे का, शेक्सपीयर के नाटकों का अंदाज़ उपदेशकों-जैसा नहीं है ? ये सब रचनाएँ भी जनसमूह को सुनाने के लिये कही गयी थीं, जाफ़री की लम्बी कविताएँ इसी विधा की हैं, इनमें सरलता, प्रवाह और सत्यता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
है और वे सुनने वालों पर सीधा प्रभाव डालती हैं और कामयाब हैं' ('मेरा सफ़र,' फ्लैप से)।

सरदार जाफ़री की कविता की तमाम खूबियों, उसकी गेयता, पठनीयता और दिक्काल के परिप्रेक्ष्य में उसकी प्रभावशीलता की पहचान करने की दृष्टि से उनके प्रतिनिधि काव्य-संग्रह 'मेरा सफ़र' की कविताओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिये क्योंकि इस संग्रह में 1947-77 तथा 1978-98 की अवधि में लिखी गई कविताएँ शामिल हैं।

II

'मेरा सफ़र' के पहले खण्ड में सरदार जाफ़री के शुरुआत के बरसों में लिखी गई वे तमाम ग़ज़लें, गीत, नज़्में और शेर शामिल हैं जो उनके काव्य सरोकारों को निर्धारित करते हैं तथा जीवन के प्रति उनके नज़रिये को भी स्पष्ट करते हैं। सन् 1947 से लेकर 1977 तक के तीस बरसों के इस दौर में जो बात जाफ़री की काव्यात्मक अभिव्यक्ति के केन्द्र में देखी जा सकती है वह एशिया तथा भारतीय उपमहाद्वीप में नवजागरण था कि पुनर्जागरण के जज़्बे को उसकी समग्रता में जाकर उजागर करने का काम ही है। मार्क्सवाद तथा प्रगतिशील नज़रिये से तमाम ज़िन्दगी, कायनात, इन्सानियत, तवारीख़ और भूगोल को एक नये ही सिरे से पहचान कर उससे एक बड़े समूह को मानवीय तथा सामाजिक स्तर पर ले जाकर जोड़ने का काम जिस बड़े सर्जनात्मक उत्तरदायित्व की अपेक्षा रखता है, वह सरदार जाफ़री की कविता के तेवर को निर्धारित भी करता है और उनके काव्यकर्म की सार्थकता को भी उजागर करता है। सरदार जाफ़री की कविता उनके चिंतनपरक पक्ष की व्यावहारिक अभिव्यक्ति का ऐसा उदाहरण कही जानी चाहिये जिसमें जीवन के अनुभव अपनी तीव्र तथा घनीभूत अनुभूतियों के साथ घुलमिल कर सामने आते हैं। वस्तुत: सरदार जाफ़री इन्सानी जज्बातों तथा तजुर्बों की बात करते हैं जो किसी खास देश या समय की सीमाओं के परे भी जाती है। उनकी कविता इस दृष्टि सार्वकालिकता तथा सार्वभौमिकता के तत्वों से समृद्ध कविता है। राजनीति, प्रेम, गांधीवाद, संस्कृति, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दे, मेहनतकश लोगों की महिमा, मार्क्सवाद के प्रति निष्ठा तथा अपनी भाषा के प्रति हमारे नज़रिये के अलावा इन कविताओं में नवस्वतंत्र देश हिन्दुस्तान के लोगों द्वारा देखे गये सपनों तथा उनके नतीजों की बेबाक पड़ताल की गई है।

देश की आज़ादी के साथ जिस पीढ़ी ने होश संभाला था, उसके अनेक सपने थे और उन्हें पूरा करने की हसरत उनकी आँखों में थी। आजादी की लड़ाई के दौरान जिन आदर्शों की पैदाइश हुई, वह तत्कालीन परिवेश में जीवन का केन्द्र बिन्दु थे। उन तमाम आदर्शों के साकार होने की प्रतीक्षा में, एक नये सूरज के उदय होने के इन्तज़ार में बाकी लोगों के साथ अली सरदार जाफ़री भी थे। इसी आने वाले कल का स्वागत करते हुए एक कविता 'सुब्हे-फ़र्दा' का आगाज़ इस तरह से होता है:

इसी सरहद पे कल डूबा था सूरज हो के दो टुकड़े
इसी सरहद पे कल ज़ख़्मी हुई थी सुब्हे-आज़ादी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह सरहद ख़ून की, अश्कों, की आहों की, शरारों की
जहां बोयी थी नफ़रत और तलवारें उगायी थीं

यहाँ महबूब आँखों के सितारे तिलमिलाये थे
यहाँ माशूक़ चेहरे आँसुओं में झिलमिलाये थे
यहाँ बेटों से माँ, प्यारी बहन भाई से बिछड़ी थी

यह सरहद जो लहू पीती है और शोले उगलती है
हमारी ख़ाक़ की सरहद पे नागिन बनके चलती है
सजा कर जंग के हथियार मैदां में निकलती है
मैं इस सरहद पे कब से मुन्तज़िर हूँ सुब्हे-फ़र्दा का

आज़ादी के बाद देश जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया, जिस तरह से लोगों के स्वप्नभंग हुए, वैसे-वैसे सरदार जाफ़री की कविता की रंगत और तेवर में भी बदलाव आता गया। सरदार जाफ़री की कविता पर 'अनीस', 'इकबाल' और 'जोश' के असर को साफ़ तौर पर देखा जा सकता है। उस दौर की गति, उनकी बौद्धिक प्रतिभा तथा व्यावहारिक सक्रियताओं की वजह से जाफ़री की शायरी को एक नई तरह की चमक मिली। इन शायरों के साथ अली सरदार जाफ़री की समानता का एक बड़ा कारण यह भी रहा कि ये तमाम रचनाकार अपने सोचे गये-देखे गये आदर्शों में सामान्यजन को शामिल मानकर चलते थे और कविता को उन्होंने सामाजिक बदलाव तथा आदर्श को संप्रेषित करने का माध्यम बनाया था। अली सरदार जाफ़री की शायरी इसीलिये अन्तर्मुखी न होकर बहिर्मुखी तेवर तथा बुलंद आवाज़ वाली कविता का उदाहरण हैं। जहाँ तक किसी शायर की वैचारिक प्रतिबद्धता का सवाल है तो ज़माने की रफ़्तार के साथ-साथ उसमें उतार-चढ़ाव आते ही रहते हैं और अली सरदार जाफ़री की शायरी भी इसका अपवाद नहीं है लेकिन क़ाबिले ग़ौर बात यह है कि वे सपनों के टूट जाने पर भी थक-हार कर बैठ नहीं जाते या निष्क्रियता नहीं ओढ़ लेते। इसे ज़िन्दगी की एक अनिवार्यता मानते हुए एक सकारात्मक चुनौती के तौर पर स्वीकार करके आगे के रास्ते की ओर देखने का संकल्प मज़बूत करते दिखाई पड़ते हैं। जिंदगी की मुसलसल जद्दो-जेहद की सरदार जाफ़री की कविता में असली ताकत बनकर उजागर होती है। आदर्शों तथा उसूलों को क्रियान्वित करने के इस उपक्रम में कवि तमाम लोगों के सहयोग का आव्हान करता है और यही कारण है कि लोकतांत्रिक मूल्यों का पोषण करने वाली सरदार जाफ़री की शायरी एक सामूहिक आवाज़ बनकर व्यक्त होती है। उनकी एक नज़्म 'पत्थर की दीवा ' यहाँ देखी जा सकती है:

इन्क़िलाब-सामाँ है/हिन्दी की फ़ज़ा सारी
नज़्अ के है आलम में/यह निज़ामे ज़रदारी
वक्त के महल में है/जश्ने-नौ की तैयारी
जश्ने आम जुम्हूरी/इक़्तिदारे-मज़दूरी
ग़र्के-आतिशो-आहन/बेबसी-ओ-मजबूरी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुफ़लिसी-की बारिश है/रक़्स में शरारे हैं
हर तरफ अंधेरा है/और इस अंधेरे में
हर तरफ शरारे हैं/कोई कह नहीं सकता
कौन-सा शरारा कब/बेकरार हो जाये
शो लाबार हो जाये/इन्क़िलाब आ जाये

सरदार जाफ़री की शायरी केवल राजनैतिक परिवेश तक ही जाकर सीमित नहीं रहती, बल्कि वे साम्यवादी दर्शन के तहत तमाम ज़िन्दगी के मसलों का हल देखना चाहते हैं। साम्यवाद उनकी निगाह में एक ऐसा नज़रिया है जो जीवन के हरेक पहलू में सार्थक बदलाव लाने में समर्थ है क्योंकि वह एक समग्र नज़रिया भी है और उसके असर से बचा नहीं जा सकता। 'मेरा सफ़र' की भूमिका में सिद्दीक़-उर-रहमान क़िदवाई ने इसी बात की ताईद करते हुऐ लिखा है- 'इश्तिराकी नज़रिया सिर्फ सियासी नज़रिया नहीं बल्कि सारी ज़िंदगी और इन्सानी तारीख पर हावी है। इस एतिबार से उनकी बहुत सी नज़्मों में सबसे ज्यादा नुमायाँ 'मेरा सफ़र' है जो यकीनन उस ज़माने की उर्दू की बेहतरीन नज़्मों में शुमार की जाएगी। नज़्म की पूरी साख्त (संरचना), इसका हर-हर मिस्रा और नज़्म खत्म होने के बाद इसका मजमूई (समग्र) तअस्सुर (असर) सरदार जाफ़री के कमाले-फ़न को अयाँ (प्रकट) करता है। वे मुहब्बत करते हैं, हुस्न के मुतलाशी (खोजी) हैं और उस पर बेतरह फ़िदा हो जाते हैं, मगर उनके अन्दर एक हस्सास (संवेदनशील), दर्दमंद और हर सूरते हाल में एक सच्चा, फ़ितरी रद्दे-अमल रखने वाला इन्सान है जो कभी जेल की तन्हाई में जागती आँखों के साथ अपने बच्चे की नींद में शामिल होकर उसके साथ ख़्वाब देखता है। कभी अपनी माँ के दूध के शहदो-शबनम में अपनी खुशबू-ए-ज़बान और एजाज़े-सुख़न का सरचश्मा फूटते हुए देखता है और कभी खुद सरदार और सुल्ताना दुनिया के सारे इश्क करने वालों का इस्तिआरा (रूपक) बन जाते हैं। उर्दू शायरी में बिल्कुल नयी आवाज़ है, जहाँ शे' रीयत और नज़रियाती बाबस्तगी (निष्ठा) को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता'। इसी नज़्म की कुछ पंक्तियाँ देखें:

लेकिन मैं यहाँ फिर आऊँगा/बच्चों के दहन से बोलूँगा
चिड़ियों की जबाँ से गाऊँगा/जब बीज हंसेंगे धरती में
और कोंपलें अपनी उंगली से/मिट्टी की तहों को छेड़ेंगी
मैं पत्ती-पत्ती, कली-कली/अपनी आँखें फिर खोलूँगा
सरसब्ज़ हथेली पर लेकर/शबनम के क़तरे तोलूँगा
मैं रंगे-हिना, आहंगे-ग़ज़ल/अन्दाज़े-सुखन बन जाऊँगा
रूख़्सारे-उरूसे-नौ की तरह/हर आँचल से छन जाऊँगा
जाड़ों की हवाएँ दामन में/ जब फस्ले-ख़िज़ां को लाएँगी
रहरौ के जवाँ क़दमों के तले/सूखे हुए पत्तों से मेरे
हंसने की सदाएँ आएँगी/धरती की सुनहरी सब नदियाँ
आकाश की नीली सब झीलें/हस्ती से मिरी भर जाएँगी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और सारा ज़माना देखेगा/हर किस्सा मेरा अफ़साना है
हर आशिक है 'सरदार' यहाँ/हर माशूका 'सुल्ताना' है।

सरदार जाफ़री की शायरी जीते जागते इन्सान, चलते हुए ज़माने, सरसब्ज़ कायनात तथा इन्सानी ज़िन्दगी को मुतासिर करने वाले तमाम मुद्दों को उजागर करने वाली कविता है और जो काल तथा दिशा की हदों के पार देख सकने में भी सक्षम है और यथार्थवादी धरातल पर खड़ी रहकर ही अपेन लिये कुछ चुनिंदा आदर्शों की तलाश करना चाहती है, लिहाज़ा यह बात भी साफ़ हो जाती है कि इस कविता का परिवेश और मयार इस तरह के हैं जो कभी भी पुराने नहीं पड़ते या बेमानी नहीं हो सकते। जैसा कि सज्जाद जहीर ने संकेत किया है, चित्रात्मकता जाफ़री की कविता में अलग से ही पहचानी जा सकने वाली खूबी है। इसी सिरे को आगे बढ़ाकर कहा जा सकता है कि सरदार जाफ़री की कविता को उसकी समग्रता में समझने की दृष्टि से उनकी बिम्बपरकता खासी मददगार हो सकती है। यह भी कहा जा सकता है कि उनकी कविता चलती-फिरती-दृश्यावली की कविता है जो व्यक्ति को समाज, समय तथा संस्कृति से जोड़ती है, अंचल को प्रदेश, प्रदेश को देश तथा देश को दुनिया से जोड़ती है, अतीत को वर्तमान और भविष्य से जोड़ती है तथा घर-परिवार को सकल जगत से जोड़कर देखने का उपक्रम करती है। यह कविता उन जीवनमूल्यों की तलाश का सतत सिलसिला बयान करती है जो सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक हैं और जिनकी स्थापना के बाद ही एक अमनपसंद-तरक्कीयाफ़्ता जीवन के माहौल की उम्मीद की जा सकती है। यह कविता सामूहिक जनचेतना-का सर्जनात्मक आव्हान है।

सरदार जाफ़री की काव्य-इमेजरी पर टिप्पणी करते हुए सिद्दीकी-उर-रहमान किदवाई ने ठीक लिखा है कि 'यह इमेजरी उनके रास्त, बलन्दबांग और ख़िताबिया अन्दाज़े-बयान में जो रंग भरती है, उससे उनकी आवाज़ का तअस्सुर दुचन्द (दुगुना) हो जाता है। हुस्न उनकी आँखों का रंगीन परदा बनकर उनकी निगाह को रोकता नहीं है, न वह उन्हें किसी ख़्वाबनाक वादी में ले जाकर खो देता है बल्कि उसकी बदौलत हयात-ओ-काइनात से प्यार और उम्मीद-ओ-यक़ीन की राह ज़्यादा रोशन होती है। फितरत (प्रकृति) का हुस्न उनके लिए ख़ासतौर से कशिश रखता है। उनका ज़िन्दा-ओ-बालीदा (जीवंत और विकसित) एहसास खुद उनकी ज़ात (अस्तित्व) को उस मंज़र में मुदग़म (समन्वित) कर देता है', 'एशिया जाग उठा' कविता बिल्कुल इसी धरातल की कविता है:

यह एशिया की जमीं, तमद्दुन की कोख, तहजीब का वतन है
यहीं पे सूरज ने आँख खोली
यहीं पे इन्सानियत की पहली सहर ने रुख से नक़ाब उलटी
सितार के तार से बरसते हुए सितारे
अनार के फूल, आम का बौर, सेबो-बादाम के शिगूफ़े
कोठार, खलियान, खाद के ढेर, कुँवारी पगडण्डियों की गर्दिश

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बलन्द बांसों के झुण्ड हंसती धनक के नीचे
घनेरे जंगल
पठार मैदान, रेगज़ारों के गर्म सीने
गुफाएँ जन्नत की तरह ठण्डी
समन्दरों में कंवल के फूलों की तरह रखे हुए जज़ीरे
चमकते मूँगों की मुस्कुराहट
वो सीपियों की हँसी, वह संयाल लड़कियों के चमकते दांतों की तरह
मोती/वो मछलियाँ गोश्त से भरी कश्तियाँ जो पिघली
सफ़ेद चांदनी में तैरती हैं।

'मेरा सफ़र' के पहले खण्ड में जो अन्य कविताएँ हैं, उनमें समाज, साहित्य, संस्कृति, परम्परा और प्रेम के विषयों को उजागर करने वाली रचनाएँ शामिल हैं, जिनमें सरदार जाफ़री अपनी उर्दू जबान को उसकी ख़ासियतों के साथ याद करते हैं, मेहनतकश लोगों के पसीने के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं, जनजागरण तथा नवचेतना का आव्हान करते हैं, अवध की गंगा-जमनी सांस्कृतिक आबोहवा और उसकी जीवंतता का बखान करते हैं, भौतिक स्तर के प्रेम के सर्जनात्मक पक्ष को रेखांकित करते हैं, घर-परिवार में मौजूद आपसी आत्मीयता तथा बच्चों के दुलार को प्रकट करते हैं, भूख, शोषण तथा विषमता के मद्देनज़र जीवन जीने की मजबूरी को रेखांकित करते हैं, अन्न की महिमा तथा कुदरत से ग्रामीण समाज के लोगों के स्वाभाविक जुड़ाव को स्पष्ट करते हैं, जीवन में सतत संवाद की अनिवार्यता पर ज़ोर देते हैं, जीवन के भाव तथा अभाव के बीच मौजूद फ़ासले को उजागर करते हैं, आदर्श तथा यथार्थ के बीच संभावित नज़दीकी को बताते हैं, मनुष्य मन की संतुष्टि तथा असंतुष्टि जैसे तत्वों की सतत मौजूदगी को दर्शाते हैं और इसके अलावा वे मार्क्स और गांधी सरीखे सामाजिक चिंतकों को आदर के साथ उनके योगदान के लिये याद करते हैं 'कार्ल मार्क्स' कविता की ज़द और तह में मार्क्स के अलावा कोई नहीं है:

वह आग मार्क्स के सीने में जो हुई रोशन
वह आग सीनए-इन्सां में आफ़ताब है आज
वह आग जुम्बिशे-लब जुम्बिशे-क़लम भी बनी
हर एक हर्फ़ नये अहद की किताब है आज
जमानागीरों-खुद आगाहो-सरकशो-बेबाक
सुरूरे-नग़मा-ओ सरमस्ती-ए-शबाब है आज। (पेज-85)

सरदार जाफ़री की कविता नये दौर, नई ज़िंदगी, नये सपनों और नये संकल्पों की ओर ले जाने वाली तरक्कीपसंद शायरी की मिसाल पेश करती है। यह एक ऐसी कविता भी है जिसमें नये ज़माने की तामीर के लिये समाज के हरेक तबक़े का सहयोग मांगा गया है, जिसमें आदर्शों को यथार्थ में तब्दील करने के लिये किये जाने वाले लम्बे संघर्ष की ज़रूरत पर बल दिया जाता है। इस संघर्ष में आदमी का जीवट, प्रकृति का आसरा, मेहनत का आधार, प्रेम-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विश्वास की ताकत और सहभागिता जैसी चीजों की बराबर की अहमियत दिखाई पड़ती है। चूंकि सरदार ज़ाफरी एक देश के लोगों के संकल्पों तथा आदर्शों तक पहुंचने की कोशिश करते हैं, लिहाज़ा उनकी कविता का सुर और तासीर उसे एक तरह की क्लासिक गरिमा और रंगत प्रदान करते हैं। यह तमाम परिवेश को उसकी समग्रता में बदलने की चिंता करने वाली कविता है, इसलिये इसकी अपील भी कभी कम पड़ने वाली नहीं है:

यह सरहद-सरहद जुड़ते हैं और मुल्कों-मुल्कों जाते हैं
बांहों में बाहें डालते हैं और दिल से दिल को मिलाते हैं
फ़िर ज़ुल्मों-सितम के पैरों की जंजीरें-गरां बन जाते हैं
इन हाथों की ताज़ीम करो
तामीर तो इनकी फ़ितरत है, इक और नई तामीर सही
इक और नई तदबीर सही, इक और नई तक़दीर सही
इक शोखो-हसीं ख़्वाब और सही, इक शोखो हसीं ताबीर सही
इन हाथों की तरज़ीम करो
इन हाथों की तकरीम करो
दुनिया को चलाने वाले हैं
इन हाथों को तस्लीम करो

'मेरा सफ़र' के दूसरे खण्ड में जो कविताएँ शामिल हैं, उनका रचना-समय 1978-98 तक का है, और जैसा कि इस अवधि से संकेतित होता है, इस दौर में देश के राजनैतिक निज़ाम में खासी तब्दीली को देखा गया और एक ही राजनैतिक दल का वर्चस्व टूटा। साथ साथ ही जनता के नये निज़ाम से जो उम्मीदें लगाई थीं, वे भी एक-एक करके टूट गईं। मतलब यह भी हुआ कि आज़ादी के बाद जो भ्रमभंग हुआ, उसकी पुनरावृत्ति सन् 1978-1979 में हुई। इस दौर में जो भी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक प्रवृत्तियाँ सक्रिय हुईं, उनको सरदार जाफ़री की इन कविताओं में देखा जा सकता है, और जो दौर विचारधाराओं के भटकाव तथा विचलन का दौर भी है। इस दौर की कविता में हमें सांकेतिक ज़्यादा नज़र आती है तो इसके कारण ढूँढना भी कोई मुश्किल नहीं है:

आये हम ग़ालिब-ओ इक़वाल के नग़्मात के बाद
मुस्हफ़े-इश्को-जुनूँ हुस्न की आयात के बाद

ऐ वतन ख़ाके-वतन वो भी तुझे दे देंगे
बच गया है जो लहू अब के फ़सादात के बाद

नारे-नमरूद यही और यही गुलज़ोर-ख़लील
कोई आतिश नहीं आतिशकदः-ए-जात के बाद

राम-ओ गौतम की ज़मीं हुर्मते-इन्सां की अमीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बांझ हो जाएगी क्या खून की बरसात के बाद

हमको मालूम है वादों की हक़ीकत क्या है
बारिशे-संगे-सितम, जामे-मुदारात के बाद

तश्नगी है कि बुझाये नहीं बुझती 'सरदार'
बढ़ गयी कौसरो-तस्नीम की सौग़ात के बाद

इस खण्ड की बाकी कविताओं में आप-बीती जग बीती, दिल और शिकस्ते दिल, स्वप्न भंग के बाद पनपने वाली निराशा, तमाम मुश्किल हालात के बावजूद इन्सान के जीवट की बात, यथार्थवादी परिवेश में हमारे लोकतांत्रिक निज़ाम पर अनेक सवाल खड़े करने वाले अनगिनत चेहरों की मौजूदगी, रेगिस्तान में भी पानी की खोज निकालने का आदमी हौसला याने जिजीविषा, इन्सानी हसरतों की ऊँची उड़ान, राजनैतिक स्वार्थों की खातिर देश में कौमी दंगे भड़का देने वाली तुच्छ मानसिकता की पड़ताल, पूँजीवादी फायदे की खातिर भोपाल गैस कांड सरीखी त्रासदी में हज़ारों बेकसूर लोगों की मौत पर कवि का अफसोस और इन सबसे ऊपर नयी नस्ल पर शायर के बेइन्तहा भरोसे का इज़हार असरकारी ढंग से होता है:

मुझसे नज़रें चुरा कर कहाँ जाओगे/ऐ मिरे आफ़ताबो
राह में रात की बेकरां झील है/और ऊँची है लहरें
आसमाने सुखन के नये माहताबो/तिरगी ढूंढती फिर रही है तुम्हारा पता
और वो सिर्फ़ मैं जानता हूँ/दर्द की शाहरह से गुज़र कर
आंसुओं की नदी के किनारे/ग़म की बस्ती में जो नूर का झोंपड़ा है
उसमें रहते हो तुम/मेरी ही तरह खानः-ख़राबो
साजिशे कर्गसों की तरह उड़ रही हैं/उनके पर थक कर गिर जायेंगे
और तुम्हारे परों की चमक/कहकशां, कहकशां, गीत गाती रहेगी
ऐ मिरे शोलः-पैकर उकाबो
सुब्हे-फर्दा की वादी में जुए-खाँ हैं/मेरी आवाज़
पत्थर में शोला है/शोले में शबनम
और तूफां में तूफां/और तुम्हारे भी सीने में उसकी चुभन है
सच कहो/आने वाले ज़माने की रौशन किताबो
मुझसे नज़रें चुराकर कहाँ जाओगे?

(नयी नस्ल के नाम, पेज-127-28)

सरदार जाफ़री ने कुछेक शहरों जैसे बम्बई, अवध और भोपाल को अलग-अलग कारणों और सरोकारों के नज़रिये से याद किया है तो दूसरी ओर अपने समकालीन अदीबों और कलाकारों को भी बड़ी शिद्दत के साथ अपनी कविता में जगह दी है। इनमें परवीन शाकिर, अहमद फराज़ तथा अख्तर-उल-ईमान वगैरह खासतौर पर शामिल हैं। वैज्ञानिक तरक्की का जिस तरह से इन्सान की भलाई के लिये उपयोग हो रहा है, उसकी तारीफ़ करते हुए सरदार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जाफ़री साइन्स के खौफ़नाक चेहरे की ओर इशारा करना भी नहीं भूलते। ज़िन्दगी के इस दौर में मुसलसल चलते चले जाने की ज़रूरत और अहमियत को बताते हुए जाफ़री उम्मीद का दामन कभी भी नहीं छोड़ते और तमाम मुश्किल हालात में भी उन्हें एक सार्थक सुबह का इन्तज़ार कभी नहीं भूलता। उदाहरण के तौर पर 'करबला', 'ए शहसवारो', 'अलअतश' तथा 'समन्दर की बेटी' जैसी कविताओं-ग़ज़लों का जिक्र इसी सिलसिले में किया जा सकता है।'ए शहसवारो' कविता की ज़मीन असल में यथार्थपरक सामाजिक हालात से अलग कुछ नहीं है: 'फैला हुआ है दश्त-ए-जिगरताब/प्यासे हैं चश्मे प्यासे हैं गिर्दाब/कुछ और होंगे शहसवारो/ऐ शहसवारो/XXXXXX जाना है आगे-हदद नज़रतक/खुश्की-ए-लब से खत्मे सफर तक/मौजे बला से मौजे-गुहर सवारो' (पेज-119)। सरदार जाफ़री अपनी कविता में उन तमाम मानवीय सरोकारों तथा मुद्दों को तरज़ीह देते हैं जिनसे कोई भी कविता अपनी मानवीय गरिमा तथा क्लासिकल छवि अर्जित करते हुए अपनी सार्थकता और प्रासंगिकता बनाये रखती है। तमाम दीवारों को तोड़ने वाली, तमाम फ़र्क को मिटाने वाली, तमाम दूरियों को पाटने वाली, तमाम लोगों की भावना और संवेदना को व्यक्त करने वाली-कविता ही असल में अपने ज़माने का मौलिक बयान बन सकती है, एक ऐसा मानवीय बयान जो अपने समय में केन्द्रित रह कर आने वाले दौर को सम्बोधित होता है। भारतीय बौद्धिक परम्परा में अपनी अटूट आस्था के बल पर सरदार जाफ़री हमारे वेदों की महानता का बखान करते हैं-'शुऊरे-इन्सां के-आफ़ताबे-अज़ीम की अव्वलीं शुआएँ/जो लहनो-आवाज़ बन गयी हैं/वो अव्वालीं आलमे-तहैयुर/ज़मीन क्या, आस्मान क्या है ?/सितारे क्यों जगमगा रहे हैं ?/तहैयुर इक नग्मःए-मुसलसल/तहैयुर इक रक्से-वालिहाना/तहैयुर इक फ़िक्रे-आरिफ़ाना/कोई है ख़ालिक़ तो वो कहाँ है ?/अगर नहीं है तो फिर ये क्या है ?/ये दिल में किस नूर की ज़िया है ?/बशर का जल्वा है या खुदा है ?' (वेद-ए-मुक़द्दस, पेज-151)।

इस तरह से हम पाते हैं कि अली सरदार जाफ़री की शायरी का जो सिलसिला सन् 1944 से शुरू हुआ वह 1998 तक आते-आते इतिहास, साहित्य, संस्कृति और राजनीति के अनगिनत उतार-चढ़ावों का गवाह बना। इसमें चिंतन के स्तर पर प्रगतिशील नज़रिया मौजूद है तो काव्यकथ्य के स्तर पर अपने ज़माने के जुड़ाव, दबाव, वास्तविक हालात तथा इस महान राष्ट्र की बुनियादी ज्ञान-परम्परा तथा सांस्कृतिक विरासत की जीवंत मिसालें मिलती हैं और क्योंकि यह कविता मानव के मूलभूत अस्तित्व से जुड़ी समस्याओं को आवाज़ देती हैं। अतएव यह भारतीयता में ओतप्रोत है तो वैश्विक परिप्रेक्ष्य से भी खुद को जोड़कर अपनी सर्जनात्मक अहमियत सिद्ध करती है।

C/o श्री गणेश ट्रेक्टर्स, टेकरी,
उदयपुर, राजस्थान-313002

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक अधूरी नज़्म

अली सरदार जाफ़री

नवम्बर, मेरा गहवारा

(आप बीती और जग बीती)

रक़्से-तख़्लीक़

जब कहीं फूल हँसे
जब कोई तिफ़्ल सरे-राह मिले
रात की शाख़े-सियह-रंग पे जब चाँद खिले
दिल ये कहता है हसीं है दुनिया
दस्ते-सैयाद भी है बाज़ुए-जल्लाद भी है
रक़्से-तख़्लीक़े-ज़हाने-गुजराँ जारी है

खोल आँख, ज़मीं देख, फ़लक देख, फ़ज़ा देख

नवम्बर, मेरा गहवारा है, ये मेरा महीना है
इसी माहे-मुनव्वर में
मिरी आँखों ने पहली बार सूरज की सुनहरी रौशनी देखी
मिरे कानों में पहली बार इन्सानी सदा आयी
मशामे-रूह में
मिट्टी की ख़ुशबू फूल बनकर मुस्कुरा उट्ठी
लहू ने गीत गाया
शम्ए-हस्ती जगमगा उट्ठी
यह लम्हा-लम्हःए-मीलादे-आदम था

मैं सत्तर साल पहले इस तमाशगाहे-आलम में
इक आफ़ाक़ी खिलौना था।
हवा के हाथ सहलाते थे मेरे नर्म बालों को
मिरी आँखों में रातें नींद का काज़ल लगाती थीं
सहर की पहली किरनें चूमती थीं मेरी पलकों को
मुझे चाँद और तारे मुस्कुराकर देखते थे
मौसमों की ग़र्दिशें झूला झुलाती थीं
भरी बरसात में बारिश के छींटे
गर्मियों में लू के झोंके

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुझसे मिलने के लिए आते
वो कहते थे हमारे साथ आओ
चल के खेलें बाग़ो-सहरा
मिरी माँ अपने आँचल में छुपा लेती थी नन्हे से खिलौने को
मिरी हैरत की आँख
उस महब्बत से भरे चेहरे को तकती थीं
जिस आइने में पहली बार मैंने
अपना चेहरा आप देखा था

वो चेहरा क्या था
सूरज था, खुदा था या पयम्बर था
वो चेहरा जिससे बढ़कर ख़ूबसूरत
कोई चेहरा हो नहीं सकता
कि वो इक माँ का चेहरा था
जो अपने दिल के ख़्वाबों, प्यार की किरनों से रौशन था

वो पाक़ीज़ा मुक़द्दस सीनः‌ए-ज़र्री
वह उसमें दूध की नहरें
वह मौज़े-कौसरो तसनीम थीं
या शहदो-शबनम थीं
उन्हीं की चन्द बूँदें आज एजाज़े-सुख़न बनकर
उन्हीं की चन्द बूँदें सिह-हर्फ़ो-जादुए-लफ़्ज़ो-बयाँ बनकर
मिरे होंटों से ख़ुशबू-ए-ज़बाँ बनकर
सरे-लौहो-क़लम आती हैं तो शमशीर की सूरत चमकती हैं
हसीनों के लिए वह ग़ाज़ः‌ए-रुख़सारो-आरिज़ हैं
खनकती चूड़ियों, बजती हुई पायल को इक आहंग देती हैं
ज़मीं की गर्दिशों, तारिख़ की आवाज़े-पा में ढलती जाती हैं।
जो अब मेरी जबाँ है
मेरे बचपन में वह मेरी माँ की लोरी थी
यह लोरी इक अमानत है
मेरा हर शे'र अब इसकी हिफ़ाज़त की ज़मानत है

इक़राअ- अल्लमा-िबलक़लम

मिरा पहला सबक इकराअ
है तहसीने-क़लम जिसमें
है तक़रीमे-क़लम जिसमें
क़लम तहरीक़े-रब्बानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क़लम तख़्लीके-इन्सानी
क़लम तहज़ीबे-रूहानी
क़लम ही शाख़े-तूबा भी है अंगुश्ते-हिनाई भी
मिरे हाथों में आकर रक़्स करती है
हज़ारों दाइरों में चाँद और सूरज की मेहराबें
दरख़शां इल्म और हिक्मत की कन्दीलें
हिलाले-नौ का सीना माहे-क़ामिल का ख़जीना है

मिरी उँगली ने पहले खाक़ के सीने पे हर्फ़े-अव्वलीं लिक्खा
फिर उसके बाद तख़्ती पर क़लम का नक़्शे-सानी था
क़लम अंगुश्ते-इन्सानी का जलवा है
उरूज़े-आदमे-ख़ाक़ी का दिलक़श इस्तिआरा है

फ़ितरत की फ़ैयाज़ियाँ

मुझे सूरज ने पाला
चाँद की किरनों ने नहलाया
हर इक शय मुझसे थी मानूस
मुझसे बात करती थी
दरख़्तों की ज़बाँ
चिड़ियों के नग़मे मैं समझता था
हवा में तितलियाँ परवाज़ करती थीं
मैं उनके साथ उड़ता था
मिरी मुट्ठी में जुगन जगमगाते थे
मैं परियों के परिस्तानों में जाता था
अँधेरा काँपता था बिजलियों के ताज़ियानों से
मैं उस पर मुस्कराता था
गरजते बादलों से दोस्ती थी
ख़ाक पर चलते हुए कीड़ों पे बेहद प्यार आता था
हर इक शय जैसे मेरी ज़ात थी मेरी हक़ीकत थी
अनलहक़ ही सदाक़त थी
हरे नीले सुनहरी सुर्ख़ अण्डे
आशियानों में परिन्दों के
वो सब मेरे खिलौने थे
मैं आफ़ाक़ी खिलौना था
मैं ख़ुद फ़िरत था फ़ितरत मेरी हस्ती थी
इसी फ़ितरत ने मेरे खूँ में लाखों बिजलियाँ भर दीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मसें भीगीं रंगों पे जुनूं का बांकपन आया
मिरे आगे नये रंगों में दुनिया का चमन आया
हर इक शमशाद-पैकर लेके फ़िर्दोसे-बदन आया

जिधर देखो उधर बर्नाइयाँ हैं
जिधर देखो उधर रानाइयाँ हैं
शफ़क़ के रंग में भीगी हुई परछाइयाँ हैं

मिरे लग्ज़ीदा लग्ज़ीदा क़लम ने
एक रंगीं और ख़ुशबूदार कागज़ पर
बड़ी मुश्किल से रुकते-रुकते हर्फ़े-इश्क़ लिक्खा
और किसी की बारगाहे-हुस्न में भेजा
हया की शमूअ जल उट्ठी हरीमे-दिलरुबाई में
घुमाया सर झुकाकर देर तक कंगन कलाई में

जिक्र उस परीवश का और फिर बयाँ अपना

कहाँ से आयी हो
कौन हो तुम
न गुल न ख़ुशबू
मगर तुम्हारा बुजूद ख़ुद रूहे-गुलिस्ताँ है
वो क़ायनाते-सुरूर जिसका
ख़ुद अपना सूरज है चाँद अपना
मैं क़ायनाते-सुरूर में साँस ले रहा हूँ
शकुन्तला है यहाँ न हेलन
न हीर है और न जूलियट है
फ़क़त तुम्हारे बदन का मौसम
जो मेरी नज़रों की नर्म बारिश मैं
रंग और नूर बन गया है
कोई नहीं तुमसे बढ़के दुनिया-ए-दिलबरी में
कोई नहीं तुमसे बढ़के दुनिया-ए-आशिक़ी में
हर एक से तुम हसीनतर हो
हर एक से मैं अज़मतर हूँ

●

तुम्हारे होंटों में ख़म में जो लफ़्ज बन रहे हैं
वो मेरे सीने में फूल की तरह खिल रहे हैं
तुम्हारी 'हाँ' इक गुलाब है ताज़-ओ-शिगुफ़्ता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कि जिससे ऐवाने-जाँ मुअत्तर
'नहीं' भी नन्ही-सी इक कली है
जो दिल की नाज़ुक-सी शाख़ में सो रही है
ख़्वाबे-बहार बनकर
यह ख़्वाब ताबीर के गुलिस्ताँ का मुन्तज़िर है
तुम्हारे दिलकश बदन के रंगों में मुज़्तरिब है
तुम्हारी आँखों से झाँकता है
तुम्हारी साँसों में काँपता है
मुझे 'नहीं' की कली अता हो
कि जिससे 'हाँ' का गुलाब महके

●

तुम्हारे शहरे-जमाल में
मेरे दिल का कासा
भटक रहा है
तुम अपने होटों का शहद
आँखों के फूल
हाथों के चाँद दे दो
ये मुफ़्लिसी की सियाह रातें बुजूद पर तंज कर रही हैं
ज़मीन का रंग तुम ज़मीं का जमाल तुम हो
ज़मीं की दौलत
ज़मीं की बेटी
तुम अप्सराओं से और हूरों से पाकतर हो
कि वो तसव्वुर के आस्मानों की पुतलियाँ हैं
तमाम हुस्ने-गुमाँ के पैकर
मगर तुम उस ख़ाक की चमक हो
कि जिसकी नस-नस में
सेब, अंगूर और गेहूँ की फ़स्ल कर ख़ूँ रवाँ-दवाँ है
सहर का सूरज तुम्हारे माथे को चूमता है
बदन में शबनम की रौशनी है

●

हवाएँ जो मेरी राज़दाँ हैं
वो मेरे होटों से लफ़्ज़ लेकर
तुम्हारे कानों की सीपियों में
गुहर के मानिन्द डालती हैं
मैं मुस्कराता हूँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तुम भी हँसती हो
और दोनों
नयी तमन्नाओं के ज़ंज़ीरों में घूमते हैं
न कोई महकूम है न हाक़िम
न कोई क़ानून हैं न सख़्ती
बस एक ज़ंज़ीरे-लुत्फ़, शमशीरे-दिलरुबाई

वरके-नाख़्वान्दा

मैं इक वरक़ हूँ
लिखा है किसने
पढ़ा है किसने
हर इक दरख़्त इक क़लम है हर शाख़ इक क़लम है
समन्दरों की दवात
नदियों में पिघली चाँदी की रौशनी
फ़जा के सैयाल नीलगूँ से
हवाओं के हाथ लिख रहे हैं
सितारों का नूर लिख रहा है
ज़मीन का रक़्स लिख रहा है
ज़मीन की पुश्त से निकलता गुलाबी सूरज
सुनहरी किरनों से लिख रहा है
गुज़रते लम्हात अपने तीरों से लिख रहे हैं
गुज़रती तारीख़ अपने नेज़ों से लिख रही है
तमाम अहबाब लिख रहे हैं
तमाम अग़यार लिख रहे हैं
हरीफ़ों के ख़ंजरों पे ख़ूँ है
सियासते-मक्रो-फ़न की तलवार लिख रही है
महकते ज़ख़्मों के फूल अलफ़ाज़ बन गये हैं
तबस्सुमे-लुत्फ़े-यार का हर्फ़ है गुंचः-ए-शिगुफ़्ता
हदस के ख़ारों की नोक में जुम्बिशे-क़लम है
ज़बाने-बदनाम लिख रही है
ज़बाने-नाकाम लिख रही है
मगर मिरा दिल, मिरा जुनूँ भी तो लिख रहा है
मैं इक वरक़ हूँ
तमाम एहसासे-नातमामी
मगर मुकम्मल किताब जैसे
जो पढ़ सको तो मुझे बताना कि इस सहीफ़े में क्या लिखा है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सहीफ़ः ए- कायनात

ये दो वरक़ हैं
ज़मीन और आस्मान जिन पर
सहीफ़ःए-क़ायनात तहरीर हो रहा है
फ़साना हस्ती को नेस्ती का
फ़साना नेकी का और बदी का
फ़साना ज़ुल्मत का रौशनी का
सहीफ़ : ए-कायनात तहरीर हो रहा है
जो कल कली थी
वो आज गुल है
जो आज गुल है
वो कल समर है

हर एक शय वक़्त की हवाओं की ज़द पे
इक शम्ए-रहगुज़र है
जो बुझ रही है
जो जल रही है
वुजूद पर नाज़ कर रही है

हवाओं के तुन्द-ओ-तेज़ झोंके
जब आँधियों का लिबास पहने
उतरते हैं गारते-चमन पर
तो शाख़े-गुल अपना सर झुकाकर सलाम करती है
और फिर सर उठा के हँसती है
और कहती है-मुझको देखो
मैं फ़ितरते-लाज़वाल का रंगे-शाइरी हूँ
वुजूद का रक़्से-दिलबरी हूँ
जिसे मिटाने की कोशिशें हैं
वो मिट सका है न मिट सकेगा
यह रंग सह्ने-चमन से उबलेगा
मक़्तलों से तुलूअ होगा

हर्फ़े-बद

मिरे ख़िलाफ़ उठाया क़लम हरीफ़ ने
मिरा गुरूर बढ़ा और सर बलन्द हुआ
यही सलीका है बस हर्फ़े-बद से बचने का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कि अपनी ज़ात को इतनी बलन्दियाँ दे दो
किसी का संगे-मलामत वहाँ तक आ न सके
सदाए-कूए-मलामत तलाश करती रहे
मगर नवाए-बहार-आशना को पा न सके
चिरागे-इल्म-ओ-हुनर को कोई बुझा न सके

जियो तो अपने दिल-ओ-जाँ के मयकदे में जियो
ख़ुद अपने ख़ूने-ज़िगर की शराबे-नाब पियो
ख़ुद अपने ख़ूने-ज़िगर की शराबे-नाब पियो
जहाँ के सामने जब आओ ताज़ा-रू आओ
हुज़ूरे-मुहतसिब-ओ शैख़ में सुबू लाओ
जो ज़ख़्म-खुर्दा है वो नग्मःए-गुल लाओ
दिले-शिक़स्ता में बढ़ने दो रौशनी ग़म की
ये रौशनी तो है मीरास इब्ने-आदम की
ये रौशनी कि जो तलवार भी सिपर भी है
मिरी निग़ाह में पैमानः ए-हुनर भी है

हसद

हसद की आँखों का रंग देखो
जो दिल के अन्दर भरे हुए हैं
वो ज़हर-आलूदा संग देखो
जो हाथ में हैं वो फूल देखो
जो रूह में हैं बबूल देखो
लबों पे जो है वो हर्फ़ देखो
हकीर कितना है जर्फ़ देखो
कि दोस्त है
और दोस्त के मुँह पे बात कहने से डर रहा है
वुजूद ज़ाहिर में है मुकम्मल
मगर वो अन्दर बिखर रहा है
वह अपनी नफ़रत का ज़हर लेकर
ख़ुद अपने ख़ूँ में उतर रहा है
वो तंगदिल भी है तंगजाँ भी
तुनुक ज़मीर और तुनुक ज़बाँ भी
ख़बर नहीं उसको वो कहाँ है
कि हर तरफ़ एक शख़्स ऐसा नज़र के अन्दर बसा हुआ है
कि जिसके साये से काँपता है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जब अपना क़द उससे नापता है
तो अपने ख़ंजर को तोलता है
हसद का मारा हुआ यह बन्दा ग़रीबे-शहरे-दयारे-खुद है
शराफ़ते-नफ़्स मर चुकी है बिचारा ख़्वेश-आशना नहीं है

मगर उसी दोस्त की बदौलत
मैं खुद को पहचानने लगा हूँ
मैं उसका एहसान मानता हूँ
ख़ुदा करे उसका दिल कहीं से
सुकूँ की दौलत तलाश कर ले

क़ातिल की शिकस्त

इस कमींगाह में हैं कितने कमाँदार बताओ
तीन कितने हैं सियह तरकश में
गिन के देखो तो ज़रा
कौन-सा तीर है मख़सूस मिरे दिल के लिए

इब्ने-मरियम को किया तुमने सरे-दार बलन्द
और वो ज़िन्दा है
तश्नगी तुमने मुहम्मद के नवासे को दी
'चश्मःए-फ़ैजे-हुसैन इब्ने अली जारी है'

इब्ने-मरियम न हुसैन इब्ने-अली हों लेकिन
ख़ूँ में है ख़ूने-शहादत की हरारत पिन्हाँ
वो जो सदियों से दहकता हुआ अंगारा है
और सीने में मिरे
एक नहीं, सैकडों-लाखों दिल हैं
वो किसी देस का दिल हो कि किसी क़ौम का दिल
वो किसी फ़र्दे-बशर का दिल हो
ज़ख़्म-ख़ुर्दा हो कि नग़्मों से भरा
मेरे सीने में धड़कता है मिरा दिल बनकर
कितने दिल क़त्ल करोगे आख़िर
कितने जलते हुए तारों को बुझा सकते हो
कितने ख़ुर्शीदों को नेज़ों पे उठा सकते हो
'क़त्ल करते-करते ख़ुद तुमको जुनूँ हो जाएगा'

(नामुकम्मल-ज़ेरे-तख़लीक़)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक लम्बी कविता

पिछली शताब्दी के दूसरे दशक में हुए मानगढ़ के आदिवासी विद्रोह और उसके निर्मम दमन की कथा को कवि हरिराम मीणा बार-बार कहने पर स्वयं को बाध्य पाते हैं। पहली बार उन्होंने एक यात्रा विवरण लिखा था जो अपने समय की प्रतिष्ठित पत्रिका 'पहल' में और बाद में दैनिक भास्कर में प्रकाशित हुआ। मीणा ने इसी घटना को आधार बनाकर अपना उपन्यास 'धूणी तपे तीर' लिखा है। और अब यह कविता। *यदि इतिहास न लिख पाओ/तो साथी /लिखो उसी पर कविता......*

हरिराम मीणा

मानगढ़

(एक)

दूर दूर तक
धरती की सलवट सी
काली टेकरियों के तहखानों से
ये कैसी आवाजें
मेरा पीछा करती
घायल लहूलुहान हांफती
कानों के कोमल पर्दों से
बार बार टकरा टकरा कर
जोर जबरदस्ती सी करती
धँसी जा रही भीतर गहरी
हिला रही
मस्तिष्क-कंदराओं के फाटक
ज्यों घन के आघात, नहीं दस्तक साधारण
किंकर्त्तव्यविमूढ और भौंचक्का सा
महसूस किये जा रहा था मैं
जैसे
ये आवाजें
जेठ मास के भभूड़ों सी घिर घिर आती
खंड-बंड करती मेरे एद ंत ध्यान को
जिसके संबल से
मैं जो भी सृजन कर रहा
जैसे -
वह सारा का सारा व्यर्थ
और बौद्धिक-विलास हो

चलो, मानगढ़ की धरती पर
जिसकी घटना का अब भी वृत्तांत अनलिखा

यदि इतिहास न लिख पाओ तो
साथी,
लिखो उसी पर कविता
काव्य वस्तु के लिए मुझे संदर्भ चाहिए
तनिक रुको आवाजो ,
कुछ सामग्री छान सकूं तो
कुछ इतिहास-ग्रंथ
मेरे कमरे में रखे सुरक्षित
मैं उनको हाथों में लूँ
उससे पहले
आवाजों के संयुक्त झकोरे ने जा परखा
उन ग्रन्थों में सजी हुई इतिहास मूर्त्ति को
उसके अंगों को टटोल
यूं समझ रही
उसकी मनसा व विषय वस्तु को
जैसे
कोई जागा-पोथी उसके आगे
और उसी के पत्रों को फड़-फड़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

-उलेटती
किंतु
कहीं मिल सके नहीं
अध्याय, पृष्ठ, संदर्भ, पाद टिप्पणी
अतीत की उस घटना की
जैसे -
ऐसे भाट-चारणों के
गीतों की बात नहीं वो
आहत और क्षुब्ध आवाजें
अरे,
वहाँ लाशें ही लाशें
नदी लहू की
भीषण जन-संहार निहत्थे, निर्दोषों का
ज्यों वे आदमजात नहीं हो कर
शिकार के लिए झुंड खरगोशों का हो
और
यहाँ इतिहास-दृष्टि में
थोपे हुए कहानी-किस्से
भद्र वर्ग की गौरव-गाथा
संग्रामीजन नहीं कहीं
उनके दुख सुख की बात नहीं
यह विशिष्ट इतिहास हमें स्वीकार नहीं है
आवाजें जो
उस घटना की चश्मदीद थीं
जो दफना दी गई जबरदस्ती
उसकी पहचान माँगती
प्रश्न पूछती-
"क्यूं चुप है इतिहास आज भी
उस घटना पर?"

इसी प्रश्न के घेरे में
मैं फँसा हुआ था
अरे, जागता या सोया
या किसी कल्पना में खोया?
अपनी ही चमड़ी में नाखून चुभोता
बार बार आश्वस्त हो रहा
यह मेरा भ्रम या सच?
आश्वस्त हुआ मैं
देख लहू अपने शरीर का ताजा ताजा
दर्दनाक भी
जैसे खून और पीड़ा का अनुभव
साबित करता जीवन का सच
निर्ग्रंथ हुआ मैं
अब आवाजें नहीं अजनबी
साफसमझ में यूं आती
जैसे
वे मेरी अपनी ही हों
अब मेरे मस्तिष्क-तंतु भी
चकित और भयभीत नहीं थे
दूर मानगढ़ के
अतीत संदेश वाहिनी ओ आवाजो,
चलो, मानगढ़ की धरती पर
मैं कवि नहीं विशिष्ट, कल्पनाशील
जो कि
इस कमरे में एकांत साधना करूं
गढ़ूं कोई प्रतिमा
इस निपट शून्य में
या अनदेखे
दृश्य रचूं कोई मनमोहक
इतनी क्षमता कहाँ
यथार्थ को सृजित करूं जो
मैं अमूर्त्त से

(दो)

आवाजों के संकेतों से
उसी मानगढ़ के पहाड़ पर आ पहुँचा मैं
वे आवाजें
उस घटना की स्मृतियां बन
बिखरी थी मेरे इर्द गिर्द
मैं करूं व्यवस्थित, आत्मसात
इसलिए
विगत में जाना था

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं एक शिला पर बैठ गया
ध्यानस्थ
योग मुद्रा में ज्यों
इस मनोदशा में
लगा घुमाने काल-चक्र को प्रतिगामी
दोनों पंजों में
बारी बारी एक एक पूंछ [illegible]
पूरी ताकत से घुमा रहा
उत्सुक कुछ दृश्य देखने को
पर
दिखा नहीं कुछ भी मुझको
मैं भूल गया
मुझ को तो केंद्रित होना था
बस
मात्र एक घटना पर ही
संकल्प कठिन
यूँ वर्तमान से भूतकाल में जाने का
संभव होगा या नहीं
प्रश्न
संशय के काले धूम्रवृत्त में घिरा हुआ
पर, अकस्मात
आभास हुआ मुझको
जैसे
नीचे से खिसकी शिला
अधर में टंगे तख्त सी,
वह शिला, तख्त या
भूतकाल पर वर्तमान का ढक्कन था
जो हटा
और हल्का सा झटका लगा
किंतु
मैं संभल गया
अब
समय-सीढियों से उतरा
तारीखों के तहखाने में
तिथि मगशीर्ष की पून्यों,
सत्रह नवंबर, सन् उन्नीस सौ तेरह,

कब्र में दफन
जो घिरी हुई
बेकार झाड़-झंखाड़ों से
जिनको ज्यों साफ किया
जीवंत हुई
वह विस्मृत तिथि
जैसे,
कल ही की घटना हो
मैंने छाती से लगा लिया
वह फफक उठी
था हृदय व्यथित
अवरुद्ध कंठ
भाषा अशक्त, थे शब्द मूक
कुछ कह न सकी अपनी पीड़ा
पूरी की पूरी एक सदी की
चट्टानों में दबी रही थी जो अब तक
उसके माथे पर हाथ रखा मैंने
अपनेपन से
सम्मान भाव से
आँखों में ज्यों देखा तो
पथरायी आँखें पिघल गईं
आँसू का सोता बह निकला
जैसे
मानव-स्पर्श पा कर
वह फूट फूट कर रोयी ....
मैं भी भीतर से दहल गया
भूला विवेक
ज्यों वस्तुनिष्ठ कोई यथार्थ
बह रहा भाव की धारा में
जो
सृजन-सिंधु की ओर उमड़ती जाती थी
या
शून्य जगत के अंतहीन विस्तारों में
निर्लक्ष्य भटकती
अपनी ही
अभिशप्त नियति की जकड़न में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खिंचती-भिंचती
बही जा रही थी यूँ ही
जीवंत हुई जो अभी-अभी
वह मगशीर्ष पूरणमासी
बोली -
''रे साथी कहाँ खो गये तुम
क्यूँ खड़े हुए हो यूँ गुम सुम ?
देखो,
अँधेरा कितना सघन
घुटन से भरा हुआ माहौल
निकालो मुझे यहाँ से''
अरे,
मैं भीतर-भीतर पिघल रहा
बाहर से भीगा है शरीर
उफ!
इस तहखाने में कितनी गरमी
झर रहा पसीना रोम-रोम
ऊपर से गरम-गरम आँसू
जो
अभी बहे थे लगातार
मगशीर्ष पूर्णिमा-नयनों से पून्यों की
आँखों से
मैं रुक न सका
उस अंधकूप में और अधिक,
आखिर,
ज्यों समय-सिंधु के तल में से
मैंने कोई मोती खोजा
मैं उसे संभाले
जल-धावक सा
वर्तमान तट पर आया
फिर,
उसी शिला पर आ बैठा
जो वहीं मिली
अब उस तिथि में मैं समा गया
या
वह तिथि मुझ में आत्मसात

पर
इससे क्या

(तीन)

रुक गया समय का चक्र
जिसे
मैं घुमा रहा
कुछ क्षण स्थिर हो
स्वाभाविक गति और दिशा में
फिर नियमित
अब-
जीवंत दृश्य
मेरी आंखों में घूम रहा
पर
धुंधला क्यों ?
क्या कोई सपना देख रहा मैं
गहन नींद में
या
घिरा हुआ
काली माटी के जादू में
या वर्तमान के चश्में से
मै देख रहा हूं भूतकाल की वह घटना
लाँघना मुझे क्या
काल खंड की खाड़ी को ?
अरी,
घटना की स्मृतियो,
तुम आत्मसात् तो हुई
किंतु
मेरे मानस की धरती पर
भावों की धारा बही नहीं
सूखी जमीन में ज्यों मैंने
ये सृजन-बीज
जो बो डाले बिन सोचे ही
इसलिए
रुको कुछ और घड़ी
संवेदनाओं के ग्रंथिस्त्राव को झरने दो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

धारा प्रवाह में
कल्पना नाव को तिरने दो
तब ही–
वर्तमान के तट से
एक सदी की दूरी के
उस पार पहुंच पाऊँगा मैं
छँट जाये तब
सब धुंध, नींद एवं जादू
मैं देख सकूँगा दृश्य
मानगढ़ की उस विस्मृत घटना का

मैं भूतकाल में रमा हुआ
कर रहा खुदायी अपनी ही
है कलम हाथ में
या
लोहे का धारदार खुरपा
जो खोद रहा
गहरा गड्ढा मेरे भीतर
हाँ,
आदमकद गहरायी में
क्या यह प्रति-आकृति मेरी ?
कहती–
''तू कहाँ'' आ फँसा
बैठा था अपने कमरे में सुविधा से
फुरसत के क्षण
वे नटी-शब्द
वे कलाबाजियां भावों की
मित्रों द्वारा महिमा मण्डन
वह आत्म-मुग्धता
सब गायब !
लेकिन
प्रभाव उसका अब भी
यह माथा-पच्ची, उलटी गिनती
तब ही तो
उलझे सूत्र सभी
मुझको आभास हुआ

छाया-प्रति मेरी नहीं
बल्कि,
यह वर्तमान का छद्म रूप
फिर से कहता–
जो गुजर गया
भूलो उसको
इतिहास परम्परा अर्थहीन
साहित्य-सर्जना व्यर्थ
कविता की बातें करो नहीं
तुम जिस युग में हो
वह भाग रहा
द्रुत धावक घोड़े पर सवार
पृथ्वी का चक्कर काट रहा
हर चक्कर
कसकर भींच रहा
धरती का अर्क निचोड़ रहा
उसका होगा पृथ्वी का रस
जो विश्व-दौड़ में शामिल है
वह भी-आगे
तुम लाश उठाये फिरते हो
इतिहास और उस घटना की ?
अरे,
हवा से प्रकटा
किस रंग में रंगा
नकली लेप में सना
तू एक थोपा विचार है
निश्चय ही
सही, सुन्दर और स्थायी नहीं !
तू क्षण भर कहीं न टिक पाता
जो गुजर गया
था अंश तुम्हारा, भूत बना
आगामी कदम भविष्य शेष
है नियति तुम्हारी
अधरझूल में लटके झीने पर्दे सी!
तू रोक रहा मूझको
तू टोक रहा मुझको !

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं जिस अतीत में खोया हूँ
वह निस्संदेह मृत वस्तु नहीं
प्रत्युत,
जीवंत धरोहर है
यह विपुल खान
अतिचार-द्वंद्ध-संघर्ष-विजय की
जो देती है
-प्रेरणा, शक्ति, संकेत
ताकि
सुन्दर भविष्य की रचना हो।
तू भूल रहा
अपनी जमीन, जड़ें, परम्परा की ऊर्जा को
रे, जिन हाथों में तू खेल रहा वर्तमान
जिन लोगों का तू दास बना
वे-
द्रुतगामी घोड़े पर सवार
सारी धरती को खूंद रहे
इसके रस को वे चूस रहे
वे जीत नहीं सकते आखिर
इसलिए,
साथ हो, चलो मानगढ़ की धरती पर
लिखने दो-
इतिहास आज मुझको कविता में।

(चार)

समय के पहाड़ की परतों को चीरता
भाले की तरह निकला
मेरे सामने वह पून्यों का दिन
जिसे
भूतकाल की स्याह रात ने
वर्तमान की भोर के
लाल कपड़े में लपेट कर
थमा दिया
आज के उगते सूरज को
पृथ्वी के पिछ्वाड़े में ही
सूरज खोलने लग गया
आशंकित घटना की पोटली की गाँठें
अचानक,
सूरज के अंगूठे में जैसे कुछ चुभा
खून की कुछ बूँदें
जिन्हें पोंछा-छिटका
जो चुपचाप पुत गई
पूरब दिशा के माथे पर
सब कुछ रोजाना की तरह
मगर
आज सूरज चौकन्ना
दोपहरी तक
बहुत सुस्त और नरम
देश का सबसे बूढा पहाड़-अरावली
जो लेटा हुआ था आराम से।
मगशीर्ष का आखिरी दिन
तैयार था-
पौष माह की अगुवानी के लिए
सर्द हवाओं ने अपने झंडे गाड़े
हुई तेज
ज्यों अकस्मात बौरायी
''गुरू शिखर'' से माथा मारती
चकराती, तंगे खाती, बेसुध आती
मानगढ़ की चट्टानों में बलखाती-लुढकती
घाटियों में समा जाती।
मैं जिस पत्थर पर बैठा
वह पुराना, बेडौल-डौल
मध्य में सपाट
कहीं-कहीं भौंटा
लेकिन किनारों पर नुकीला
अंचल पर बिछी तंग चादर सी
धूप फैली थी
सब कुछ साफ-साफ, पारदर्शी
मैं भी अब
न हवाई कल्पनाओं में अटका
न गूढ़ गुफाओं में भटका
पूरा तैयार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देखने को वह घटना
जो
अरावली पर्वत की पीठ पर
संगीनों की नोंक को
खून की स्याही में डुबो-डुबो कर
उकेरी गई
जिसमें इस्तेमाल
हर रेखा और शब्द
लिपटे थे
बंदूकों की नाल में भरी बारूद में
मैं साहस जुटा रहा हूँ
उसी घटना को लिखने का
हाईटेक पोइंट पायलट पेन से
इक्कीसवीं सदी के चिकने कागज पर
छः सौ फीट की ऊँचाई पर
गोविंद गुरू ने
तड़के से ही धूणी चेता दी थी
हजारों-हजारों की संख्या में
दूर-दूर से
जमा हुए थे आदिवासीजन
जैसे-
दुर्गम-बीहड़ों, घने जंगलों
झाड़-झंखाड़, पत्थर-कंकड़ भरी
उबड़-खाबड़, टेढ़ी-मेढ़ी
कोसों लंबी
पगडंडियों से गुजरती
सैंकड़ों लोक-नदियां
मानगढ़ संगम-स्थल पर पहुँची
परवाह नहीं
हथेलियों की आंटण
और पांवों के छालों की
हड़कंपी हवाओं से मोर्चा बंद
बदन के रोम-रोम से
झरता-खुशबूदार पसीना
नाटे कद के औरत-मरद-बच्चे
हौंसले बुलंद रहते जिनके
काले साँवले
मगर भीतर दमकते मोती से
ऊँचे-ऊँचे सागवानों का संकल्प
महुआ के दरख्तों सा
घनीभूत जीवट
थूर के फूलों सी उम्मीदें
बासंती पलाश का सा
चटक खून रगों में दौड़ता
नागफणियों ने
हजारों हाथों से अभिवादन किया
उस-जन रेले का
पीपल-बरगद दे रहे थे आशीर्वाद
आश्वस्त कर रहे थे
गूलर, जामून
आंवला, आम
महज़ धार्मिक आयोजन नहीं था
गोविंद गुरू का धूणी तपना
धूणी की लपटें भी नहीं साधारण आग
लोगों के भीतर
अर्से से दहकता अलाव था
यह सब कुछ
सत्ता ने छीन लिया चूल्हे का सामान
दिया तो
बस
अभाव, गरीबी, भूख
बैठ-बेगार, भारी लगान
और विस्थापन......................
यह सारी पीड़ा
जैसे
जन मानस की भट्टी में सीज रही हो
यह सारा
दुख, विरोध व संघर्ष
अभी लिपटा हुआ था
मेले की रंग-उमंग की
झीनी चादर में
गेर-नाच की धूम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नगाड़ों की गूँज
गोविंद गुरू का गीत-
'ऐला रइने के वो बोले
अणे बणजारे धूमाल की दो
ऐला मानगढ़ वाजी रे जी
अणे बणजारे धूमाल की दो.........'

(पाँच)

पृथ्वी के गर्भ में कितनी खदबदाहट
सागर के तल में कितनी बौखलाहट
भूखे इंसान के पेट में
इकट्ठा होता है तेजाब
और,
मस्तिष्क में विस्फोटक पदार्थ,
इन सबको
समय अपनी तिजोरी में
कितना भी छुपाकर रखे
उसे पुरानी और जीर्ण-शीर्ण होना है
बाहर
राख दबी एक चिनगारी
सतत हवाओं से काना-फूसी करती
टूटता सब्र का बाँध
उघड़ी-धुली-पुँछी वह
पहुँचती-
तिजौरी की किसी दरार या
छेद तक
फिर यकायक धमाका
सृजन के लिए विध्वंस
जिसकी छोटी सी बानकी लें-
आषाढ़ से पहले
किसान द्वारा
खेत में अड़े झाड़-झंखाड़ों को
समूल उखाड़ कर जला देना
हर आदमी
अपने स्तर पर लड़ता है जीवन की लड़ाई
एक सी तकलीफों के लिए इकजाई
बड़े-बड़े धुरंधर-पुरंदर
अंततः हारते ही हैं
समय के महानद में बहते चले जाते हैं
सूखे तिनकों की तरह
और
समा जाते हैं
चुकी हुई सत्ता-सभ्यताओं के
समंदर में
जिन्हें हम कहते हैं
छोटे समूहगत आंचलिक संघर्ष
वे ही अंकुर होते हैं
बड़ी-बड़ी जीत और तब्दीलियों में
एक चिनगारी लेकर चले थे गोविंद
गुरू
कुछ ही अर्से में जो
बन गया या गयी ?
लपलपाती मशाल
जिसकी उष्मा और रोशनी में
बढ़ रहा था
कंधे से कंधा मिला कर
आदिवासियों का दल बल
उधर,
मेवाड़ भील कोर का मुख्यालय
खेरवाड़ा
फिरंगी आकाओं के आगे
जागीरदारों का रांड-रोजणा
जैसे
हारे हुए देवता
पहुँचते थे त्रि-देवों के पास बार-बार
'त्राहि माम् ! त्राहि माम् !! त्राहि
माम्!!!''
फौजी मुख्यालय के सदर दरवाजे से
निकलता है एक भेड़िया
जिसके माथे पर मशीनगनों के सींग
पीठ पर लदा हुआ कारतूसों का बोरा
उसके पीछे
लोमड़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुत्ते
बिलाव.................
कुमुक-लवाजमा
शिकार के लिए
कहीं कोई रणभेरी, तुमुलनाद, तुरही
वे शेर-चीतों की तरह नहीं
गिद्ध-बाजों की तरह नहीं
आदमजात योद्धओं की तरह भी नहीं
वे बढ़े चलते गये
खतरनाक साजिश की तरह
दगा और घात पर सवार
जैसे
मौका पाते ही भोंकेंगे पीठ में छुरा
या
आजाद पंछियों के झुंड पर दागेंगे गोली
वे इंसानों से लड़ने नहीं
एक मुश्त कत्ल करने जा रहे थे
इंसानियत का
उन्हें जल्दबाजी थी
समय की एक प्यारी घड़ी को
खून से रंगने की
मालूम चल गया धरती को
धरती के जंगलों को
जंगलों के जीव-जंतुओं को
और,
बेखबर नहीं थे जंगल के आदमी भी
तभी तो,
हफ्ताभर पहले
गुस्से में मार दिया एक जासूस सिपाही
दूसरे को बाँध दिया
कुछ अर्सा पहले भी
मारा था थानेदार को
और
धावा भी बोला था
सूँथ के गढ़ पर
जैसे
सत्ता की दीवारों पर
फेंके हों एकाध पत्थर
पर,
एस ऐन घड़ी में
थोड़ा सा चूक गये

(छः)

मानगढ़ के माथे से
जैसे ही सूरज सरका
उसके पैर लड़खड़ाये
जिस सम्भावित घटना की पोटली को
वह सम्भाले था सुबह से
वह हाथ से छूटी
मशीन गन और बंदूकों ने अचानक
आग उगली
तड़ातड़-तड़ातड़-तड़ातड़-
गोलियों की बौछारें...............
हड़बड़ा गया सारा मेला
जैसे,
धरती कीली से उखड़ी
अंबर में भी खरोंचें पड़ीं
यह क्या बबाल
क्या गाज गिरी-सब भौचक्के
थिरकते पाँव ज्यों के त्यों
तेज हवाएँ-सुन्न
दंग रह गये सारे दरख्त
मुरझा गई एक झटके में
तनी हुई नागफणियां, झूमती अन्य
वनस्पतियां
उठी की उठी रह गई धूणी की आग
बेतरतीब लाल मीनार सी
ऊक चूक धुँआ
जैसे ठोस कुहाँसा बनकर
जम गया अंचल पर
जिसके ऊपर
साक्षात मौत का तांडव
बर्बर काल का क्रूर अट्टहास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गाते हुए लोगों के कंठ से
क्रंदन-चीत्कार-हाहाकार.............
'ओ रे ,
बड़े भगत, गुरू-महाराज कहाँ हो ?
संभलना रे, बाबा पूंजा धीरा !
काका कुरिया दनोत !!
बैरी चढ़ आये टेकरियों पर
कहाँ हो रे बीरो,
किस डाल पर लटकाये धनुख
किस भाटे पर रख दिये तीर !!!''
घड़ी भर में
लग गया लाशों का ढेर
लहू-लथपथ तड़फती देह
खून से सराबोर हो गई
अंचल की सारी हरियाली
तीर कमानों तक हाथ न पहुँच पाये
बीमार, बूढों , बच्चों को न छुपा पाये
वे संघर्षशील जन
अपने आप को न संभाल पाये
और
भून दिये गये अकस्मात
परिंदों के झुंड की तरह!
यह नहीं था मात्र
निर्दोष मानवता का सामूहिक संहार
यह तो
थकान से सुस्तानी
भोली, मासूम और बेखबर
जिंदगी के मस्तक पर
घातिन मौत ने
दोनों हाथों से
किया था घन का भरपूर वार किया
यहाँ-वहाँ
बिखर गये मांस के लोथड़े
छितर गये मज्जा के छींछड़े
खून की रेलमपेल.......................
माहौल में
बारूद की दुर्गंध
बादल के
छोटे से भटकते टुकड़े की ओट में
पता नहीं चला
कब
मुँह छुपा लिया था सूरज ने
उस दिन
वक्त से पहले हो गई सांझ
उस सांझ
गायों ने बछड़ों को दूध नहीं पिलाया
सुबह के गये पंछी
वापस नहीं लौटे
चूल्हे उदास रह गये
पृथ्वी के पूरबी ढलान पर
चाँदी के कलश को
माँजती ही रह गई
मगशीर्ष पून्यों की वह रात
उस रात
फूट-फूट कर रोये थे
महुआ के सारे दरख्त
उस खूनी घड़ी में
सबसे ज्यादा धँसा था
अरावली पर्वत

(साथियो,
उस धोखेबाज घड़ी में
शहीद हुए थे डेढ़ हजार आदिवासी
यह वाक्य कविता का हिस्सा नहीं,
बिना नमक-मिर्च की जानकारी है
उस घटना की।
जो सत्रह नवम्बर, सन् उन्नीस सौ तेरह
को
गुजरात-राजस्थान सीमा पर
मानगढ़ की पहाड़ी पर घटी)

31 शिवशक्ति नगर, किंग्स रोड
अजमेर हाईवे जयपुर-302019
मो. 09414124101

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं मृत्यु से बड़ा हूँ......
सिर्फ़ यही आखिरी बात कह कर
चला जाऊँगा मैं
(रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता 'मृत्युंजय' से)

नवजागरण की यात्रा में रवीन्द्रनाथ टैगोर

अमरेन्द्र कुमार शर्मा

भारत और विश्व के ज्ञान और बौद्धिकता के भूगोल में नदी, यात्रा और स्वप्न का सबसे अधिक महत्व है दुनिया के सभ्यताओं के विकास, संस्कृतियों के निर्माण और राजनैतिक इच्छाओं में इन तीनों का विशेष महत्व हमें इतिहास के क्लोज रीडिंग से मिलता है। वास्कोडिगामा से लेकर ह्वेनसांग, अलबरूनी से लेकर इब्नबतूता और बर्नियर, नागार्जुन से लेकर राहुल सांकृत्यायन जैसे सैकड़ों नाम हमारे सामने हैं जिनकी यात्राओं और उनके देखे स्वप्नों ने इस दुनिया को दुनिया के अर्थों में रचा। यूरोप और भारत के पुनर्जागरण चेतना में भी नदी, यात्रा, स्वप्न का निर्णायक महत्व रहा है। इस पहलू पर इतिहास के तमाम मोडों के माध्यम से नए ढंग से अध्ययन, विश्लेषण की आवश्यकता है जिसे अन्य संदर्भों में करने की योजना मेरे मन में बनी हुई है। मुझे रवीन्द्रनाथ ठाकुर की नवजागरण यात्रा के बारे में सोचते और लिखते हुए सबसे पहले उनके द्वारा 1882 में लिखी प्रसिद्ध कविता निर्झर का स्वप्न भंग की यह पंक्ति बार दृ बार याद आ रही है। 'मैं शिखर-शिखर पर दौड़ लगाऊंगा, पर्वत दृ पर्वत पर लौट जाऊंगा, ठठाकर हंसूंगा, कल-कल स्वरों में गाऊंगा गान प्रत्येक ताल पर तली बजाऊंगा अरे, मेरे चारों ओर यह कठिन कारागार क्या है तोड़ो तोड़ो, इस कारा को भंग करो आघातों पर आघात देते चलो अरे आज पक्षी ने कौन सा गाना गाया है सूर्य की किरणें आई हुई है' गुरुदेव की इन पंक्तियों के साथ और कई पंक्तियों को पढ़ते हुए मेरे मन में गुरुदेव के बारे में एक साथ कई कई बात संबद्ध और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

असम्बद्ध रूप में याद आने लगती है, जिसे पढ़ते हुए, बहस करते हुए जानने की ललक बनी रहती थी। यहाँ मैं उनकी नवजागरण- यात्रा को समझने के लिए मुख्य रूप से उनके प्रसिद्ध उपन्यास गोरा का सहारा लेना चाहूँगा जाहिर है इस यात्रा में गोरा के साथ रवीन्द्रनाथ टैगोर की अन्य रचनाएं भी कभी साथ हो गई है और कभी दूर चली गई हैं लेकिन उससे पहले गुरुदेव का समय और स्वयं गुरुदेव के बारे जरूरी बात आपके सामने रख देना उचित होगा।

07 अगस्त 1941, सावन की पूरनमासी का दिन, बादल अपने पाखें समेट रहा था, रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी आखें मूंद ली थीं। एक सम्पूर्ण सांस्कृतिक मनुष्य का अवसान हमारी धरती के हिस्से में उस दिन शामिल हो गया था। हमारी पीढ़ी को उनकी सर्जना का ऋणी होना चाहिए। रवीन्द्रनाथ ठाकुर राजनीतिक व्यक्ति नहीं बल्कि भारत के भूगोल में एक सांस्कृतिक मनुष्य के रूप में याद किये जाते हैं। कविता, कहानी,उपन्यास, नाटक, निबंध के साथ-साथ संगीत, चित्रकारी सत्तर की उम्र में उन्होंने चित्रकारी की शुरुआत की थी क्योकि वे मानते थे कि जिसे बात से नहीं कहा जा सकता उसे चित्र से कहना पड़ता है। अभिनय और स्थापत्य के विलक्षण चितेरे थे। यह महत्वपूर्ण है कि महात्मा गाँधी रवीन्द्रनाथ को गुरुदेव कहा करते थे और रवीद्रनाथ महात्मा गाँधी को महात्मा कह कर पुकार रहे थे। हम जानते हैं कि दोनों में कुछ बुनियादी सहमतियाँ थी लेकिन दुनिया को देखने के दृष्टिकोण में अंतर भी कम नहीं था। इन दोनों को हम बीसवीं सदी के भारत का चेहरा कह सकते हैं, और पुनर्जागृत होते भारतीय समाज की बौद्धिक उपस्थिती भी उन्नीसवीं सदी की फिजां में तैरती वे तमाम घटनाएँ जो भारतीय भूमि पर पुनर्जागरण चेतना की लौ जलाने का प्रयास कर रही थी, वे कही न कही रवीन्द्रनाथ ठाकुर के लिए एक सांस्कृतिक जमीन तैयार कर रही थी। भारतीय अस्मिता अपनी जगह तलाश कर रही थी, अपने को स्थापित करने की प्यास लगातार बढती जा रही थी। यह प्यास हमे बड़े पैमाने पर तत्कालीन समय के विचारकों में दिखलाई पड़ती है। 1828 में राजाराममोहन राय द्वारा ब्रह्म समाज की स्थापना की गई जिसका 1843 में देवेन्द्रनाथ ठाकुर रवीन्द्रनाथ के पिता ने नेतृत्व किया था।

1829 में विलियम बेंटिक ने सती प्रथा को गैर क़ानूनी घोषित कर दिया था। केशवचन्द्र सेन द्वारा महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज की स्थापना की गई थी। 1875 में दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना बम्बई में की। यंग बंगाल आंदोलन में हेनरी विवयन देरेजियो द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जा रही थी। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह के समर्थन में आंदोलन चलाया। इनके द्वारा बंगाल में लगभग 35 महिला विद्यालय की स्थापना की गई थियोसॉफिकल सोसायटी की स्थापना 1875 में न्यूयार्क में और 1879 में भारत के मद्रास शहर में की गई। 1888 में ऐनी बेसेंट इस सोसायटी की सदस्य बनी। आधुनिक शिक्षा देने का प्रयास ईसाई मिशनरियों द्वारा बड़े पैमाने पर किया जाने लगा। इसी जमीन पर रवीन्द्रनाथ का उपस्थित होना उनकी चेतना को एक ओर समृद्ध कर रहा था, तो दूसरी ओर बीसवीं सदी के पहले दशक की उन तमाम घटनाओं को देखें जिससे रवीन्द्रनाथ रु-ब-रु हो रहे थे और उनकी विचार-सरणी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रभावित हो रही थी। भारत और खासतौर से बंगाल इस दशक में अपने स्वरूप में काफी बदलावों को सहेज रहा था। 1905 में बंगाल विभाजन, स्वराज पार्टी की स्थापना, 1906 में ढाका में मुस्लिम लीग की स्थापना, 1907 में कांग्रेस का विभाजन और नरम दल गरम दल के बीच उग्र राष्ट्रवाद का उदय, 1908 में खुदीराम बोस को फांसी, बालगंगाधर तिलक की प्रखरता का उदय, 1909 में मार्ले-मिन्टो सुधार के तहत साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति की शुरुआत जैसी कई घटनाएँ घटीं।

रवीन्द्रनाथ की समूची विचार प्रणाली, सरणी में 19 वीं और 20 वीं शताब्दी की पृष्ठभूमि और घटनाएँ सम्मिलित हुई हैं। रवीन्द्रनाथ कुछ बुनियादी बातों पर चिंतनशील थे, उनके जेहन में पूरब और पश्चिम की अवधारणा और उनपर बहस थी तो दूसरी ओर प्राच्य और पाश्चात्य के विकल्पों पर बहस। उन्नीसवीं शताब्दी के आखिर में लिखे उनके लेख और बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक समय में लिखे उनके लेख अगर देखे जाएँ तो हमें रवीन्द्रनाथ के विचार में होते हुए परिवर्तन दिखलाई देते हैं, खासतौर से पूरब औरपश्चिम य प्राच्य और पाश्चात्य चिन्तन के मसलों पर। 1887 में, करेस्पोंडेंस नामक लेख में उन्होंने लिखा जान पड़ता है कि आधुनिक विज्ञान के सारे अन्वेषण शांडिल्य, भृगु और गौतम ऋषियों को मालूम थे। दुःख है कि वेद पुराण का युग बीत गया है। 1888 में प्रीचिंग नामक लेख में, ईसाई धर्म गिराकर हमें अपने हिंदू धर्म कि रक्षा करनी है रवीन्द्रनाथ का यह विचार उनके 1901 के पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता वाले लेख में और भी अधिक तीक्ष्ण होकर सामने आता है, चाहे हम स्वतन्त्रता प्राप्त कर लें अथवा पराधीन ही रहें, किन्तु हमें अपने समाज में हिन्दी सभ्यता को पुनर्जीवन देने की आशा कभी नहीं त्यागनी चाहिए। हमारे इतिहास, धर्म, समाज या गार्हस्थ्य जीवन में राष्ट्र निमार्ण को स्वीकार नहीं किया है। यह विचार सरणी 1907 के बाद से परिवर्तित होती हुई दिखलाई पड़ती है।

दरअसल प्राच्यवाद से पाश्चात्यवाद की ओर रवीन्द्रनाथ का आकर्षण प्राच्यवाद की प्रबल संकीर्णता और सामंती मूल्यबोधों के कारण कम हो रहा था और विज्ञान के विकास के साथ पाश्चात्यवाद ने तर्क की एक सरणी विकसित कर ली थी जिसमें रवीन्द्रनाथ को जनता की मुक्ति की आशा दिखलाई पड़ रही थी। दरअसल रवीन्द्रनाथ के सामने एक बुनियादी समस्या थी कि, हमारा देश सर्वदा शास्त्रों और पंडों से निर्देशित हुआ है, इसलिए विदेश से आये हुए सिद्धांतों को वेदवाक्य समझने की ही प्रवृति हममें है, क्योंकि हमारा मन आसानी से मुग्ध हो जाता है। जिसे उन्हें अपनी रचनाओं के माध्यम से हल करना था। भारत में पुनर्जागरण की चेतना पैदा करने में रवीद्रनाथ के लेखन की बड़ी भूमिका मानी जाती है। इस चेतना में अपनी पहचान अस्मिता कायम करने का मुद्दा सबसे प्रबल दिखलाई देता है। यह मुद्दा समाज के हर चरण में हमें मौजूद दिखलाई देता है। दरअसल, रवीन्द्रनाथ की दुनिया में जमीन से निकलने वाली जन परम्पराओं की सुगंध और आधुनिकता की तर्कणा शक्ति मौजूद थी। परम्परा और आधुनिकता रवीन्द्रनाथ के यहाँ द्वंद के रूप में मौजूद है। इसी द्वंद्व से पहचान के सवालों को समझने की कोशिश गुरुदेव के यहाँ मिलती है। रवीन्द्रनाथ के लेखन और चिन्तन की यात्रा को भारत में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुनर्जागरण की यात्रा के साथ भी देखा जाना चाहिए। कुछ नमूने के तौर पर हम उनकी रचनात्मक यात्रा को देख सकते है। अस्त्रहीन होने पर शत्रु को किस प्रकार युद्ध में हराया जा सकता है। स्कूली जीवन, जिसे गुरुदेव पसंद नहीं करते थे, की यह मौलिक चिंता रवीन्द्रनाथ की दुनिया को एक भिन्न किस्म का आकार दे रही थी। उसी दौरान अपने दादा द्वारकानाथ, जो राजाराममोहन राय के निकट सहयोगी थे के उत्साह बढ़ाने पर कविता की पंक्ति का लिखा जाना रवीन्द्रनाथ के लिए हिरन के बच्चे में नए सींग निकलने जैसा उत्साह भर रहा था गीत गोविन्द को पढ़ते हुए उनकी अनुभूति मूक हो जाया करती थी।

उन्होंने अपनी जीवन स्मृति में लिखा 'गीतगोविंद को मैंने कितनी बार पढ़ा है बतला नहीं सकता। जयदेव जो कुछ कहना चाहते हैं वह कुछ भी मैंने नहीं समझा, लेकिन छंद और कथा को मिलाकर मेरे मन में जिस चीज की सृष्टि हुई वह मेरे लिए सामान्य नहीं है', अपनी कविताओं में गुरुदेव ने कई बार जयदेव को याद भी किया है। साहित्य के उदेश्य और उसके सरोकारों पर रवीन्द्रनाथ की दृष्टि बेहद पैनी है। वे अपने लेख 'वास्तविकता' में साहित्य का लगभग एक एजेंडा प्रस्तुत करते हैं वे कहते है लोग अगर साहित्य से शिक्षा पाने की चेष्टा करें तो पा भी सकतें हैं लेकिन साहित्य लोगों को शिक्षा देने की बात ही नहीं सोचता। किसी देश में भी साहित्य ने स्कूल मास्टरी का जिम्मा नहीं लिया दरअसल रवीन्द्रनाथ साहित्य को अपने समकालीन समय के सामाजिक इतिहास के रूप में देखते है जिसमें उनका मंतव्य बहुत ही साफ है। वे कहते हैं साहित्य का विचार करते समय दो चीजें देखनी होती हैं पहली, विश्व पर साहित्यकार के हृदय का अधिकार कितना है। दूसरी, उसका कितना अंश स्थाई आकार में व्यक्त हुआ है। यह विचार गुरुदेव को अपने समकालीनों में सबसे अलग इस अर्थ में करता है कि अब तक संभवत: किसी ने भी यह नहीं कहा था कि विश्व पर साहित्यकार के हृदय का अधिकार होना चाहिए। रवीन्द्रनाथ साहित्य को एक अंतरानुशासनात्मक विधा के रूप में देखते थे, वे यह मानते थे कि, चित्र और संगीत ही साहित्य के प्रधान उपकरण हैं।

चित्र भाव को आकार देता है और संगीत भाव को गति देता है। चित्र देह है और संगीत प्राण (साहित्येतर तात्पर्य मासिक बंग दर्शन में नवम्बर दिसम्बर 1903 में प्रकाशित) 1932 में कलकत्ता विश्विद्यालय में गुरुदेव ने विश्विद्यालय के स्वरूप पर एक भाषण दिया था, वह भाषण अपने आप में नई सदी के शिक्षा संकुलों के लिए एक परिपत्र की तरह हो सकता है। इस भाषण में ऐसी कई बातें हैं जिन पर अलग से बहस की जा सकती है मैं यहाँ तीन बातें इस भाषण से उद्धृत करना चाहूँगा। कवि की कीर्ति स्तंभ की तरह नहीं, नौका की तरह होती है। भंवरों को पार करते हुए काल स्रोत की सभी परीक्षाओं और संकटों से यदि वह नौका उतीर्ण हो सके, और अंत में यदि उसे लंगर डालने के लिए अच्छा सा घाट मिल जाये, तभी साहित्य के स्थाई इतिहास ग्रंथ के किसी पृष्ठ पर उसका नाम अंकित होता है। देश की जनता के सारे दुरूह प्रश्नों से महत्वपूर्ण प्रयोजनों और तीव्र वेदनाओं से हमारे विश्विद्यालय विछिन्न हैं। सार्थक विश्विद्यालय वही हैं जो ऐसे शिक्षकों को आकर्षित करता है, जहाँ शिक्षा की सहायता से मनोलोक की सृष्टि होती है। यह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सृष्टि ही सभ्यता का मूल है लेकिन हमारे विश्वविद्यालयों में इस श्रेणी के शिक्षक न होने से भी काम चलता है शायद और भी अच्छी तरह चलता है। आजादी के बाद छीजते और बदलते मूल्यों, संवेदनाओं का कोई संस्थानीकरण नहीं हुआ था। नई आर्थिक नीति के उभार ने समस्त मानवीय पहलुओं को संस्थानों और पण्य वस्तुओं में बदल दिया है। जाहिर है शिक्षा का ढांचा और उसके नियामक तन्त्र ने प्रश्नाकुलता को सीमित कर दिया है। भारत के तमाम विश्वविद्यालय गैर उत्पादक कार्यों में इस कदर व्यस्त हैं कि उनके हाथ से शिक्षा का महत्वपूर्ण एजेंडा छूटता जा रहा है। बदलते समय ने हमारे समय को असहनशील और असम्वेदनशील बनाया है। गुरुदेव का समय कदाचित ऐसा नहीं था लेकिन ब्रितानी हुकुमत ने भी भारतीय समय को बहुत आहत कर रखा था, गुरुदेव की रचनाओं में हमे यह दिखलाई देता है।

रवीन्द्रनाथ के समय में साम्राज्यवाद विरोध, राष्ट्र प्रेम और आजादी के संघर्ष को एक ही अर्थों में समझने का प्रचलन दिखलाई पड़ता है। गुरुदेव के यहाँ राष्ट्रीय स्वाधीनता से ज्यादा जरूरी सामाजिक स्वाधीनता है। भारतीय पुनर्जागरण चेतना में यही सामाजिक स्वाधीनता का एजेंडा प्रमुखता से हमारे सामने आता है। जैसा कि हमने पहले कहा है कि रवीन्द्रनाथ कोई राजनैतिक व्यक्ति नहीं थे लेकिन उनके लेखन में जिन मुद्दों की उपस्थिति है वह तत्कालीन समय की चिंता और उसके अवबोध से उत्पन्न है। वे कहते है भारत में जो विपुल धन था वह किस तरह द्विपांत्रित हुआ है, यह यदि हम भूल जाएँ तो आधुनिक इतिहास का एक प्रमुख तत्व हम समझ नहीं सकेगें। आधुनिक राजनीति की प्रेरणा शक्ति विर्याभिमान नहीं धन का लोभ है...हमारे पास अन्न नहीं, विद्या नहीं, पीने का पानी कीचड़ छानकर मिलता है, लेकिन चौकीदारों का आभाव नहीं है। मोती तनख्वाह वाले अफसर भी हैं, उनका वेतन, गल्फ स्ट्रीम की तरह सीधे ब्रिटेन के सहित निवारण के लिए चला जाता है... हमारे और अंग्रेजों के बीच कोई आत्मीयता का आकर्षण तो है ही नहीं। सारे भारत को जलियाँवाला बाग बना देना उनके लिए असम्भव नहीं था। अपने समय में भारत को समझने की यह पेशकश रवीन्द्रनाथ में विविधतापूर्ण अतीत और उससे निकल कर आने वाले बौद्धिक उद्यमों से निसृत हुई थी।

ब्रिटिश के विरोध का आन्दोलन रवीन्द्रनाथ के लिए महज आजादी का संघर्ष नहीं रह गया था बल्कि वह एक बड़े फलक पर राजनीतिक, सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक गरिमा की रक्षा के संघर्ष के रूप में उपस्थित था। रवीन्द्रनाथ ने अपने समय के ज्वलंत मुद्दों पर स्पष्ट राय रखने वाले मनीषी थे। महात्मा गाँधी के विदेशी कपड़ों के बहिष्कार के मुद्दों पर उन्होंने कहा, महात्मा जी ने जब विदेशी कपड़ों को अपवित्र कहा था ए मैंने उनकी बात का विरोध किया था। मैंने कहा था विदेश कपड़ा आर्थिक दृष्टि से हानिप्रद हो सकता है, अपवित्र नहीं हो सकता। चरखा और सूत कातने के मसले पर भी गुरुदेव के बुनियादी सवाल रहे हैं। रवीन्द्रनाथ ने 2 अक्टूबर 1937 को जब शांतिनिकेतन में गाँधी जयंती मनाई थी तब उस अवसर के लिए लिखे अपने लेख में कहा था कि ष्महात्मा गाँधी ने यह दिखाया है कि हत्याकांड को आश्रय दिए बगैर भी स्वाधीनता पाई जा सकती है। तब वे दरअसल अपने छुटपन की उस चिंता का निराकरण कर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहे थे, जिसे हमने उपर कहा है कि, अस्त्रहीन होने पर शत्रु को किस प्रकार युद्ध में हराया जा सकता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के उपन्यास गोरा, घर-बाहर, आँख की किरकरी, चार अध्याय आदि अपने पात्रों के माध्यम से अपने समय की विसंगतियों और उससे उबरने की परिस्थितियों और अपनी अस्मिता की पहचान का अद्‌भुत उदहारण है। गोरा और घर-बाहर को हमें पुनर्जागरण की रौशनी में जहाँ अपनी पहचान स्थापित करने की प्रबल इच्छा है, देखा जाना चाहिए। अध्ययन करना चाहिए। यह कहना विषयान्तर नहीं होगा कि उनका विसर्जन नाटक संभवत: पशु बलि के विरोध पर भारतीय साहित्य का पहला नाटक है। लाल कनेर, मुकुट, डाकघर, राजा आदि नाटक और काबुलीबाला, पोस्ट मास्टर, अतिथि जैसे कहानी के रचयिता को हमें आधुनिक भारत के द्वंद, कथा के वाचक के रूप में, भारतीय अस्मिता के चिंतक और मेंह बरसता टापर-टुपुर के कवि के रूप में बार-बार पढ़ना चाहिए।

जैसा कि मैंने उपर कहा है यहाँ गोरा उपन्यास के माध्यम से रवीन्द्रनाथ टैगोर की यात्रा को नवजागरण के आईने में देखने की कोशिश होगी। इस कोशिश की सीमाओं का आभास मुझे है और इसकी वजह बड़ी ही ठोस है और वह है रवीन्द्रनाथ का लिखा इतना विपुल और विविधता पूर्ण है कि सबको एक साथ समेट लेना मुश्किल है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने प्रसिद्ध लेख विश्व साहित्य में लिखते हैं-

'समस्त साहित्य को, समस्त मनुष्यों के चारों ओर एक बार इसी तरह देखना होगा। देखना होगा कि मनुष्य अपनी वास्तविक सत्ता को भाव की सत्ता में अपने चारों ओर भी बहुत दूर तक बढ़ाकर ले गया। उसकी वर्षा के चारों ओर कितने गीतों की वर्षा, काव्यों की वर्षा, कितने मेघदूत, कितने विद्यापति फैले हुए हैं, अपने छोटे घर के सुख-दुःख को उसने कितने चन्द्र सूर्यवंशी राजाओं के सुख-दुःख की कहानी के बीच बड़ा करलिया है।' जार्ज लूकाच ने द थ्योरी ऑफनावेल 1920 में लिखा है। 'उपन्यास का जन्म तब होता है जब मनुष्य और संसार के बीच समरसतापूर्ण संबंध भंग हो जाता है। यह ऐसी दुनिया का महाकाव्य है जिसे ईश्वर छोड़कर चला गया है।' गोरा के बारे में रवीन्द्रनाथ टैगोर और जार्ज लुकाच के कथन से शुरू करने के पीछे उदेश्य बहुत साफ है, भारतीय समाज औपनिवेशिक ढांचों में कई स्तर पर बिखरा हुआ था, उसे समेटने और समरसतापूर्ण ढांचों में बदलने के कई क्षेत्रीय प्रयास बहुत मुक़म्मल नहीं थे, एक लेखक जिसकी सबसे बड़ी ताकत कलम होती है, अपने समाज की मूल चिंताओं को हमारे सामने लाने और विश्लेषित करने की कोशिश करता है। जब गोरा लिखा जा रहा था तब के भारत को गौर से देखा जाना चाहिए, भारतीय जनमानस अपने होने को लेकर, अपने सरोकारों को लेकर काफी चिंतित दिखलाई देता है, अपने धर्म, अपने समुदाय, अपनी जातीय बोध को लेकर एक तड़प बराबर मौजूद है। तत्कालीन समय के विचारकों के कार्यों में जिसका संक्षिप्त विवरण मैंने उपर दिया है, में यह तड़प और बेचैनी मौजूद रही है। गुरुदेव के सामने ऐसे कई प्रसंग थे जिसे उन्होंने अपने उपन्यासों, कहानियों में सिरजा है, रवीन्द्रनाथ के यहाँ सुख-दुःख के बीच वास्तविक सत्ता और भाव सत्ता का चिंतन और लुकाच की समरसतापूर्ण चिंताओ में उनके

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपने समाज के सरोकार शामिल रहे हैं। उनके संदर्भ से गोरा उपन्यास में हम अस्मिता के प्रश्नों के माध्यम से नवजागरण की यात्रा को तलाश करें इससे पहले हमें अस्मिता को समझ लेना चाहिए। अस्मिता के शब्द कोषीय अर्थ में गए बिना हम उसके व्यावहारिक, सैद्धान्तिक पक्षों पर संक्षिप्त बात करेगें। यूँ तो अस्मिता एक प्राचीन अवधारणा है लेकिन विगत दशकों में अस्मिता का प्रश्न काफी चर्चित रहा है।

यह प्रश्न एकरेखीय नहीं है बल्कि यह भिन्न-भिन्न कोणों से अभिव्यक्त हो रहा है। जातिपरक, लिंगपरक, रंगपरक, नस्लपरक, भाषापरक अस्मिता के बहसों में फंसा हुआ समाज या कि राष्ट्र, अपने बनते बिगड़ते स्वरूप में मोटे तौर पर दो प्रकार की अस्मिता की बात करता है, वर्चस्वपरक अस्मिता और प्रतिरोधपरक अस्मिता। वर्चस्वपरक अस्मिता और प्रतिरोधपरक अस्मिता लगभग एक ही प्रकार की अवधारणा पर भिन्न अर्थों में बहस कर रही है। दोनों का आधार या तो नस्ल है या धर्म, लिंग, जाति, भाषा आदि। अस्मिता के बनने-बिगड़ने की आज यही वास्तविकता है जिसे पूँजीवाद से उपजे हुए सवाल, कहकर सरलीकृत तरीके से खारिज नहीं किया जाना चाहिए। नस्लपरक या अन्य अस्मिता की श्रेष्ठता साबित करते हुए हम उसे यदि वर्चस्वपरक अवस्था में खींच लाना चाहते हैं तो यह भी ठीक है कि इसी के प्रतिरोध के आधार पर दूसरे भी नस्लपरक या अन्य अस्मिता की मुखालफ़्त करें। लेकिन इसमें ध्यान रखना होगा कि हमारी नस्लपरक या अन्य अस्मिताएं हमें किसी नए किस्म के तानाशाहों के हवाले न कर दें। वस्तुतः साम्राज्यवाद या राष्ट्रवाद की अवधारणा एक किस्म से अस्मिता का साम्राज्यवाद या राष्ट्रवाद है। इसमें यह विश्लेषित करने की आवश्यकता नहीं कि अस्मिता की अवधारणा अन्य की उपस्थिति के बिना संभव नहीं है। जब हम मूल्यों और विचारों की नहीं, केवल और केवल अस्मिता की बात करते हैं, तब अस्मिता के नाम पर नयी तानाशाही का जन्म होता है। इसमें हम किसी मनुष्य पर उसकी जन्मजात अस्मिता को सदा के लिए लाद देते हैं। यह एक तरह से सारे जनसमुदायों, संस्कृतियों को मनमाने ढांचे में तब्दील कर देने जैसा है। अन्ततः यह एक फासिस्ट राजनीति जैसी है। वर्तमान राजनीतिक ढाचों में भारतीय परिक्षेत्र में बनाई जा रही अस्मितां इसी रणनीति का एक हिस्सा है, मसलन हिन्दुत्व की अस्मिता।

गोरा 1907-10 के बीच रवीन्द्रनाथ ठाकुर का लिखा गया एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में मुख्य बहस हिन्दू समाज और ब्रम्ह समाज के बीच है। हिन्दू समाज, ब्रह्म समाज को पतित और गिरा हुआ ख्रिस्तान मानता है और ब्रम्ह समाज हिन्दू समाज को कट्टर और कर्मकांडी मानता है। इन दोनो के बीच कई पात्र आपस में बहस करते हैं, संवाद करते हैं और हर हाल में अपनी पहचान, खास पहचान बनाए रखना चाहते हैं। टैगोर ने व्हाट इज नेशन राष्ट्र क्या है, 1901 में एक सैद्धान्तिक विचार सूत्र दिया है- राष्ट्र त्र प्राचीन स्मृतियां प्राचीन गौरवद्ध आधुनिक पारस्परिक समझौता वर्तमान इच्छा इस सूत्र से टैगोर अपने उपन्यास गोरा में बहुत दूर तक चलते दिखलाई देते हैं। आगे चलकर वे स्वेदशी आन्दोलन से पृथक हो जाते हैं। लगभग 1907 ई. के बाद से टैगोर के सामाजिक विचारों में एक नवीन परिवर्तन देखा जा सकता है, जो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अंत तक बना रहा है। प्राच्यवाद से पाश्चात्यवाद की ओर टैगोर का आकर्षण वस्तुतः प्रबल प्राच्यवाद की संकीर्णता के कारण रहा होगा, साथ ही पाश्चात्य के आधुनिक तकनीकी विकास और ज्ञान के मार्ग को आसान बना देने के कारण उसके प्रति आकर्षण पैदा हुआ हो। मामला जो भी रहा हो टैगोर की विचार प्रणाली नवीन अंगड़ाई ले रही थी। इसी संक्रमण काल की उपज है, गोरा। गोरा जो बन्धनों से उन्मुक्त श्वास के समान तत्कालीन जीवन की परंपरा विरोधी धाराओं को अभिव्यक्त कर रहा था। वस्तुतः गोरा को पुनर्जागरण चेतना भारतीय का लघु-मित्र कहा जा सकता है। इसमें ऐसे कई प्रश्न गति कर रहें हैं जिसे हम आज भी अपने सामने देख रहे हैं। लगभग सौ बरस बाद भी गोरा के कईपात्र हमारे आस-पास के वातावरण में जीवित हैं, परिसंवाद कर रहे हैं। निश्चित रूप से अस्मिता के व्यापक होते अर्थ में नस्ल, जेंडर आदि के बीच गोरा का पाठ हमें नए तरीके से सोचने को मजबूर करता है। नया तरीका क्या हो सकता है क्या गोरा उपन्यास के कुछ पात्र जो गौण है, या कि जो परिसंवाद में सीधे-सीधे भाग नहीं लेते हैं मसलन, लछमिया, कृष्णदयाल, शशिमुखी आदि अपने महत्वपूर्ण पात्रों के परिसंवाद को बल प्रदान करते हैं या कि उनके विचारों के कन्ट्रास्ट को व्यक्त करने के लिए है। क्या लोक व्यवहार में हिन्दुत्व की जो अवधारणा काम कर रही है, इसके परिसंवाद या बहस में वही हिन्दुत्व है। क्या, अस्मिता का प्रश्न मात्र तर्क का प्रश्न है या कि व्यवहारिक जीवन में जुड़ने और जुड़ जाने का प्रश्न है। इसके अलावे भी कई नये तरीके हो सकते हैं जिसमें गोरा को निरे उपन्यास की तरह न पढ़कर इतिहास के आख्यान के रूप में पढ़ा जा सकता है जबकि यह एक उपन्यास ही है जो पुनर्जागरण चेतना के दौर में लिखा गया। गोरा की सम्पूर्ण संरचना गोरा, विनय, सुचरिता, ललिता, हारान बाबू, परेश बाबू, महिम, कृष्णदयाल, आनन्दमयी, हरीमोहिनी आदि विभिन्न पात्रों के बीच विन्यस्त है। इनके बीच स्थान और सन्दर्भ बदलते रहते हैं, पात्रो की संख्या भी घटती-बढ़ती रहती है, परन्तु प्रश्न मौजूद है, चिंताएं व्याप्त है- अस्मिता का, आस्तित्विक चेतना का अथवा पुनर्जागरण का। यूँ तो यह उपन्यास संवादों के बीच फैला हुआ है, जो एक तार्किक परिणति की ओर तेजी से भाग रहा है, लेकिन इन संवादो के भीतर एक प्रेम कहानी भी पल रही है, एक आक्रामक प्रेम कहानी। इस प्रेम कहानी की भी अपनी एक अस्मिता है इसकी अस्मिता किसी अन्य अस्मिता से कम महत्वपूर्ण नहीं है। यह प्रेम कहानी भी अपने रचाव में अपना एक स्थान तलाश रही है, एक अपना समय चाह रही है जिसमें वह परिभाषित हो। हालांकि परिभाषित होना महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण है, एक रागात्मक पर्यावरण की मौजूदगी पैदा करना। यह रागात्मक पर्यावरण निरे भावुकता के किस्म का नहीं जैसा कि सुधा और चन्दर गुनाहों का देवता-धर्मवीर भारती के बीच का प्यार या कि निरे शुष्क बौधिकता के पर्यावरण से उपजा प्यार ग्रेखा और भुवन नदी के दीप अज्ञेय के बीच। यह प्रेम कहानी जो धीरे-धीरे, चुपके-चुपके आगे बढ़ रही है, वह रागात्मक व बौद्धिक दोनों पर्यावरण में अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही है। यह प्रेम कहानी है, गोरा व सुचरिता के बीच जिसमें फंसे हुए हैं हारान बाबू और विनय व ललिता के बीच जिसमें उलझा हुआ है हिन्दू समाज और ब्रम्ह समाज। इसका परिणाम क्या हो सकता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है, उपन्यास का अन्त हमें बताता है। बड़े ही रोचक और नाटकीय ढंग से इसका उल्लेख हम बाद में करेगें। पहले हम कुछ और प्रश्नों से रूबरू हो लें।

क्या रविन्द्रनाथ टैगोर अपने विचारों को बताने के लिए यह उपन्यास लिख रहे हैं या परम्परागत संस्थाओं की रक्षा करने वाले उद्देश्य से क्या। यह उपन्यास लेखक के आन्तरिक द्वन्द्व का प्रमाण है। क्या यह किसी वैयक्तिक पहलू या पारिवारिक या सामाजिकए धार्मिक, राजनैतिक पहलू का बयान है। क्या इस उपन्यास के विचार व्यापक जनसमुदाय विभिन्न वर्ग, वर्ण, जातियां, उपजातियां, धर्म, उपधर्म आदि को प्रभावित करता है। उत्तर हाँ या ना के रूप में या सिक्के के हेड्स या टेल्सस के रूप में नही दिया जा सकता। वह भी तब जब हम ऐथनिक कानफिलिक्टस, युद्धों और पर्यावरण के संकट से झूझती दुनिया और सबकुछ को हजम-हड़प कर जानेवाली आर्थिक दुनिया में बन रहे, मिट रहे समीकरणों के बीच इस उपन्यास को पढ़ रहे हों।

बहरहाल, हम लौटते हैं, गोरा के टेक्सट की ओर जहाँ गोरा एक द्वन्द्व का शिकार है। उसके व्यक्तित्व का विभाजन है। यह द्वन्द्व तत्कालीन समय का भी है। जाहिर है, रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस द्विभाजन को किसी खास प्रयोजन के साथ ही रखा होगा। गोरा के व्यक्तित्व का द्विभाजन यह है कि वह एक आयरिश दम्पति का पुत्र है, जिसकी खबर गोरा को नहीं है लेकिन पाठक को है। और वह अपने आप को एक हिन्दू परिवार में पला-बढ़ा विशुद्ध हिन्दु मानता है। यह सच भी है कि इसका लालन-पालन हिन्दू परिवार में हुआ है और वह हिन्दू धर्म की शुद्धता को बनाए रखने की हर सम्भव कोशिश करता है। यह कोशिश आक्रामक है। ठोस है। और कहीं न कहीं थोड़ी संशयग्रस्त भी। पाठक को यह पता है कि यह ऐसे पात्र की कोशिश है जो स्वयं हिन्दू नहीं है। यह विडम्बना ही है कि जो कुछ वह नहीं है, उसकी रक्षा और उसपर विश्वस्त तरीके से लगातार बहस कर रहा है। हम चाहें तो इस विडम्बना को राजनैतिक पहलू से भी जोड़ कर देख सकते हैं, जहाँ मूल्य, नैतिकता आदि पर बात करने वाले स्वयं उससे कोसों दूर होते हैं, उससे हीन होते हैं। आइए, हम गोरा के कुछ संवाद को नवजागरण के आईने में देखें- बिलकुल ठीक! मैं उसे बांधकर ही रखूंगा। जब तक तुम उस ख्रिस्तान नौकरानी लछमिया को छुट्टी नहीं दे देती तबतक तुम्हारे कमरे में खाना नहीं हो सकेगा। आप जिसे कुप्रथा कहते हैं केवल अंग्रेजी किताबें रटकर कहते हैं, स्वयं उसके बारे में कुछ नहीं जानते। (पृष्ठ - 54)

गोरा ने कहा, मैं हिन्दू हूँ । हिन्दू तो कोई दल नहीं हुआ, हिन्दू तो एक जाति है। यह जाति इतनी बड़ी है कि इसका जातित्व इसमें है यह किसी परिभाषा में बांधा ही नहीं जा सकता, समुद्र जैसे उसकी लहरे नहीं है वैसे ही हिन्दू कोई दल नहीं है। (पृष्ठ- 340) गोरा के ऐसे कई संवाद हैं जिसमें वह अपनी अस्मिता को हिन्दू अस्मिता के भीतर पहचान रहा है। यह पहचान उसकी नितांत वैयक्तिक नहीं है बल्कि सामुदायिक है। हिन्दू समुदाय। जब गोरा को यह खबर होती है कि वह हिन्दू नहीं है और उसे अपने पिता का श्राद्ध करने का अधिकार नहीं है, तब लगता है कि गोरा और उपन्यास दोनों अपनी मुक्ति की राह तलाश रहे या पा चुके हैं। गोरा के कुछ आखरी संवाद गोरा ने गरजकर कहा, रहने दीजिए उनका नाम! मैं नहीं जानना चाहता। (पृ. 449)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गोरा ने कहा, नहीं, मैं हिन्दू नहीं हूँ। आज भारतवर्ष के उतर से दक्षिण तक सब देव मन्दिरों के द्वारा मेरे लिए बन्द हो गए हैं। सारे देश में आज किसी समाज में किसी पंगत में मेरे बैठने के लिए जगह नहीं है। (पृ. 452)

गोरा जिस अस्मिता के साथ पूरे उपन्यास में छाया रहाए उसका द्वन्द्व और विडम्बना के रूप में यह अन्त कि मैं हिन्दू नहीं हूँ। टैगोर ने हिन्दू धर्म के तथाकथित कर्मकांडीय स्वरूप पर चोट की है। हम चाहें तो टैगोर, गोरा और तत्कालीन परिवेश के माध्यम से और भी कई निष्कर्ष निकाल ले जाएं लेकिन सवाल निष्कर्ष का नहीं बल्कि अस्मिता का है जिसमें गोरा के अलावा भी और कई पात्र हैं। एक ही समाज में रहने वाले कई लोग जो अपनी भूमिका बिना इतिहास में दर्ज हुए निभाते चले जाते हैं। विनय, गोरा का मित्र है। विनय भी हिन्दू है, परन्तु कट्टर नहीं। गोरा से उसका मतभेद रहा करता है जबकि दोनों एक ही परिवेश की उपज है। विनय की अस्मिता अलग ढंग से परिभाषित होती है। यह अलग ढंग गोरा की उपस्थिति में जितना दिखता है। उतना ही अनुपस्थिति में भी। विनय का एक संवाद देखिए- विनय ने हँसकर कहा, आपसे सच ही कहता हूँ, मेरे विश्वास में गोरा जैसा जोर नहीं है। जब जाति-भेद के बन्धन और समाज के विकारों को देखता हूँ तब कई बार सन्देह भी प्रकट करता हूँ, किन्तु गोरा का कहना है कि बड़ी चीज को छोटा करके देखने से ही सन्देह उत्पन्न होता है। जिसे आप जाति-भेद का फल कहती हैं, व अवस्था का फल है, केवल जाति-भेद का नहीं। (पृष्ठ 110)

देखिए, सूर्य के उदय की वैज्ञानिक लोग एक ढंग से व्याख्या करते हैं और साधारण लोग एक दूसरे ढंग से। इससे सूर्य के उदय का विशेष कुछ घटता-बढ़ता नहीं है। (पृष्ठ 112)

हम कह सकतें हैं कि विनय का यह संवाद उसे एक अलग तरह की पहचान देता है। वह अपनी उपस्थिति के प्रति सजग है, अपनी अस्मिता, अपनी भूमिका के प्रति चेतस है। लगता है, टैगोर गोरा के समक्ष विनय को काउन्टर चरित्र के रूप में खड़ा कर रहे हों, या कि गोरा का बदला हुआ संस्करण विनय लग रहा हो, ट्रान्सफॉर्म स्वरूप में जो कभी-कभी मिलता हो और कभी-कभी पृथक हो जाता हो। विनय का शशिमुखी से शादी करने से इन्कार और ललिता से बढ़ता हुआ रागात्मक संबध एक खास प्रयोजन के कारण है। विनय हिन्दूसमाज से है और शशिमुखी भी। ललिता जो सुचरिता की बहन है, ब्रम्ह समाज से है। वस्तुत: टैगोर हिन्दू समाज और ब्रह्म समाज के बीच चली हुई बहसों के द्वारा दो पात्रों को खड़ा करते हैं, जो मिलना चाहता हो, मिल नहीं पा रहा हो। विनय ब्रह्म समाज में शामिल होना चाह रहा है ताकि ललिता से वह शादी कर सके और तमाम विवादों को खत्म कर सके। वह अपनी अस्मिता को ललिता की अस्मिता से मिलाकर एक नई अस्मिता की तलाश में है जिसमें सहयोग है, संघर्ष नहीं, ललिता विनय को ब्रह्म समाज में आने से रोकना चाहती है और उसे हिन्दू धर्म में रहते स्वीकार करना चाहती है। भारतीय नारी की यह क्रान्तिधर्मिता वस्तुत: पुनर्जागरण चेतना के प्रभाव में आए बदलाव के कारण है। तकनीक और ज्ञान के रास्ते ने उसके सामने कई विकल्प खोल रखे हैं। ललिता के संवाद-पहले मुझे लगता था कि कि ब्रह्म समाज ही एकमात्र दुनिया है और उसके

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बाहर जो कुछ है, सब छाया है, ब्रह्म समाज से अलग होना मानो समूचे सत्य से अलग होना है। लेकिन इधर कुछ दिनों से मेरा यह विचार बिलकुल बदल गया है। (पृष्ठ–353)

हम देख सकते हैं, कि आत्मचेतस् मध्यवर्ग वरण को लेकर कितना चिन्तन करता है। अस्मिता निर्माण में कितना सन्देहवादी हो रहा होता है। ललिता का संवाद यही समाप्त नहीं होता बल्कि बहुत आगे तक ले जाता है, जहाँ वह आज के स्त्री–विमर्श से भी जुड़ जाता है। उपन्यास के भीतर सुचरिता और हारान बाबू की टकराहट एक दिलचस्प वातावरण का निर्माण करता है। दोनों ब्रह्म समाजी है। दोनों में यदि विवाह हो जाता तो यह एक सामान्य घटना होती। उपन्यासकार ऐसा नहीं चाहता। सुचरिता को इससे मतलब नहीं कि वह ब्रह्म समाजी है और हिन्दू समाज के गोरा से जुड़ रही है। वह कहती है- मैं समाज भी नहीं जानती। मैं इतना जानती हूँ कि मैं हिन्दू हूँ। (पृष्ठ –383) हारान बाबू ठीक इससे उलट सुचरिता को लगातार बता रहें हैं कि ब्रह्म समाज और हिन्दू समाज में प्रर्याप्त अन्तर है। इस बहस का नतीजा चाहे कुछ भी हो, रेखांकित करनेवाली बात यह है, टैगोर यह अच्छे से जानते थे कि धर्म की भाषा को जाने, पहचाने बिना बृहत्तर मानवीय समुदाय खासकर निचले तबके का भला नहीं हो सकता। उपन्यास का यह डिबेट वस्तुतः हमें यह इशारा कर रहा है कि आत्मचेतस बौद्धिक वर्ग का जीवन किन संघर्षों और अस्मिताओं में बन रहा है, बिगड़ रहा है। हारान की खिन्नता, सुचरिता की कोमलता, गोरा का आक्रामक स्वरूप एक ऐसे त्रिकोण की निर्मिति करता है जिसमें हारान की स्थिति ज्यादा हास्यास्पद है। दूसरी ओर शशिमुखी, ललिता और विनय का भी एक त्रिकोण बनाता है, जिसमें शशिमुखी बहस से बाहर हो जाती है। पहले त्रिकोण में दो पुरूष पात्रों के बीच एक स्त्री और दूसरे त्रिकोण में दो स्त्रियों के बीच एक पुरूष पात्र खास ढंग से संवाद कायम करते हुए एक-एक पात्र को निकाल बाहर करता है। यह इशारा है अपने पर्यावरण के अनुसार बनाई जा रही अस्मिता काए जो मिसफिट है वह बाहर होगा। हम चाहें तो डार्विन को फिर याद कर लें। सर्वाइवल ऑफदि फिटेस्ट।

इन सभी पात्रों के बीच आनन्दमयी एक ऐसा पात्र है, जिसके साथ संभवतः टैगोर ज्यादा कम्फर्टस महसूस करते होगें क्योंकि एसमें ही प्राच्च और पाश्चात्य का एक सन्तुलन है। हिन्दू परिवार में रहते हुए भी वह अपने हिन्दू परिवार के सदस्यों यहाँ तक स्वयं अपने पति से भी अलग कर दी गई है। उसे अपने परिवार में ख्रिस्तान कहा जाता है क्योंकि वह लछमिया का छुआ पानी पीती है, शुचिता पर जोर है लेकिन बाह्य नही आन्तरिक स्वरूप में।

अंततः यह कहा जाना चाहिए कि उपन्यास की कथा और कथा के विभिन्न मोड़ों के माध्यम से भी यह साबित नही होता कि अस्मिता की कोई अन्तिम खोज है। इसलिए इस उपन्यास के कई पात्र आत्मबोध के साथ मुक्ति की अवधारणा की ओर जाते हैं। समाहार की ओर पहुँचते हैं। मुझ पर कोई बन्धन नहीं (पृष्ठ–452) मैं दिन–रात जो होना चाह रहा था, पर हो नहीं पा रहा था, आज मैं वही हो गया हूँ । आज मैं सारे भारतवर्ष का हूँ। मेरे भीतर हिन्दू, मुसलमान, ख्रिस्तान किसी समाज के प्रति कोई विरोध नहीं है। आज इस भारतवर्ष में सबकी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जात मेरी जात है, सबका अन्न, मेरा अन्न है। (पृष्ठ-453) लछमिया को बुलाओ- उसे कहोए मुझे पानी पिला दे (पृष्ठ -455) असल में, क्या पानी की मांग करना उपन्यास में एक दैनिक मांग मात्र है। उत्तर की तलाश में हमें उपन्यास में तथा सामाजिक विन्यासों में बार-बार और हर बार लौटना पड़ता है। आजतक भी।

रवीन्द्रनाथ की तमाम रचनाओं में मनुष्य खुद को एक समरसतापूर्ण समाज में तलाश करता है या खुद की तलाश की ललक लिए जीता है। गुरुदेव के गद्य में यह तलाश ज्यादा खुलकर आयी है। गोरा, घर बाहर, आंख की किरकिरी को नवजागरण की पृष्ठभूमि में रवीन्द्रनाथ की रचनाओं को पढ़ना एक भिन्न किस्म के निष्कर्षों की तरफले जाता है। यहाँ यह भी उल्लेख करना उचित होगा कि नवजागरण की चिंताओं में गुरुदेव के सामने व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य था जिसमें सबसे महत्वपूर्ण शांतिनिकेतन की स्थापना था। यह उनके उपन्यास और कहानी से बाहर का समाज और समय था। इस स्थापना में गुरुदेव ने अपनी प्रसिद्ध काव्य पुस्तक् गीतांजलि को मिले नोबेल पुरस्कार की राशि को लगाया था। दरअसल कोई भी प्रतिबद्ध लेखक अपनी उपलब्धियों, अपनी प्रसिद्धियों को जो उसे उसके समय और समाज से प्राप्त हुआ है लौटा देना चाहता है। शांतिनिकेतन के रूप में गुरुदेव ने उन उपलब्धियों और प्रसिद्धियों को अपने समय में ही भावी पीढ़ी के लिए छोड़ा था। दरअसल गुरुदेव मनुष्य को एक वृहतर परिप्रेक्ष्य में देखते हैं उन्होंने अपने लेख मानव सत्य में तीन तरह की जन्मभूमि का उल्लेख किया है, पहली जन्मभूमि है-पृथ्वी, दूसरी है- स्मृति जगत और तीसरी है आत्मलोक शांतिनिकेतन के रूप में गुरुदेव की यह तीनों जन्मभूमियां हैं। 31 दिसम्बर 1932 को रवीन्द्रनाथ टैगोर ने प्रश्न नाम से एक कविता लिखी, इस लेख का अंत इसी पंक्ति से करने की इजाजत चाहूँगा ... *भगवान तुमने युग, युग में बार-बार इस दयाहीन संसार में अपने दूत भेजे हैं/ वे कह गए हैं क्षमा करो/ कह गए हैं प्रेम करो/ अंतर से विद्वेष का विष नष्ट कर दो /वरणीय हैं वे/ स्मरणीय हैं वे/ तो भी आज दुर्दिन के समय /उन्हें निरर्थक नमस्कार के साथ/ बाहर के द्वार से ही लौटा रहा हूँ...*

12, शमशेर संकुल, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय
वर्धा, महाराष्ट्र- 442001
09422905755

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी दलित कविता और संत साहित्य

ओमप्रकाश वाल्मीकि

दलित कविता ने जिस मुखरता और विश्वास के साथ अपनी संघर्ष यात्रा को इस मुकाम तक पहुँचाया है वह इतना आसान नहीं था। कविता को आनन्द और मोक्ष, रसोत्पत्ति का साधन मानने वाले विद्वान आलोचकों ने दलित कविता को जिस तरह खारिज करने की मुहिम चलाये रखी, वह बेहद निराशाजनक थी। लेकिन दलित कविता का जन्म जिस परिवेश में हुआ और जिस उद्देश्य के लिए हुआ, उसके सामने आलोचकों के तमाम तर्क ज्यादा दिन तक नहीं टिक पाये। दलित कविता ने सामाजिक जीवन में गहरे तक जड़ जमाये बैठी घृणा की जगह सामाजिक समता, बंधुत्व और मनुष्य की स्वतंत्रता को अपनी आंतरिक चेतना का हिस्सा बनाया। इसीलिए वह उस व्यक्ति-समूह के पक्ष में खड़ी हुई, जो तीन हजार साल की दासता से मुक्ति की आकांक्षा अपने भीतर संजोये हुए था, और सामाजिक, धार्मिक नियमों और शास्त्र सम्मत वर्जनाओं के सामने अपने आपको बेबस मान बैठा था। क्योंकि उसके विरोध करने के सभी साधन उससे छीन लिये गये थे। उसके भीतर हीनताबोध भर दिया गया था। जिसके कारण उसने इन तमाम सामाजिक कुटिलताओं और वर्जनाओं को अपनी नियति मान लिया था। हजारों साल की यातनाओं को सहते हुए उनका अभ्यस्त हो गया था। वह यदि तथाकथित सृष्टि निर्माता या ईश्वर से भी अपनी शिकायत दर्ज करता तो उसके अंतस में बसी हीनता उसे गिड़गिड़ाने को ही बाध्य करती थी। संतों की वाणी में यह गिड़गिड़ाहट साफतौर पर देखी जा सकती है।

यहाँ यह ऐतिहासिक तथ्य भी ध्यान आकर्षित करता है संतों का आर्विभाव मुस्लिम काल में ही क्यों सम्भव हुआ। इन तथ्यों की पड़ताल करते हुए कहा जा सकता है कि भारत पर इस्लामी आक्रमणों और इस्लामी सत्ता की स्थापना और हिन्दू-सत्ता के पराभव के संक्रमण काल में ही संत साहित्य का उदय हुआ। बिखरती हिन्दू सत्ता व वर्ण-व्यवस्था को सम्भालने और इस्लाम के प्रभाव को रोकने का काम संत साहित्य ने किया है। वर्ण-व्यवस्था को कमजोर करने के बजाय उसे और ज्यादा मजबूत बनाने और उसका व्यापक प्रचार-प्रसार करने में संत साहित्य की भूमिका रही है। इससे वर्ण-व्यवस्था की वैचारिकता को बल मिला।

लालजी पेण्डसे का मानना है कि 'वैचारिक आधार पर संत साहित्य का वर्गीकरण करने पर दो स्पष्ट भाग हो जाते हैं। एक भाग में हरिनाम संकीर्तन की महिमा गाकर अध्यात्म विचार प्रस्तुत किया गया है और संत साहित्य का विचार करने वाले लेखकों ने इसी भाग पर पूरा जोर दिया है। दूसरे भाग में ब्राह्मण और क्षत्रिय कर्म-भ्रष्टता सम्बन्धी धधकती शिकायत की गयी है। नानक, कबीर, चंडीदास व चैतन्य, गोरक्ष, विवृत्ति, ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, चोखा, महालिंग,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दातोपंत और नरसी मेहता, अरवा भगत, तुकाराम इन सबका साहित्य इस धर्मच्युति के खिलाफ-वर्ण-धर्म-भ्रष्टता के खिलाफ प्रखर, टीका-टिप्पणी से भरा-पूरा है।'

(लालजी पेंडसे/ संत साहित्य की सामाजिक बुनियाद/ (प्र. वसुधा-71) अक्टू.-दिस., 06, पृ. 33)

अनेक विद्वान दलित साहित्य को संत साहित्य से जोड़कर देखने की कोशिश करते हैं। उनका मानना है कि संतों ने मध्यकाल में जात-पांत की भावना और अस्पृश्यता का विरोध किया था। इसीलिए दलित साहित्य का प्रारम्भ संतों की रचनाओं से मानने की वकालत करते हैं। कई विद्वान तो और भी अधिक आगे बढ़कर रैदास को दलित साहित्य का अग्रदूत तक कह देते हैं।

डॉ. चमनलाल कहते हैं- 'आधुनिक दलित साहित्य ने भी अपनी पहचान समाज के विकृत जातिगत ढांचे के प्रति अपना आक्रोश जता कर की है, सो इस संदर्भ में आधुनिक दलित साहित्य की जड़ें-कबीर और रविदास की वाणी में देखी जा सकती हैं। इसलिए इस तथ्य को यहाँ रेखांकित किया जा सकता है कि सही मायनों में कबीर और रविदास हिन्दी दलित साहित्य के अग्रदूत हैं। उत्तरी भारत के दलित साहित्य का आरंभ कबीर और रविदास से माना जाना चाहिये और वहीं से दलित साहित्य का ऐतिहासिक अध्ययन किया जाना चाहिये।'

(डॉ. चमनलाल/ दलित साहित्य के अग्रदूतः गुरु रविदास/ आधार प्रकाशन, पृ. 7-8)

यहाँ डॉ. चमनलाल सभी ऐतिहासिक संदर्भों को अनदेखा करते हुए सिर्फ जाति विरोध को ही दलित साहित्य समझने का तर्क देते दिखायी देते हैं। दलित साहित्य की अंतःचेतना जिसे दलित चेतना कहा जाता है, जो साहित्य को दलित साहित्य में परिवर्तन करती है, को न देखने करने की प्रवृत्ति यहाँ दिखायी देती है, यह दलित चेतना ही है जिसने दलितों की चुप्पी तोड़ी है, जिसने उन्हें मुखर किया है और मुक्ति-संघर्ष के लिए उनके भीतर एक जज्बा पैदा किया है। जब तक इस दलित चेतना को ठीक-ठीक पहचानने की दृष्टि और मानसिकता का अभाव रहेगा, तब-तक दलित साहित्य की दिशा और उसके आंतरिक प्रवाह को पकड़ना कठिन होगा। यह दलित चेतना आखिर है क्या ? इस पर भी एक संक्षिप्त सी दृष्टि डाली जाये।

हजारों साल के उत्पीड़न, शोषण, सामाजिक विद्वेष, धार्मिक प्रतिबंधों, मानवीय अधिकारों से वंचित, दीन-हीन दलित नारकीय जीवन को भोग रहा था। उसके पक्ष में न साहित्य था, न धर्म, न देवी-देवता, न तथाकथित विद्वत्त जन। उसकी गिनती कुत्ते-बिल्लियों से भी निम्न थी। न वह गांव की बस्तियों में रह सकता था, न गाँव की गलियों में एक सामान्य नागरिक की तरह चल फिर सकता था। हजारों साल वह इसी तरह जीता रहा। समाज के तथाकथित उच्चवर्गीय लोगों ने उसका इस्तेमाल तो किया, लेकिन एक जरूरत भर के लिए। उसके दुख-सुख की परवाह करने के लिए न किसी अवतार ने जन्म लिया, न किसी राजा- महाराजा ने कभी उसके दर्द को समझने की कोशिश की। इस बीच उसने अनेक बार संघर्ष करने के लिए कदम बढ़ाये लेकिन धार्मिक प्रतिबंध इतने सख्त थे कि हर बार उसे और ज्यादा नारकीयता भोगनी पड़ी। हजारों साल से दलित पीने के पानी के लिए लड़ता रहा है। लेकिन जिस तालाब, नदी, पोखर का इस्तेमाल जानवरों, पशुओं के लिए खुला रहा, वह भी एक दलित के लिए प्रतिबंधित ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहा। डॉ. अम्बेडकर ने महाड, और चवदार तालाबों के लिए 70-80 साल पूर्व आंदोलन किया था। लेकिन आज भी राजस्थान, हरियाणा, उत्तराखंड आदि प्रदेशों में एक दलित सार्वजनिक तालाबों, नदियों के जल का उपयोग नहीं कर सकता है।

दलित चेतना का सीधा सम्बन्ध दृष्टि से है। दलित यानि हजारों साल से शोषित, प्रताड़ित, सामाजिक और धार्मिक विद्वेष से नारकीय जीवन जीने के लिए बाध्य किया गया, मानवीय अधिकारों से वंचित, वर्ण-व्यवस्था में सबसे नीची पायदान पर खड़ा, अस्पृश्य, अत्यंज, पंचम कहा जाने वाले व्यक्ति की चेतना यानि दलित चेतना यही दलित चेतना। दलित साहित्य की अंत:ऊर्जा में नदी के तेज बहाव की तरह समाविष्ट है, जो उसे पाम्परिक साहित्य से अलग करती है। दलित चेतना पर विमर्श करने से पूर्व भारतीय समाज-व्यवस्था पर ध्यान देना आवश्यक है। भारतीय समाज-व्यवस्था को समझे बगैर दलित चेतना की तीव्रता का अहसास कठिन है। हजारों वर्ष की प्रताड़ना, शोषण, द्वेष, वैमनस्य और भेदभाव से दबा दलित अपनी अस्मिता की खोज के लिए जागरुक दिखायी पड़ता है।

इस चेतना का उद्भव डॉ. अम्बेडकर के मुक्ति-संघर्ष से विकसित हुआ है। विशेष रूप से धर्म परिवर्तन के समय डॉ. अम्बेडकर द्वारा ली गयी बाईस प्रतिज्ञायें ही दलित चेतना की भूमि तैयार कर उसे सुदृढ़ करती हैं। ये ही दलित चेतना को एक मजबूत आधार देकर उसे परिपक्व करने में भी सफल रही हैं। इसने दलितों के आत्म विश्वास को जगाया है।

वैचारिक रूप से दलित चेतना, बंधुता और स्वतंत्रता की पक्षधर है। अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, पुनर्जन्म, ब्राह्मणवादी समाज-व्यवस्था का विरोध, हिन्दू देवी-देवताओं के प्रति अनास्था, अधिनायकवाद का विरोध, आर्थिक क्षेत्र में पूंजीवाद का विरोध, वर्णविहीन, वर्गविहीन समाज की पक्षधरता, भाषावाद, लिंगवाद का विरोध, स्त्री के प्रति समानता का भाव आदि कुछ विशिष्ट बिंदु हैं जो दलित चेतना के सरोकारों में शामिल हैं।

दलित चेतना का सरोकार इन प्रश्नों से बहुत गहरे तक जुड़ा है कि 'मैं कौन हूँ ?', 'मेरी पहचान क्या है ?'

चातुर्वर्ण्य-समाज-व्यवस्था के कारण इन संतों को भी समाज की अवहेलना सहन करनी पड़ी। ईश्वर भक्ति के लिए इन्हें मंदिर के बाहर ही बैठना पड़ा। ईश्वर भी इनके लिए मंदिर प्रवेश कराने में असमर्थ रहा। इनकी कोई मदद ईश्वर नहीं कर पाया। इसीलिए, भक्तिकालीन सभी संत निर्गुण उपासक हैं और सभी भक्त सगुण। अनेक विद्वान इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि दलितों के लिए धन-सम्पत्ति एकत्र करने की ही मनाही नहीं थी, बल्कि उन्हें भक्ति की भी मनाही थी। दलित और शूद्र समाज में जन्मे व्यक्ति के लिए ईश्वर, मन्दिर और भक्ति ये तीनों प्रतिबंधित थे। मुस्लिम शासन के प्रभाव से उस काल में अनेक संत राष्ट्रीय फलक पर एक साथ उभरे। लेकिन मन्दिर के दरवाजे उनके लिए बंद थे। जिन्हें खुलवाने के लिए संघर्ष के बजाये, इन्होंने स्वयं को इस रास्ते से हटाकर निर्गुण की ओर मोड़ लिया। जिसका असर यह हुआ कि समाज में जो एक अधिकार पाने की लड़ाई शुरू होनी चाहिये थी वह नहीं हुई।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यहाँ यह तथ्य भी ध्यान आकर्षित करता है कि कबीर और रैदास का गुरु रामानन्द माने जाते हैं, जो सगुणधारा के भक्त हैं, लेकिन उनके शिष्य कबीर और रैदास निर्गुणधारा के संत हैं। दूसरी ओर मीरा जो कि राजघराने से सम्बन्ध रखती है, और रैदास की शिष्य मानी जाती है, वह भी सगुण उपासक है। जब कि उसके गुरु रैदास निर्गुण हैं। इन तथ्यों से यह बात स्पष्ट होती है कि भक्ति में भी जन्मना जाति आड़े आती थी जिसे ये संत तोड़ने में असफल रहे हैं। उसके विरुद्ध संघर्ष करने के बजाय इन्होंने निर्गुण का रास्ता अपनाया। जिसे विवशता का रास्ता कहें तो गलत नहीं होगा। क्योंकि सामाजिक और आत्यात्मिक बदलाव लाने की स्थिति में ये संत कभी भी नहीं रहे। यहाँ तक कि कबीर, जिनकी क्रांतिकारी छवि दिखायी देती है, वह भी आध्यात्मिक सवालों पर संघर्ष के बजाय अपना रास्ता ही बदल लेते हैं, जिससे समाज में जिस बदलाव की सम्भावनायें बन सकती थीं, वे सैकड़ों साल आगे खिसक जाती हैं।

इतना ही नहीं रैदास अस्पृश्य थे, इसीलिए उनके लिए गंगा भी प्रतिबंधित थी। वे गंगा स्नान के लिए नहीं जा सकते थे। इसी विवशता में रैदास को भी कहना पड़ा कि 'मन चंगा तो कठौती में गंगा।'

कबीर ने वर्ण-व्यवस्था और जातिभेद को लेकर सवाल जरूर खड़े किये, जो उस काल की विषम परिस्थितियों में बहुत मारक रहे होंगे। लेकिन प्रश्न वही है कि उसका प्रभाव समाज में किस रूप में पड़ा। हिन्दी के प्रतिष्ठित रचनाकार प्रताप नारायण मिश्र उन्हें नीच लोगों का कवि कहते हैं। यानि साहित्य में मौजूद जातिवादी मानसिकता कबीर जैसे कवि को जातीय घेरे से बाहर नहीं आने देती है। वही स्थिति रैदास के साथ भी है:

रैदास जन्म के कारनै होई न कोई नीच।
नर को नीच करि डारि हैं, औछे करम की कीच।।

लेकिन यहीं रैदास यह भी कहते हैं कि-

ऊँचे कुल के कारणै, ब्राह्मण कोय न होय।
जोउ जान्हि ब्रह्म आत्मा, रैदास कवि ब्राह्मण होय।।

यानि रैदास भी ब्रह्म के जानकार को ही ब्राह्मण मान रहे हैं। यानि घूमफिर कर उसी दर्शन को सही मान रहे हैं जिसके आधार पर वर्ण-व्यवस्था जैसी अमानवीय सोच तैयार की गयी है। उनका विरोध भी उन्हें स्वयं को 'जाति-मुक्त' करने में असफल रहा। यहाँ इस उपलब्धि को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि सिखों के गुरु ग्रंथ साहिब में रैदास की कविताओं को ससम्मान स्थान मिला। इसके बावजूद भी वे जितने पूजनीय और मान्य अपनी ही जाति में हैं, उतने अन्य जातियों में नहीं हैं, जो विद्रोही रूप जाति-व्यवस्था के विरुद्ध संत साहित्य में उभरना चाहिये था, वह नहीं उभर सका। डॉ. आर.जी. सिंह कहते हैं- 'भक्ति, डॉ. अम्बेडकर के अनुसार लोगों में समर्पण की भावना को बढ़ावा देती है। यह समाज के लिए अफीम का कार्य करती है। भक्ति ने दलितों की नसों को कमजोर किया है। उनमें अधीनता की भावना को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विकसित किया है।'

(डॉ. आर.जी. सिंह/ भारतीय दलितों की समस्यायें एवं उनका समाधान, म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1996)

इस संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी के विचार भी इसी तरह के निष्कर्ष की ओर संकेत करते हैं– 'भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि ऊँच नीच की भावना को उठा देने के लिए धार्मिक और आध्यात्मिक प्रयत्न सफल नहीं हुए हैं, जो लोग अब भी आशा लगाये हैं कि धार्मिक आंदोलन करके इस कठोर व्यवस्था को शिथिल कर देंगे, वे इतिहास से बहुत ही कम सीखे हैं। ऊँचाई तक समाज के बहुत थोड़े लोग ही पहुंच सकते हैं। बाकी लोग छोटे-छोटे दुनियावी टंटों में उलझ जाते हैं। वे आध्यात्मिक आदर्श को विकृत कर देते हैं।'

(हजारी प्रसाद द्विवेदी/ लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, अठारहवां संस्करण, 1990 पृ. 63,64)

संतों में ज्यादातर अस्पृश्य जातियों से थे। जाति के प्रति उनके मन में गहरी वेदना थी, जो अनेक बार उनकी रचनाओं में दिखायी भी देती है। जैसे कबीर ने तीखा प्रहार करते हुए कहा–
'जो तू बामन बामनी का जाया, तो आन बाट ह्वै काहे न आया'

इसी तरह संत चोखा मेला विदीर्ण हृदय से कहते हैं–

हीन वार्ता माझी देवा।
कशी घड़ेल तुझी सेवा।

संत कवियों में जो जाति विरोध दिखायी देता है, वह भी काफी धीमे स्वर में है। जिसकी अपनी सीमायें हैं। वे कहीं भी दलित शोषण के लिए जाति-व्यवस्था को दोषी नहीं मानते, चोखा मेला तो इसे पूर्व जन्मों का ही फल मानते हैं।

कृष्ण निंदा घडली होती। म्हाणोनी महार जन्म प्राप्ति।
चोख म्हणें विटाळ। आम्हा पूर्वींचे हे फळ।

इस अभंग में चोखा मेला स्वयं को ही दोषी मान रहे हैं।

संत साहित्य सुधारवादी दृष्टिकोण से समस्याओं के समाधान ढूँढता था। जो यथास्थितिवाद के लिए उपयोगी साबित हुआ है। इसकी मुखरता सामाजिक आन्दोलन में तब्दील नहीं हो पायी। जबकि चातुर्वर्ण्य-समाज-व्यवस्था के कारण इन संतों को भी सामाजिक जीवन में अवहेलना, प्रताड़ना, सहनी पड़ी। यहाँ तक कि ईश्वर भक्ति के लिए इन्हें मंदिर के बाहर ही बैठना पड़ा। रैदास को तो यहाँ तक कहना पड़ा– 'मन चंगा तो कठौती में गंगा...' संत चोखा मेला ने मन की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए अनेक 'अभंगों' की रचना की। लेकिन जाति-व्यवस्था को लेकर उन का भी वही ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण था। उनके इन अभंगों में यह तथ्य स्पष्ट रूप से उभर कर आता है।

शुद्ध चोखा मेळा। करी नामचा सोहळा।।
जाति हीन मी महार। पूर्वी निळाचा अवतार।।

उपरोक्त अभंग में गहरी वेदना है, अस्पृश्यता के प्रति तिरस्कार की भावना भी दिखायी दे रही है। लेकिन विरोध का स्वर बहुत ही दबा-दबा-सा है, जो जाति-व्यवस्था के विरुद्ध

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किसी भी प्रकार के संघर्ष या प्रतिरोध की चेतना को विकसित नहीं करता है। क्योंकि इन पंक्तियों में हिन्दू मान्यताओं को नकारा नहीं गया है बल्कि उनको ही स्वीकार करने की प्रवृत्ति दिखायी दे रही है। अस्पृश्य होने को वे पिछले जन्म के कर्म-फल को मान रहे हैं।

इसी संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर भी कहते हैं-'जहाँ तक संतों का प्रश्न है, तो मानना पड़ेगा कि विद्वानों की तुलना में संतों के उपदेश कितने ही अलग और उच्च हों, वे सोचनीय रूप से निष्प्रभावी रहे हैं। वे निष्प्रभावी दो कारणों से रहे हैं पहला-किसी भी संत ने जाति-व्यवस्था पर कभी भी हमला नहीं किया। इसके विपरीत वे जातपांत की व्यवस्था के पक्के विश्वासी रहे हैं। उनमें से अधिकतर उसी जाति के होकर जिए और मरे, उसी जाति में जिसके वे थे। उन्होंने यह शिक्षा नहीं दी कि सारे मानव बराबर हैं, परन्तु यह शिक्षा दी कि ईश्वर की सृष्टि में सारे मानव समान हैं। दूसरा कारण यह था कि संत की शिक्षा प्रभावहीन रही है क्योंकि लोगों को पढ़ाया गया कि संत जाति का बंधन तोड़ सकते हैं, लेकिन आदमी नहीं तोड़ सकता। इसीलिए संत, अनुसरण करने का उदाहरण नहीं बने।'

कबीर और रैदास में जो विद्रोह दिखायी पड़ता है वह भी आत्मा-परमात्मा के गुंजल्क से बाहर नहीं निकल पाया। कबीर के सामाजिक विरोधाभासों से सभी परिचित हैं। स्त्री के प्रति उनकी सोच जग जाहिर है।

नारी तो हम भी करि, पाया नहीं विचार।
जब जाना तब परिहरि, नारी बड़ा विकार।।

इसी तरह तुलसीदास भी स्त्री के प्रति नकारात्मकता का परिचय देते हैं-

नारी स्वभाव सत्य कवि कह हीं, अवगुण आठ सदा उर रही हीं।
साहस-अनृत, चपलता, माया, भय, अविवेक, असौच, अदाया।

सिद्धों और संतों की सबसे बड़ी कमी यही रही है कि दोनों नारी को हीनता के साथ देख रहे हैं। सिद्धों के लिए नारी साधना का एक साधन है और उपभोग का भी। संतों ने नारी को साधना में बाधक मानकर हेय दृष्टि से देखा है।

रीतिकालीन कवियों की चिंता में दलित कहीं नहीं है। स्त्री है, लेकिन सिर्फ विलासिता की वस्तु मात्र। उनके लिए सामाजिकता का कहीं कोई अर्थ नहीं है।

इसी तरह के विरोध के स्वर सिद्धों की रचनाओं में भी दिखायी पड़ते हैं। बल्कि सरहप्पा को हिन्दी साहित्य में जाति प्रथा का विरोध करने वाला पहला कवि भी माना जाता है। लेकिन इन सब विरोधों के बावजूद ये संत और सिद्ध जहाँ एक ओर जाति का विरोध कर रहे थे वहीं स्त्री के प्रति असहिष्णुता भी दिखा रहे थे और ब्राह्मणवादी मान्यताओं के साथ खड़े थे। यह उनके क्रिया कलापों का विरोधाभास था। जिसके कारण वे जाति के प्रश्नों को उतनी शिद्दत से नहीं उठा पाये तथा उसी आध्यात्मिक दायरे में फँस कर रह गये, किसी बड़े परिवर्तन की भूमिका तैयार करने में सफल नहीं हो सके।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सिद्ध कवि सरहपाद का यह पद, जिसमें ब्राह्मणवाद व उसके आडम्बरों को खुली चुनौती दी गयी है।

ब्राह्मणेहि म जाणन्त भेउ।
एव उ पढ़ि अ उ एच्च उ वेउ।।
मट्टी, पाणी, कुस, लई पढ़न्त।
धरहिं वह सी अग्नि हुणन्त।।

(बाह्मण ही क्यों हाथ में कुश, जल, लेकर हवन करते हैं ? यदि आग में घी डाल देने से मोक्ष मिलता है, तो क्यों नहीं सब अंत्यजों को आग में घी डाल कर यज्ञ और हवन करने देते।)

सरहपाद द्वारा ब्राह्मणवादी व्यवस्था को दी गयी वह चुनौती दलित चेतना की पूर्व पीठिका कही जा सकती है। लेकिन एक लम्बे कालखंड में यह चेतना दब कर रह गयी। और इसका हश्र भी संत साहित्य की तरह निष्फल ही रहा।

मराठी के सुप्रसिद्ध दलित लेखक बाबूराव बागूल लिखते हैं– 'मध्यकाल में जन्मा संत साहित्य पूर्ण रूपेण वर्ण-व्यवस्था द्वारा स्थापित वैचारिकता और साहित्यिक आदर्शों में बंध कर रह गया है। संस्कृत साहित्य द्वारा स्थापित संकल्पन, सिद्धांत व नायक और शोषण, दमन के तत्वों को संत साहित्य ने ज्यों का त्यों स्वीकार किया और अभिव्यक्त किया। शोषण व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था इससे और अधिक मजबूत हुई। जाति व्यवस्था और उससे उपजी मानसिकता को इस्लाम ने भी स्वीकार कर लिया था। संतों की भक्ति समाज में समता भाव स्थापित करने में असमर्थ रही है, उनके द्वारा की गयी व्याख्याएं आदर्श रूप बनकर समाज में अपना प्रभाव नहीं जमा पायी। भक्तिमार्ग सर्वत्र फैला, लेकिन भक्तगणों का समूह जाति-व्यवस्था में ही फंसा रहा। कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद, आत्मवाद, देववाद आदि मान्यतायें और अधिक गहराती गयीं। जिससे यथास्थितिवाद को बढ़ावा मिला। 'जो भी होता है, ईश्वर की मर्जी से होता है', की भावना ज्यों की त्यों बनी रही। हिन्दू सामंतवाद की वैचारिक और सामाजिक व्यवस्था भारतीय समाज में जैसी थी वैसी ही बनी रही।'

(बाबूराव बागूल/ दलित साहित्य आजचे क्रांतिविज्ञान/ दिशा प्रकाशन, नासिक, दूसरा संस्करण-04, पृ.-11)

यहाँ लालजी पेंडसे का यह कथन भी, उस काल की वस्तुस्थिति का, एक चित्र प्रस्तुत करता है, उनका मानना है कि 'हिन्दू सरदारों के आपसी युद्धों में उफान था। एकनाथ से तुकाराम तक के कालखण्ड में तो यह परिस्थिति अधिक विकराल रूप ले चुकी थी। सैकड़ों बड़े-बड़े हिन्दू सरदार इस्लाम धर्म की सेवा को स्वीकार कर राज्य विस्तार और 'क्षेत्र-वित्त-द्वारहरण' की मुहिम चला रहे थे। ब्रह्मकर्म को छोड़कर ब्राह्मण मलेच्छ सेवा में रत हो गये थे। कुलधर्म, कुलाचार डूब गये थे। एकनाथ अपनी 'ओवियों' और 'अभंग', 'जोहार' (बन्दगी), 'भारूड' में भयानक स्थिति का हृदय विदारक चित्र उपस्थित करा रहे थे। इन सारी विपत्तियों का कारण कुलधर्मक्षय बताया है। तुकाराम ने भी कितने ही अभंग इसी तरह शिकायतों में लिखे हैं। इन सभी आलोचनाओं में संतों ने वर्ण-धर्म के ह्रास पर अधिक जोर दिया है। प्रकृति का कोप भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसी ह्रास के कारण माना जाने लगा। इन प्रहारों से व्याकुल होकर तुकाराम असहाय होकर उद्‌गार व्यक्त करते हैं- 'क्या करूँ भगवान ऐसी नहीं शक्ति डंडे के सामने हुए बरबाद।' संत साहित्य का सच्चा मर्म इस आलोचना में और वर्ण-धर्म की पुनर्स्थापना करने के लिए उनके मन के झुकाव में है।'

(लालजी पेंडसे/ संत साहित्य की सामाजिक बुनियाद/ (प्र. वसुधा-71) अक्टू.-दिस., 06, पृ. 33)

तुकाराम ने कहीं-कहीं ऊँच-नीच की भावना पर भी टीका-टिप्पणी की, लेकिन वह भी उसी अंदाज में झिझक और संशय के साथ। जबकि गृहस्थ जीवन पर उनकी अभिव्यक्ति में झुंझलाहट स्पष्ट दिखायी देती है। तुकाराम और एकनाथ के बीच यह अंतर उन दोनों की परिस्थितियों के अंतर का द्योतक है। चातुर्वर्ण्य की पुनर्स्थापना का कार्य रामदास ने अपने हाथ में लिया था और उसमें रामदास सफल भी हुए और इसी बिंदु से संत साहित्य लोकविमुख और प्रतिगामी होकर निष्क्रियता की ओर बढ़ा। जनता के बीच उसका जो महत्व उभरा था, वह समाप्त हो गया। हिन्दी में भी उसका प्रभाव रीतिकाल की स्थापना के रूप में देखने को मिलता है जहां दरबारी और नायिका भेद में हिन्दी कविता उलझ कर अपनी प्रासंगिकता खो देती है।

आधुनिक काल की हिन्दी कविता में हीरा डोम की एक मात्र कविता 'अछूत की शिकायत' और अछूतानंद का लेखन ध्यान आकर्षित करता है। हीरा डोम की यह एक मात्र कविता सिर्फ शिकायती पत्र बनकर रह जाती है। किसी बदलाव की आकांक्षा या बदलाव के प्रति किसी प्रकार की प्रतिबद्धता की वहां कोई गुंजाइश नहीं है।

समकालीन हिन्दी दलित कविता की पूर्व पीठिका के रूप में संत कवियों का योगदान महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। लेकिन दलित कविता संत कवियों से शुरू होती है इसे नहीं माना जा सकता है। क्योंकि दलित कविता जिस वैचारिक और मुक्ति-संघर्ष से एक विस्फोट के रूप में सामने आयी है, वहाँ संत कालीन कवितायें वैसा प्रभाव छोड़ने में असमर्थ रही हैं।

दलित साहित्य को व्यापकता के साथ परिभाषित करते हुए बाबूराव बागुल ने कहा है- 'जब साहित्य सामान्य जन के साथ-शूद्र अतिशूद्र के साथ-सम्बद्ध होता है, तब वह सम्यक परिवर्तन का अर्थात आर्थिक, राजकीय, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक परिवर्तन का पक्षधर बन जाता है। इसी पक्षधरता को 'दलित साहित्य' ने भी स्पष्ट रूप से पहचाना है। वह भी इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि शोषक-सत्ता ने सदैव अपने अनुकूल प्रथाओं, व्यवस्थाओं, धारणाओं और व्याख्याओं को जीवंत बनाये रखने की चेष्टा की है तथा उसने प्रतिकूल पड़ने वाली प्रथाओं को नष्ट किया है। इसलिए दलित साहित्य हिन्दू पौराणिकता, वैचारिकता, मानसिकता, संस्कार, आदर्शों, धारणाओं, प्रतीकों और उनकी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष परिणतियों को नकारता है।'

(बाबूराव बागुल/दलित साहित्यः उद्देश्य और वैचारिकता, वसुधा, अंक-58, जुलाई-सित., 03, पृ.-39)

सी-5/2, आर्डिनेंस फैक्टरी इस्टेट, देहरादून-248008
मो. 09412319034

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कवि चर्चा -(एक)

कविता का आत्मीय चेहरा

नन्द भारद्वाज

कविता एक ओर जहां अपनी प्रकृति में तरल, आवेगयुक्त और अमूर्त होने का आभास देती हैं, वहीं दूसरी ओर वह यथार्थ के प्रति रचनाकार की जीवन-दृष्टि, सामाजिक सरोकारों के प्रति उसकी आन्तरिक तड़प और अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति में असरदार ढंग से व्यक्त होने का पूरा प्रयास करती है। जो रचनाकार अपने रचना-माध्यम को लेकर किन्हीं अतिरिक्त आग्रहों और इतर इरादों के शिकार नहीं होते, उनके स्वर और सोच में एक खास तरह की साफगोई, अपेक्षित आत्म-विश्वास और असीम धैर्य देखते ही बनता है। उनके पास न विषय-वस्तु के चुनाव का संशय होता है, न कथनी के तौर-तरीकों को लेकर कोई ऊपरी चिन्ता। उन्हें जो कहना होता है, भाषा सहज रूप से उनके कथ्य के भीतर से निकल कर आती है, शब्द सौंधी मिट्टी में अंकुर बनकर फूटते हैं और अपना निश्चित अर्थ ग्रहण करते हैं। उनकी गंध और ताज़गी कभी फीकी नहीं पड़ती। ठीक इन्हीं खूबियों के कारण मध्य-भारत के अनेक चर्चित कवि समकालीन हिन्दी कविता में अपनी अलग पहचान रखते हैं। यहां मैं अपनी बात दो चर्चित कवियों राजेश जोशी और नरेन्द्र जैन की कविताओं के हवाले से कहूंगा। इन दोनों ही कवियों के अब तक कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और इनकी कविताओं की भाषा और संरचना में जो स्फूर्ति और गति है, वह हमारे दौर की कविताओं में प्रायः कम देखने को मिलती है।

राजेश जोशी की कविताएं इस बात की द्योतक हैं कि ऊपर से नितान्त सहज और शांत दीखने वाला यह कवि भीतर से कितना अशान्त और उद्विग्न है।

सवाल करो/ सवाल करो/ कि हमारे गांव में कब तक खोला जायेगा/अस्पताल/ कि हमारे घरों के आस.पास/ कब लगाये जायेंगे/ अनार

आजादी के इतने बरस बाद भी आम जनता उन्हीं चन्द अनारों की तरफ ललचायी हुई नज़रों से देखती हैं और मन मसोसकर रह जाती है। जीवन की बुनियादी ज़रूरतों के बारे में शासक-वर्ग के इस उदासीन रवैये के साथ ही हालत तब और ज्यादा चिन्ताजनक हो उठती है, जब लोग उसी को अपनी नियति मान बैठते हैं और व्यवस्था उन्हें ऐसा ही मान लेने पर विवश करती है। राजेश जोशी ने भारतीय जन-मानस में पैठे इस संस्कार के निर्माण में धर्म की भूमिका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और व्यवस्था के दुष्चक्र को बहुत गहराई से समझने और उसे सबके सामने बेपर्दा करने का प्रयास किया है। यह एक प्रामाणिक तथ्य है कि धर्म ने हमेश हर युग में आदमी का शोषण किया है, कभी उसे स्वतंत्र रूप से अपने अनुभव और विवेक से सोचने और उसके अनुकूल आचरण करने की छूट नहीं दी। उसी का यह परिणाम है कि आज एक सामान्य आदमी में इतनी भी हिम्मत नहीं है कि वह अपने घर की दीवार में उग आये पीपल को उखाड़ फेंके और दीवार को धसकने और उस घर को सार्वजनिक स्थल बनने से बचा ले, क्योंकि पीपल को उखाड़ना धर्म के विरुद्ध जो है-

''पीपल ने जड़ें और फैला ली हैं/ दीवार धसक गयी है पूरी तरह/ घर एक तरफसे पूरा नंगा हो गया है/जहां से ताक-झांक कर रहे हैं लोग/पर वह किसी से कुछ नहीं कह पा रहा है/क्योंकि यह धर्म के विरुद्ध है।''

लेकिन राजेश जोशी की कविता इस धार्मिक संस्कार के विरुद्ध आदमी के विवेक और चेतना को बल प्रदान करती है, उसे कमजोर नहीं बनाती, बल्कि लड़ने के लिए भीतर से तैयार करती है।

हमारे आज के समय की निर्मम सच्चाई यह है कि एक ओर जहां आदमी रोज-ब-रोज, बढ़ती हुई मंहगाई, बेकारी, बदइन्तजामी और बीमारी के हालात से संत्रस्त है, वहीं दूसरी ओर दुनिया में बढ़ते हुए आणविक-युद्ध के खतरों, पूंजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न नकाबपोषों के आतंक और व्यवस्था के दमनचक्र के आगे अपने को बहुत असुरक्षित और असहाय भी महसूस करता है-

तंग आ गया हूं मैं/ हर पल नष्ट हो जाने की/ आशंका से भरी इस दुनिया से/ और भी ढेर तमाम जगह हैं इस ब्रह्माण्ड में/ मैं किसी भी दूसरे ग्रह पर जाकर बस जाऊंगा।

पलायन की यह मनोदशा भी प्रकारान्तर से उसके मन के भीतर की पीड़ा को ही व्यक्त करती है। इस आणविक युग में आदमी किस तरह की आशंकाओं के बीच जी रहा है, उसी की एक झलक प्रस्तुत करती है राजेश की एक और कविता एक बार फिर

पत्नी बैठी होगी थाली परोसकर/ और कौर तोड़ने से पहले/ गिर पड़ेगा ध् न्यूट्रॉन बम!

लेकिन कैसा भी अणुबम या दुनिया की बड़ी-से-बड़ी ताकत जीवन की निरन्तरता, आस्था, मानवीय श्रम की गरिमा और रिश्तों की अन्तरंगता को नहीं समाप्त कर सकती,

सारे हत्यारों की इच्छा के बावजूद/ नहीं लग पायेगी फफूंद
शताब्दियों पहले बड़ी मेहनत से/ जुटाये गये अनाज पर।

दरअसल इस अनाज को जुटाना ही आदमी के सामने सबसे बड़ी चुनौती रही है। इसी अनाज से बनने वाली रोटी हिरन होने के स्वप्न में डूबी/जंगल में कुलांच भर रही थी... तभी किसी पेड़ के पीछे से दबे पांव/आया एक चीता/ और उसने दबोच लिया हिरन को... आदमी फिर हाथ मलता रह गया। उसे न भरपेट खाने को अनाज नसीब हो पाता है, न बीमार पड़ने पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनार। हर बार बजट पर बहस होती है और चीजें/ यात्राएं और महंगी हो जाती हैं। सारी मार-मशक्कत के बाद भी हालत वही है और आगे भी वैसी ही दिखाई देती है-

दिन भर की कमाई करके लौटेगा सूरज/ आसमान में चिथड़े से सिला झोला उठाये/ भार हर दिन और हल्का हो जाएगा

राजेश जोशी ने अपनी कविताओं के माध्यम से इस महाजनी व्यवस्था की जन-विरोधी नीतियों और कारगुजारियों पर जहां सीधा प्रहार किया है, वहीं कला-संस्कृति से सम्बन्धित शासकीय संस्थाओं के माध्यम से कला, साहित्य और संस्कृति के नाम पर पनप रहे आडम्बर, छद्म और साम्राज्यवादी साजिश को भी अपने पैने व्यंग्य से बेनकाब किया है। कलाओं का अंतर-संबंध और महान कला मूल्य जैसी कविताओं में इसी छद्म को उद्घाटित किया गया है-

धड़ल्ले से चल रहा है अनुवाद/और चारों ओर चक्कर काट रही है/फैलोशिप फोर्ड फाउन्डेशन की

ऐसे में शब्द रचनाकार की क्या गति हो सकती है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। कलाओं का अन्तर-संबंध स्पष्ट करते हुए संस्कृति की छुक-छुक गाड़ी में दूसरे दर्जे की बोगी में बिठाये जाने वाले शब्द के प्रति शासकीय दृष्टिकोण के दो-मुंहेपन पर तीखा व्यंग्य करते हुए कवि ने कहा है,

दोहरायेगा बार-बार/ शासकीय संस्कृति का प्रवक्ता/ शब्द का/सम्मान करती है सरकार

साहित्य और कला के शासकीय नियामक इस काव्योक्ति में अपनी नीयत और कारगुजारियों का प्रतिबिम्ब देख सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस शासकीय संस्कृति के ये प्रवक्ता वास्तव में कहां से नाभिनालबद्ध हैं और इनकी दृष्टि में कला के महान मूल्य क्या हो सकते हैं। राजेश जोशी ने अपने आस-पास पनप रही इस दोगली संस्कृति पर बहुत प्रभावशाली ढंग से प्रहार किया है।

जीवन की विषमताओं और कटु अनुभवों के बावजूद मनुष्य अपनी प्रकृति से स्वप्नजीवी होता है। बदतर जीवन-स्थितियों में जीते हुए भी वह हमेशा बेहतर ज़िन्दगी के सपनों से अपने को जोड़े रखता है। सपनों के बगैर सुखी और सार्थक जीवन की कल्पना असम्भव है। कवि को तो ये सपने और भी प्रिय होते हैं। उसके सपनों का संसार बहुत व्यापक और वैविध्यमय होता है, जिसमें प्रत्येक मनुष्य को अपने सपनों का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। राजेश जोशी के काव्य-संसार में न केवल उसके मानवीय पात्र सपने देखते हैं, बल्कि वहां तो सूरज, चांद, सितारे या समंदर ही नहीं, रोटी जैसी दैनिक ज़रूरत की मामूली चीज भी हिरन होने के स्वप्न में डूबी दिखाई देती है-

सूरज ने स्वप्न देखा/कि वह चांद है चांद ने स्वप्न देखा कि वह/ करोड़ों तारे है रोटी/ हिरन होने के स्वप्न में डूबी/जंगल में कुलांच भर रही थी

इसी तरह के स्वप्न-प्रसंग को लेकर कवि की एक और रोचक और मार्मिक कविता है 'उसके स्वप्न में जाने का यात्रा-वृतान्त।' प्रेम और यथार्थ की भावभूमि पर रचित एक रोचक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वप्न-कथा के रूप में इस पूरी कविता की संवेदना पाठक को उसके सामान्य धरातल से ऊपर उठा देती है, जहां काव्य-नायक और उसकी प्रिय पात्र की पसंद की वस्तुएं जैसे- फूल, पौधे, सूरज, चांद, सितारे और समुद्र पाठक की संवेदना में इतनी सहजता से घुलमिल जाते हैं, मानो उसके रोजमर्रा के जीवन-व्यवहार में काम आने वाली सामान्य वस्तुएं हों। चेतना और संवेदना का यह विस्तार ही हमें मानवीय गरिमा से संयुक्त करता है, हमें जीवन के व्यापक संदर्भों से जोड़ता है, लेकिन जैसे ही यह स्वप्न टूटता है, काव्य-नायक और पाठक की अनुभूति को एक झटका-सा लगता है और जीवन की निर्मम सच्चाई उनके सामने होती है

लौटा तो बस धूप का एक टुकड़ा था/जो घड़ी की तरह धमका रहा था
झटपट तैयार हो जाओ/वरना ऑफिस का वक़्त बजा दूंगा।

वक़्त पर ऑफिस तो जाएंगे, लेकिन सपनों को तिलांजलि देकर नहीं, बल्कि उन्हें भी अपने टिफिन में साथ लेकर जाएंगे, यही संकल्प व्यक्त होता है राजेश जोशी की इन सीधी-सादी कविताओं में।

सीधी-सादी इसीलिए कि इन कविताओं में कोई ऊपरी बनावट नहीं है- वही अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के सीधे-सादे प्रसंग और वही उन प्रसंगों को बयान करने वाली बनावरहित भाषा की अपनी भंगिमा। यह भंगिमा निश्चय ही पाठक या श्रोता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है और यही खूबी इन कविताओं को अपना निजी व्यक्तित्व भी प्रदान करती है, जो किसी भी अच्छी कविता के लिए ज़रूरी है, क्योंकि उसे वर्तमान के साथ ही देश और काल में बहुत दूर तक जाना होता है और वहां पहुंच कर अपना अपेक्षित असर पैदा करना होता है। राजेश जोशी इस दृष्टि से पर्याप्त सजग और संवेदनशील कवि हैं, उनकी कविताएं जीवन को लेकर इस नये नज़रिये के प्रति आश्वस्त करती है।

• • •

नरेन्द्र जैन की कविताओं में एक ऐसे व्यक्ति के अनुभव, आवेग और आकांक्षाएं अभिव्यक्त हुई हैं, जो एक लम्बे अरसे से गुलामी, अन्याय, आतंक और अंधेरे की ज़िन्दगी जीने को बाध्य रहा है। उसके चारों ओर निरन्तर ऐसे हालात बने रहे हैं, जिनके बीच कभी वह अपने आत्मनिर्णय और विवेक का सही प्रयोग नहीं कर सका। यह व्यक्ति ऊपर से जितना शान्त और निरुद्वेग दीखता है, भीतर से उतना ही अशान्त और उद्वेलित है। वह अपने भीतर कायर आदमी के चेहरे-दर-चेहरे देखता है, लेकिन उस कायरता के खिलाफ उठ खड़े होने का साहस नहीं बटोर पाता। ज्यों-ज्यों हालात बिगड़ते हैं, उसका आत्मसंघर्ष और तीव्र हो उठता है। वह यह भी देखता है कि कड़ाके की ठंड के बावजूद बौने लोग अपने हाथ रगड़कर जिस्म को गर्म बनाये रखने के प्रयत्न में संलग्न हैं। नंगे जिस्मों के बावजूद लोगों ने बाहर आना-जाना बंद नहीं किया है। जिसके पास विरोध का और कोई तरीका नहीं बचा, उसकी चीखों ने सारे आसमान को जैसे सिर पर उठा रखा है, बदहवास औरतों और बच्चों तक ने इस स्थिति को चुपचाप बर्दाश्त नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर लिया है। फिर उसके पास तो विरोध के कई विकल्प हैं। वह अपनी कमजोरियों से संघर्ष करता है, अपने मनोबल और इरादों को मजबूत बनाता है, ताकि वक़्त आने पर मुखौटों के पीछे छिपी असलियत को बेनकाब कर सके। अपनी कमजोरी और कायरता को पहचान लेना उतनी मामूली बात नहीं है, जितनी ऊपर से दिखायी देती है। दरअसल यहीं से उस आत्मसंघर्ष की शुरूआत होती है, जो उसे व्यापक सामाजिक संघर्षों से जोड़ देता है।

अपनी कविताओं में नरेन्द्र ने व्यवस्था की दमनकारी नीतियों, उनसे उपजे आतंक और उस आतंक के खोखलेपन को बड़े प्रभावशाली ढंग से उभारा है। इस क्रम की कविताओं की एक बड़ी खूबी यह भी है कि कवि ने उस माहौल में भी अन्याय के विरुद्ध जनता के संघर्ष को कहीं अनदेखा नहीं किया है। लातिन अमेरिकी कवि नाथान हाइटिंग की गुलामों की स्थिति के बारे में रची गयी कविताओं को पढ़कर जो अपनी स्थिति के बारे में समानान्तर एहसास होता है, वह उसमें एक कचोट पैदा करती है और उसकी संवेदना जैसे अनायास एक सार्वदेशिक संदर्भ से जुड़कर और व्यापक अर्थ ग्रहण कर लेती है।

नरेन्द्र जैन की कविताओं का नायक मध्यवर्गीय मानसिकता का डरा हुआ व्यक्ति है, जो निरन्तर व्यवस्था के हाथों दोहरी मार खाता है। वह उस व्यवस्था के कायदों का पालन भी करता है और उन्हें सिरे से नापसंद भी करता है। वह दबी जुबान से उसका विरोध भी करता है, लेकिन अभी अपने विरोध को कोई ठोस आकार नहीं दे पाया है और न संगठन की क्रांतिकारी शक्तियों से ही अपने को जोड़ पाया है। अकेलेपन की इस अवस्था और मानसिकता के विरुद्ध नरेन्द्र जैन ने अपनी कई कविताओं में जिस व्यंग्य और अन्योक्ति के मुहावरे को काम में लिया है, वह वाकई गौरतलब है। अकेला होने के कारण ही व्यक्ति इतना आतंकित और अपने आप को असुरक्षित महसूस करता है- वह यह भी जानता है कि जो अकेला है वह अच्छा या बुरा कुछ भी हो सकता है

वह डूबते हुए को बचा सकता है/ गो कि हत्यारा होने की/ सारी संभावनाएं मौजूद है उसमें।

एक तरफअपनी कमजोरियों के प्रति उसका यह आलोचनात्क रूख है। वहीं उत्पीड़न की शिकार जनता की सहन.शक्ति और प्रतिकार की क्षमता पर भी उसे पूरा भरोसा है, जो प्रकारान्तर से इस बात के लिए आश्वस्त करता है कि उसकी वास्तविक सहानुभूति उसी व्यापक जन.समुदाय के साथ है, जो शोषित है। उसके पत्थर या जड़ हो जाने के बावजूद उसका यही विश्वास है कि- 'अभी शायद/इसमें/हलचल हो एक आदमी प्रकट हो इसमें से/ क्योंकि/इस समय/ हर पत्थर/एक शुरूआत है।'

ज्यों-ज्यों अंधेरे के खिलाफ संघर्ष तीव्र होने लगता है, उस छंटते हुए अंधेरे में से आकृतियां और स्पष्ट होने लगती है- नेतृत्वकारी शक्तियां अपनी आदमकद शक्ल में दिखायी देने लगती हैं, मुश्किलें आसान होती नजर आती हैं और हम आश्वस्त होकर कह उठते हैं- अब यहां सब कुछ बहुत साफ है, हालांकि यह अवस्था कविता में जितनी आसानी से उभरती हुई दिखायी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
देती है, हमारी आज की वास्तविकता और परिवर्तन की अंत:प्रक्रिया में वह उतनी ही जटिल और संश्लिष्ट है।

नरेन्द्र जैन की काव्य-संवेदना का एक महत्वपूर्ण पक्ष है- भविष्य के प्रति उनका स्वस्थ और वैज्ञानिक दृष्टिकोण! उन्हें अपने बाद की आने वाली पीढ़ियों और उन पीढ़ियों के प्रतीक बच्चों से इतना अंतरंग लगाव है कि वे उनके मनोविज्ञान में रम जाते हैं, उनके खिलौनों से खुद खेलने लगते हैं। बच्चों के बीच पहुंचते-पहुंचते उनका काव्यनायक भी इतना निर्भय और जीवंत हो उठता है कि उसे मौत का भी कोई भय नहीं रहता

कुछ दिनों बाद/वाकई बरसात होगी/और मैं मौत से कहूंगा/मेरे पास वक़्त नहीं है।

इसी क्रम में पृथ्वी और सूर्य, तीता कहां है, गाना-बजाना, कोशिश, छोटे-छोटे हाथ आदि कितनी ही कविताएं हैं, जिनमें आने वाली पीढ़ी से यह उम्मीद की गयी है कि वह इस दुनिया को जरूर बदलेगी, इसे अच्छा बनायेगी और उन सपनों को जीवन में साकार करेगी, जिन्हें हमारी वर्तमान पीढ़ी और हमारे पुरखे अथक प्रयत्नों के बावजूद पूरा नहीं कर पाये। कवि की सारी आस्था बच्चों की आकांक्षाओं और उनके अबोध प्रयत्नों में जैसे एक नया अर्थ ढूंढती है,

उसे यहां बुलाओ/वह बहुत कुछ बता सकता है मुझे/उसकी नींद और सपनों के बारे में /मैं एक किताब लिखना चाहता हूं/उसकी भूख और आकांक्षा के लिए/मैं तेजी से जीना चाहता हूं।

विश्वास और उम्मीद की इस नयी भाव-भूमि पर विचार करते हुए इस काव्यनायक में अपने प्रयत्नों और क्षमताओं के प्रति भी एक नया आत्मविश्वास पैदा होता है। उसका दावा है कि वह जहां-जहां भी रहेगा वहां आसमान ज़रूर होगा, बल्कि आसमान ही क्या

मैं कल वह खिड़की/ खोलूंगा/जहां से दुनियां दिखायी देगी।

खिड़की के प्रतीक को लेकर नरेन्द्र जैन ने जो कविताएं लिखी हैं, वे अपनी सामयिक विषय-वस्तु और सादे रचनाशिल्प में सहज जी पाठक का ध्यान आकर्षित करती हैं।

आज चारों ओर जिस तरह का माहौल है, उसमें लिखे हुए शब्द और भाषा का निरन्तर अवमूल्यन हो रहा है। पूंजीवादी जनतंत्र में जिस तरह तमाम बुर्जुआ राजनीतिक दल जनता के दुख-दर्द में शरीक होने का स्वांग रचते हैं और जिस तरह उसकी हालत से सहानुभूति दर्शाते हैं या अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए जिस तरह की अमूर्त भाषा और शब्दों का आडंबर रचते हैं, उसमें यह तय कर पाना वाकई कठिन है कि जो लोग आज स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय, शोषण से मुक्ति, साम्प्रदायिक सद्भाव आदि शब्दों की गुहार लगाते नहीं थकते, क्या वे लोग उन शब्दों के सही अर्थ के प्रति लेश-मात्र भी संजीदा या चिन्तित हैं इसलिए कवि का यह कहना सही लगता है कि

लिखा हुआ है शब्द का चेहरा है/ कहीं वह मुखौटा कहीं आईना/अपने में लिखे हुए को चमकाता

जो शब्द मनुष्य के अथक परिश्रम और जीवन-संघर्ष के बीच अपना आकार ग्रहण

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करता है, वही सही और सच्चे मायने में निहित अर्थ की गरिमा को धारण करने की सामर्थ्य सुरक्षित रख पाता है

शब्दों को यहां खून तक पहुंचना है/ पसीने से तरबतर/ पानी में डूबते उतराते। यही कारण है कि नरेन्द्र जैन अपनी कविताओं में भाषा और शब्द की अर्थ गरिमा के प्रति इतने चिंतित और चौकस हैं और यह चौकसी उनकी कविता को नयी अर्थवत्ता प्रदान करती है।

नरेन्द्र जैन जहां से कविता की शुरूआत करते हैं, वहां वे बहुत-सी बातों को मानकर चलते हैं, वे यह भी मानकर चलते हैं कि उनके पाठक को अपने परिवेश और हालात के बारे में कोई विवरण देना अनावश्यक है। कविता में मात्र थोड़े से संकेतों और प्रतीकों से उस एहसास को गहराया जा सकता है, जहां से बदलाव के इरादों को ठोस आकार दिया जा सके- चाहे पृथ्वी पर सूर्य को चमकता हुआ देखने की आकांक्षा हो, चाहे बच्चे से यह जान लेने की इच्छा कि कैसी लगती है यह दुनिया उसे अधिकांश कविताएं ऐसे ही छोटे-छोटे वक्तव्यों के इर्द-गिर्द घूमती हैं और पदों की आवृत्ति में वह वक्तव्य और गहरे अर्थ संदर्भों से जुडते चले जाते हैं। खिड़की पार कविता का ये पद देखिये-

1 *मैं/कोई ऐसी खिड़की/नहीं खोलूंगा*
जिसके पास मुझे आसमान/न दिखायी दे।

2 *मैं/कल वह खिड़की/खोलूंगा जहां से/दुनिया दिखाई देगी।*

यहां खिड़की, आसमान और दुनिया की व्याख्या का काम पाठक की समझदारी और कल्पना-शक्ति पर छोड़ दिया है। ऐसा कई कविताओं में हुआ है और इससे पाठक को निश्चय ही सही अर्थ-संगति बिठाने में कठिनाई हो सकती है। एक यथार्थवादी रचनाकार से यह अपेक्षा अवश्य रहती है कि वह अपनी रचनाओं में इस तरह की गुंजाइश न छोड़े।

हमारे समय के सबसे ज्वलंत सवालों, राष्ट्रीय हित के अहम् मसलों, सामाजिक सरोकारों और मानवीय हितों की हिमायत पर प्रभावशाली कविताएं लिखने वाले कवियों में नरेन्द्र जैन और राजेश जोशी की कविताएं अपने बयान की साफगोई और शैली की सहजता के कारण मध्यभारत की कविता का एक आत्मीय चेहरा उकेरती हैं। अपने कथ्य और कथनी के तरीके में अगर कहीं किसी से मेल खाती भी हैं तो इसी अर्थ में कि इस रंगत के अधिकांश कवियों में एक समान धरातल विकसित हुआ है, जो कि स्वाभाविक है और ज़रूरी भी। नरेन्द्र जैन और राजेश जोशी की कविताएं दूर तक उस ज़रूरत को पूरा करती हैं और इसी अर्थ में जहां वे हमारे अपने समय के सजग और संवेदनशील कवि के रूप में जाने जाते हैं, वहीं उन्हें प्रतिनिधि हिन्दी कवि के रूप में देखा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

71247, मध्यम मार्ग,
मानसरोवर, जयपुर- 302020
मोबाइल नं. 09829103455

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अल्पविचारित कवि और साहित्यिक सुयोग्यता

सुधीर रंजन सिंह

साहित्यिक सुयोग्यता सामान्य रूप से कृति के प्रति पाठकों के परम्परागत रुख से तय होती रही है। कविता की रूढ़ियाँ, प्रतीकों के तर्क, बिम्ब-सुघड़ता और काव्यात्मक प्रभावशीलता के लिए किए गए सुनिर्धारित प्रयत्नों को आधार बनाकर अच्छे-बुरे का निर्णय लेना एक आम तरीका है। यह काव्यशास्त्रीय निर्धारण है, और इसका अपना महत्त्व है। लेकिन काव्य-रचना में और बातें भी महत्त्व रखती हैं। वस्तुतः कविता अधिक जटिल और समस्यापूर्ण मामला है। इसलिए कई कवि काव्योचित प्रणाली के प्रति श्रृंखलता और अनाड़ीपन के बावजूद सुयोग्य माने जा सकते हैं। उनकी कविताएँ काव्यशास्त्रीय निर्धारण के समक्ष समस्या के रूप में उपस्थित होती हैं। वह अपने समय की पाठकीय 'माँग' को भले पूरा नहीं करतीं, लेकिन उस ऐतिहासिक समस्या से जुड़कर, जिसमें रचनाशीलता ही संकट में होती है, एक ज़रूरी आयाम पैदा करती हैं।

''कला में जो मनमानापन और अपरिपक्वता दिखाई पड़ती है'', जैसा कि वाल्टर बेंजामिन ने लिखा है, ''खासकर तथाकथित पतनशील युग में, वस्तुतः वह कला के केन्द्र की ही समृद्ध ऐतिहासिक ऊर्जा से उद्भूत होती है।'' (इल्युमिनेशंस, पृ.-239)

सातवें दशक में कविता में अनोखी कार्रवाइयाँ देखने को मिलीं। अकविता और नक्सल कविता जैसी दो मुख्य कोटियाँ बन गई थीं। अराजक और आक्रामक! कविता के केन्द्र पर आघात से नई बात पैदा की गई। आज उसमें आकर्षण नहीं बचा है। लेकिन इतने सालों बाद सोचने की ज़रूरत है कि केवल इन्हीं दो कोटियों में बँटे राजकमल चौधरी, धूमिल, सौमित्र मोहन, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, आलोकधन्वा, जैसे कवि ही, जिन पर पर्याप्त विचार हुआ, इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थे या उस समय के दूसरे कवि भी। बाद में चन्द्रकांत देवताले, रमेशचन्द्र शाह, विनोदकुमार शुक्ल, लीलाधर जगूड़ी और विष्णु खरे को पर्याप्त ख्याति मिली। इनकी कविता में सातवें दशक वाली बात बिल्कुल अनपुस्थित नहीं, लेकिन कम थी। काव्योचित आग्रह इनमें पर्याप्त था। उसी दौर के कवि जितेन्द्र कुमार, आग्नेय और विनय दुबे हैं। विनय दुबे बाकी से सात-आठ साल छोटे हैं। लेकिन समय उनका वही है। ये कवि काव्यात्मक प्रभावशीलता के प्रति कम सचेष्ट हैं। इनकी मुद्रा किंचित गै़रजवाबदेह है, किन्तु उसमें एक विशेष 'ऐतिहासिक ऊर्जा' है। ये अल्पविचारित कवि हैं। इन पर सोचने का अवकाश तैयार किया जाना चाहिए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सबसे पहले जितेन्द्र कुमार, जो 1958 से कविता लिख रहे थे। 'पहचान' शृंखला में उनकी एक कविता (1958) है:

मेरे हृदय में ताड़ का एक वृक्ष था/ और वह ताड़ का वृक्ष था/ लम्बा और शान्त,/ और /उसकी पत्तियाँ नोकीली थीं/चाकू के फलों की तरह!/ जब वे चाकूल पत्तियाँ/ अपने /नोकीले फलों के साथ मेरे करीब आईं -उन्होंने मुझे फूलों सा छुआ -/ और मैंने खुद को माँ के बगल में/ रोते/हुए सुना!

(पहचानः एक/2, पृ.-2)

आदमी के भीतर चाकूल पत्तियाँ भरी हुई हैं। वे भीतर-भीतर उसे जितना काटती हैं, प्रकट होकर जीवन प्रदान करती हैं। जीवन, जिसमें त्रास से मुक्ति नहीं हैं। मॉरिस ब्लैंचोट का एक वाक्य है: "खतरा यह है कि अनर्थ (डिजास्टर) देह के भीतर अर्थ को घेरे रहता है।"

(दी राइटिंग ऑफ़डिजास्टर, पृ.-41)

अनर्थ जीतेन्द्र कुमार की देह का स्थायी भाव है, जो अपने अर्थ में त्रासमय लेकिन जीवनदायी है। जितेन्द्र कुमार की इस कविता के आसपास की ही आग्नेय की एक कविता है: 'विष-पुत्र'।

प्रकाश के वृत्त में/ एक फूली डाल पकड़े/ हरे पत्तों वाले,/ नेत्रों सरीखे देखते हुए/ दो हाथ तुम्हारे या मेरी पिपासित/ ज़िन्दगी के।/ जिन्हें जब ही छूता हूँ/ तो सामने का पूरा का पूरा हरा पेड़/ सूख जाता है। (नई कविता, खण्ड-3, पृ.-238)

अनर्थ! हरे पत्ते वाले डालों जैसे हाथ को छूने से पूरा का पूरा पेड़ सूख जाता है (यह प्रेम का प्रतिपाठ है)। अनर्थ!- आदम ने जो किया था उस अर्थ में। आदमी अपनी मूल-वृत्ति को ही बर्दाश्त नहीं कर पा रहा है। कामोत्तेजना उसकी ज़िन्दगी के अर्थ को छोटा कर रही है।

अनुपस्थित अर्थ को निगाह में रखने की ज़रूरत है। यह अनर्थ है कि आदमी 'विष-पुत्र' हो गया है, उसे अमृत-पुत्र होना था। आग्नेय की कविता अर्थ-विडम्बना में निवास करती है।

अभिव्यक्ति ही विडम्बना है। जितेन्द्र कुमार की कविता इसका उदाहरण है। नहीं कहने की इच्छा के भीतर कहना! एकान्त में धकियाए हुए व्यक्ति के लिए एकान्त ही सुख और गर्व का विषय बन जाए, उस विडम्बना से उद्भूत कविता:

मेरा एकान्त मुझे कसता है/ और एक वह केवल मेरा सहचर है / भौतिक वस्तुओं की क्षुद्रता ने/ दिए हैं मुझेः पिता और भाई! /खोखला मेरा गर्व मुझे कसता है/ और एक वह केवल मेरी माँ है। (पहचानः एक/2, पृ.-2)

कोई गम्य वस्तु नहीं, जिसे चाहा जा सके। एक अपना गर्व है, वह भी खोखला है; लेकिन उसे छोड़कर कुछ चाहने योग्य भी नहीं। विडम्बना को ही जब कोई जीवन की अन्तर्वस्तु के रूप में स्वीकार करता है तो उसमें वास्तविकता से भिड़ने की योग्यता बढ़ जाती है।

जितेन्द्र कुमार के यहाँ कोई अनुभव वास्तविकता से सामंजस्य बैठाने का नहीं है। वे वास्तविकता को एक संकट के रूप में देखते हैं। संकटग्रस्त अनुभवों का कवि! प्रायः संकट में लोग सत्य के एक डरपोक साथी हो जाते हैं। सामंजस्य बैठाते हुए स्वयं को माफ़करते रहते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जितेन्द्र एकान्त को चुनते हैं। यह चुनाव भी भिड़ने का एक तरीका हो सकता है:

इतना विकल हूँ/ जितनी पूर आई नदी सी हरहराती हवा/ आम के बगीचे में होती है / इतना दुख है/ कि एक भारी मन सा बीड़ियों का धुँआ/ मुझ पर घना होता आता है... / प्रकाश से डरता हूँ/ और झुकी आती छत का सहारा ले/ रात भर माचिस में जुगनूँ जमा करता हूँ!

(वही, पृ.-4)

पहले विकलता पैदा की गई (यह पागलपन से बचने का एक तरीका है), फिर विकलता को शैशव-स्मृति से जुड़ी क्रियाओं के सहारे वश में करने की कोशिश की गई- 'रात भर माचिस में जुगनूँ जमा करता हूँ।' यह अलगाव से मुक्ति का तरीका है।

कवि का एकान्त आरोपित है। अभाव से पैदा हुआ। उसकी इच्छाओं का हनन हुआ है। इसके बावजूद वह अलगाव का शिकार नहीं हुआ। तो यह विडम्बना को झेलने की शक्ति का ही कमाल है।

मैंने अपनाव को समझा वितृष्णा में/ जैसे साहचर्य मैंने जाना एकान्त में- /मैं भी हूँ पुरुष/मानव आकांक्षाओं के मुझ पर भी हुए हैं/ अनेकों वार/ पर स्त्री-सुख जाना मैंने उसके अभाव में!

(वही, पृ.-7)

कामोत्तेजना की यह एकान्त शान्ति, समाज पर एक अभियोग है। मनुष्य की नैसर्गिक स्वतंत्रता का हनन! भर्तृहरि ने अनुभव किया था- 'आलोलायतलोचना युवतयः स्वप्नेऽपि नालिङ्गिताः' (चंचल बड़ी आँखों वाली सुन्दरियों का सपने में भी आलिंगन नहीं किया)। अभाव की यह पीड़ा पराए कौर की आशा में जीवन बिताने के समान है- 'कालोऽयं परपिम्डलोलुपतया काकैरिव प्रेर्यते।'

काव्य-रचना इस अर्थ में कृत्रिम है कि वह मूलवृत्तिगत इच्छा की क्षतिपूर्ति है। लेकिन कवि अपने हृदय के विदारित टुकड़ों को कविता के रूप में सजाता है तो उससे अधिक करुण चीत्कार कहीं और पैदा नहीं होती:

हृदय के चिथड़े हुए टुकड़ों को/ जब मैंने काव्य सा सँजोया/ मुझे लगा पहिन लिया है मैंने अपना ही हृदय/ आस्तीन पर/ और तब एक रेखा मैंने कविता के आरपार/ खींच दी/ जो एक शहतीर सी मेरे हृदय को चीरती निकल गई। (वही)

जितेन्द्र कुमार ने यहाँ हृदय को आस्तीन पर पहन कर काव्य-कर्म को मनुष्यता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया है। इस कविता की पहली पंक्ति है- 'मैंने काव्य-रचना को सुख का साधन समझा था!' अन्तिम पंक्ति भी यही है, सिर्फ़ इसमें 'फिर भी' जोड़ दिया गया है- 'मैंने फिर भी काव्य-रचना को सुख का साधन समझा था!' कविता और हृदय के बीच समीकरण बैठाने में 'फिर भी' वाली बात बनी रहती है। एक फाँक बनी रहती है। अगर यह न बनी रहे तो कविता शिखर पर पहुँचकर भी संन्यासिनी से अधिक कुछ नहीं रहेगी। कविता उद्वेगों का शमन नहीं, उनका अग्निकुंड है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कविता तोष की वस्तु नहीं, न ही भावनाओं को सुरक्षित रखने की मजबूत पेटी है। वह एक ऐसा अहसास है जिसमें पर्याप्त रूप से कवि की दुर्दशा, उसके जंगलीपन और व्यभिचार का भी आख्यान होता है। दूसरे शब्दों में, कविता, जैसा कि आग्नेय की एक कविता का शीर्षक है, 'अपने ही खिलाफ' आख्यान तैयार करने में मदद करती है। इसी बात में वास्तविकता की प्रामाणिक व्याख्या है। दिलचस्प रूप से आग्नेय की कविता इस प्रकार की व्याख्या उलटे सिरे से करती है:

उसके लिए कविता हाथों की सफाई यानी जादू का करिश्मा है/ वह अपनी ही लाश अपने कन्धों पर लटकाये/ चारदीवारी के अन्दर मर जाने वालों की मौत का मज़ाक उड़ाता है/फिर जब कभी उसके मांस के लम्बे टुकड़े में (पेचिश/से उसकी आतें सड़ चुकी हैं) उत्तेजना थरथराती है/वह लंगूर की तरह अपनी औरत की खाट पर चढ़ जाता है/और उसके जिस्म नोंच-नोंच कर अमरूद की तरह खाता है/वह अपनी कविता का/सही इस्तेमाल करना चाहता है/लेकिन कविता कर लेने के बाद/वह अपने को सुखी संतुष्ट और तनावहीन पाता है।

(पहचान: 4/पृ.-39-40)

'तनावहीनता' वास्तविकता के प्रति जुझारूपन को नष्ट करती है। कविता भी इसी मार्ग से नष्ट होती है। कवि दूसरों के व्यभिचार की निन्दा करे और अपने को भाव-सत्ता के उच्च आसन पर बैठाये रहे- यह वही बात है कि कोई अवसरवादी दूसरों को अवसर पाता देखकर गालियों की बौछार करे। कविता को नैतिक भूमि पर न रखकर भी नैतिक प्रश्नों से टकराया जा सकता है। एक तथाकथित पतनशील युग में अपने को पतन की दशा से मुक्त साबित करके सिर्फ़ उपदेशक हुआ जा सकता है। पतन का साथी होकर अनुभव करना कि धोखा हुआ है, स्वयं में उसके खिलाफएक वाजिब कार्रवाई है।

आग्नेय की पीढ़ी यौनाक्रान्त रही। अकविता पहचानी गई थी इसी बात से । आग्नेय ने यौनाक्रान्तता को आत्मालोचना के रूप में अपनाते हुए उससे मुक्ति का मार्ग निकाला। अपनी पीढ़ी से, यह आवश्यक भी था, वैचारिक सहमति बनी रही, ''कविता हमारे लिए भावनाओं का मायाजाल नहीं है।'' (राजकमल चौधरी, बर्फ़और सफेद कब्र पर एक फूल, पृ.-117)

इस तरह इस पीढ़ी और आग्नेय की कविता वही नहीं है जो छायावाद से लेकर 'नई कविता' तक की कविता रही है।

वह जीवन भर/ मनुष्य को/ पत्तों, फूलों और फलों से लदा हरा वृक्ष/ समझता रहा/वह जीवन भर/ समझता रहा/ ग्तितलियों, मधुमक्खियों और/करमकल्ले/सब सुरक्षित हैं/सुरचित कविता में,/जबकि मनुष्य खड़ा है/अपने दोनों हाथ ऊपर उठाए/उसे ही कल/वधिक तक पहुँचाया जाएगा।

(मेरे बाद मेरा घर, पृ.-41)

'सुरचित कविता' से अलग होना एक अवाँगार्द कला है। लेकिन आग्नेय तक आकर, यह कहे जाने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, अवाँगार्द कला अपना आकर्षण कम कर चुकी है। उसमें थोड़ी फार्मूलाबद्धता आ गई है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जितेन्द्र कुमार तीव्रतम अनुभूति के कवि हैं। भीतरी तनाव से त्रस्त, वास्तविकता पर प्रहार करती हुई एक चेतना, जिसमें मृत्यु सर्वथा उपयुक्त विषय के रूप में उपस्थित होती है। दूसरे शब्दों में, जब मृत्यु दिखाई पड़ती है तभी चेतना की गति तीव्र होती है। वास्तविक ज़िन्दगी की निष्चेष्टता का बड़ा उत्तर है मृत्यु!

जीवन की कगार पर/ मैं मरूँगा/सूखे/बिलबिलाते हुए/पत्ते सा /आकाश लटकी रही/चिड़िया सा/जो पंख समेटे/सीधी/धार की गहराई पर गिरती है /मैं मरूँगा/जब जीवन को अर्थ देना/ ज़रूरी हो जायेगा।

(ऐसे भी तो संभव है मृत्यु, पृ.-25)

नहीं कहने की इच्छा के भीतर कहना- जैसा कि हमने जितेन्द्र कुमार के लिए पीछे कहा- मृत्यु के सम्बन्ध में उनकी कविता में वही बात नहीं है। इस विषय पर वे कहने की शुद्ध इच्छा के कवि हो जाते हैं। साक्षात्कार एक ज़रूरी विषय है। कविता होती ही है अद्वितीय विषय के साक्षात्कार के लिए- मनोव्यथा के भीतर अराजक और अभिमानी होने के लिए; प्रेम की सुपरिचित परिभाषाओं को लाँघ जाने के लिए; और, स्वेच्छित मृत्यु के साक्षात्कार के लिए। जितेन्द्र कुमार की कविताएँ इसी धारणा से लिखी गई हैं। उनकी कविता में प्रेम, व्यथा और मृत्यु की एक संश्लिष्ट चेतना है।

वक्त की पेचीदगियों में/लोग/मेरी बाट जोह रहे होंगे/रफ्ता-रफ्ता/दर्द की दीवारें दीख पड़ेंगी/ बसे मकानों की स्तब्धता/कानों के भीतर सुन पड़ेगी/तब बिंधने को मजबूर मेरा चेहरा/अपनी हथेलियों में भरकर वह कहेगी/आओ/मैं कब से तुम्हारी बाट में/खड़ी हूँ/मृत्यु का द्वार/प्रेम के नज़दीक ही तो/खुलता है

(वही, पृ.-22)

रोमांस-मुक्त प्रेम, विषाद-मुक्त मृत्यु! न मुठभेड़, न उत्सर्ग! जीवन-द्रव का अंग जैसे प्रेम, वैसे ही मृत्यु! मृत्यु-अनुराग की कविता! यह हमें सोच में डाल देती है। पुनः हमें ब्लैंचोट का एक वाक्य याद आ रहा है- ''लेखक, उसकी जीवनी: वह मरा, जीवित हुआ और मरा।''

(दी राइटिंग ऑफ़डिजास्टर, पृ.-36)

काव्य-अनुभव की गहनता मृत्यु-अनुभव के सदृश है। जिसका अर्थ 'समाप्ति' है, वही सप्राण उपस्थित (लाइव्ड) हो- इस बात में जीवन और कविता, दोनों की अद्वितीयता है।

अपनी मृत्यु के बारे में सोचना यानी मृत्यु का साक्षात्कार जितेन्द्र की कविता की जान है। यह साक्षात्कार 'आत्मश्लाघा' है- मृत्यु अक्षरशः मृत्यु नहीं, वह नार्सिसिस्टिक चेतना है।

नार्सिसिस्टिक चेतना बिल्कुल ख्याली नहीं होती। दुनिया की बातों को अपने अनुभव में उतार नहीं पाने की बेचैनी से पैदा होती है। जितेन्द्र कुमार सामाजिक-राजनीतिक बोध की दृष्टि से कुंठित और असफल रहे। व्यभिचार-चेतना उनपर सवार रही। वीभत्स रुचियों ने बड़ा दायरा बना लिया। क्षरण और पराजय के लिए अपने को विवश पाया। ऐसे में उनके लिए सृजना का बड़ा और निर्दोष विषय मृत्यु ही हो सकती थी।

कोई कवि, लम्पटपन के बावजूद, मृत्यु को निमंत्रित करती हुई छवि गढ़ने में कामयाब रहे, यह कम श्लाघ्य नहीं है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आग्नेय मूलतः प्रेम को निमंत्रित करने के कवि हैं। प्रेम को निमंत्रित करने के ही, प्रेम पाने के नहीं। 'आदमी का अकेलापन' (आग्नेय की एक कविता, पहचान/4, पृ.-2)

और उसकी यौनाक्रान्तता लम्बे समय तक आग्नेय का पीछा करता रही है। 'पहचान' श्रृंखला से लेकर 'सिरहाने मीर के' तक। शुरू की कविताओं में जितेन्द्र कुमार और अकविता के समान 'वीभत्स' भी है:

उदार प्रेम, तटस्थ प्रेम की व्याख्या से रचा मेरा जीवन/काम-युद्ध की ज्वाला में भस्म हो गया है।/और तभी मैं अपनी कविताओं के मुख से/प्रेम की काल्पनिक स्त्री के स्तनों को/काटता/पृथ्वी को वेश्या, वेश्या उच्चारित करता हूँ। (पहचानः 4/पृ.-13)

अभाव से पैदा हुआ पागलपन! यह कविता के लिए जायज स्थिति नहीं है। लेकिन अभाव के भीतर कोई बड़ा काम कर दिखाने की प्रेरणा छुपी होती है। यह काम जितेन्द्र कुमार मृत्यु का साक्षात्कार करके करते हैं, और आग्नेय कुछ अनूठी प्रेम-पंक्तियाँ रच कर।

हृदय का एक आकाश होता।/तुम्हारा चन्द्रमुख स्मरण आने पर/मैं उसमें उड़ते पक्षियों की संख्या/गिनता। (पहचान, 4/पृ.-8)

पेड़ों की डालों से हरी चिड़ियों का/यकायक उड़ते जाना/तुम्हारी अनुपस्थिति का रोमांचकारी अनुभव/आकाश के बेहद नीलेपन का/क्रमशः उतरते जाना/तुम्हारे नेत्रों का प्रगाढ़ रंग/कठोर प्रेम की प्रतीक्षा जलधाराओं का/लयात्मक बहते जाना/तुम्हारे हाथों का संगीतमय स्पर्श/अग्नि-दृश्यालेखों में मेरे अस्तित्व का/सम्पूर्ण पिघलते जाना/तुम्हारे शरीर का मनोहर उत्सव

(वही, पृ.-20-21)

प्रेम आए, दुःख विदा ले जल्दी से जल्दी। यह न्यूनतम मानवीय माँग है और कविता की ज़रूरी शर्त। जो भी इसकी विकलता दिखाता है, उसकी कविता के साथ न्याय होना चाहिए। भले लोगों की भली-भली एकरस ज़िन्दगी जीने वालों की इस दुनिया में प्रेम की एकाकी अनुभूति भी कम सच्ची और हृदयग्राही नहीं है। इसी से चीज़ों में गरमाहट पैदा होती है। प्रतिरोध का साहस पैदा होता है। न्याय के विचार पैदा होते हैं। इस दृष्टि से आग्नेय की 'थका प्रेम' कविता उल्लेखनीय है।

क्या कभी ऐसा समय आएगा/जब लोग स्वयं अपने को/नियुक्त करेंगे न्यायाधीश/दण्डित करेंगे अपने को/पड़े रहेंगे एकाकी परित्यक्त/सीलन भरे अँधेरे तहखानों में/भोगते रहेंगे असीम यातना/जीवन के अन्त तक/देखते रहेंगे एक ही स्वप्न बार-बार/जिसमें आता रहेगा याद/देर से आता हुआ थका प्रेम/और कोई पुराना दुःख/जो भी नहीं अभी तक गया होगा

(सिरहाने मीर के, पृ.-26)

आग्नेय की कविता में, हम पीछे कह चुके हैं, अनुपस्थित अर्थ को निगाह में रखने की ज़रूरत है। हाल की उनकी कविताओं पर हमारा ध्यान गया तो इस चीज़ की खास ज़रूरत महसूस हुई। एक कविता है 'आत्महत्या का पक्ष'। इसकी हम थोड़ा विस्तार से व्याख्या करना चाहेंगे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अब ऐसा कुछ नहीं बचा जीवन में/सब कुछ बीत चुका है जीवन में/ऐसा कुछ नहीं होने वाला है जीवन में/हो चुका नहीं पहले जीवन में (पहल: 85, पृ.-197)

ये निराशा से पैदा हुई पंक्तियाँ हैं। कुछ नहीं बचा, सब कुछ बीत चुका, आगे भी वैसा कुछ नहीं होना जो पहले नहीं हुआ। यह भी सच है कि यह निराशा पूरी सचाई के साथ प्रकट हुई है, लेकिन प्रत्येक पंक्ति में 'जीवन' की आवृत्ति किसी और ही सच का बयान है। यानी सबके बावजूद और सबसे ऊपर जीवन है। जीवन से गहरे लगाव के कारण ही निराशा पैदा हुई है। वास्तव में यह जीवन के प्रति दृढ़ आकर्षण की कविता है।

आगे की पंक्तियाँ हैं:

ऊब चुका हूँ प्रार्थनाओं, आह्वानों/चीखों और पुकारों से/जर्जर मन, कमीनी काया और वीरान आत्मा/की कारगुजारियों से/आतंकित हूँ। (वही)

यहाँ अस्वस्थ मनोभावों की अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है, लेकिन विडम्बक रूप से इसमें स्वस्थ दुनिया की कामना है। 'ऊब चुका हूँ' पद से यह बात साफहै। वस्तुतः प्रार्थनाओं, चीख-पुकारों, कमीनी काया और वीरान आत्मा के प्रति यह अवचेतन का रोष है, जो स्वयं कितना निरापद है, उसके बारे में भी सवाल पूछे जाने की भरपूर गुंजाइश है। आगे है:

इश्क के कारोबार में दिवालिया घोषित हो चुका हूँ/उठाईगीर कामनाओं से/टुच्ची महत्त्वाकांक्षाओं से/टुच्ची दुश्मनियों से/टुकड़खोर मित्रताओं से/पिट-पिट कर समतल/हो चुका हूँ। (वही)

'अब ऐसा कुछ नहीं बचा जीवन में' जैसी शुरू की पंक्ति सूत्र है, एफेरिज़्म है; और इस 'पिट-पिट कर समतल हो चुका हूँ' में पहुँच कर उसकी विरोधाभास-युक्त व्याख्या हुई है। कवि की गम्भीर शिकायत है उस दुनिया से जिसने उसे समतल बना दिया है। क्या वास्तव में कवि पिट-पिट कर समतल हो गया है? नहीं। उसकी वक्रता बढ़ी है। इसीलिए इस तरह की पंक्ति आ गई है। 'पिट-पिट कर समतल हो गया हूँ' की जगह लिखा जा सकता था 'पिट-पिटा कर टेढ़ा-मेढ़ा हो गया हूँ।' लेकिन इस आत्मालोचन से कवि बचना चाहता है। बचना चाहता है, बच पाया नहीं है। आगे है:

मैं कनपटी पर तनी/एक भरी रिवाल्वर हूँ/थामे रहोगे मेरा हाथ/कब तक! (वही)

रिवाल्वर एक जटिल और हिंसक संरचना है। रिवाल्वर कवि खुद ही है और खुद पर तना हुआ भी है। खुद पर ही क्यों, उन पर क्यों नहीं जिन्होंने पीट-पीट कर समतल बनाने का काम किया है? शायद उन पर भी।

मैं कनपटी पर तनी/ एक भरी रिवाल्वर हूँ

'कनपटी' से पहले 'अपनी' सार्वनामिक विशेषण का लोप भाषा की एक ऐसी गलती है, जो अवचेतन-समर्थित है। यह आत्महत्या और हत्या का भेद मिटा देती है। जो आत्महत्या का पक्ष है, वही हत्या का; और दोनों सत्ता-संरचना के ही पक्ष हैं, जिससे कवि अलग नहीं है।

वस्तुतः आत्महत्या का पक्ष अथवा आत्महत्या का चिन्तन, पागलपन के समान अथवा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसी के अंग के रूप में, एक दृष्टि-रूप (फार्म आफ़वीज़न) है। अपने को नष्ट करने की यह दृष्टि एक चुनाव है। एक ऐसा चुनाव जिसमें वर्तमान समाज के दाँवपेंच और चतुराई से उबरकर मसीहाई गौरव प्राप्त करने की इच्छा है। लेकिन यह इच्छा भी कम विरोधाभासी नहीं है। आखिरी जो पंक्ति है कविता की- 'थामे रहोगे मेरा हाथ/ कब तक' उसमें जीवन-राग है। निषेधात्मक बात को सकारात्मक ढंग से हम ग्रहण करें तो इसका यही अर्थ निकलता है। निराला की कविता है 'युक्ति':

मोह-पतन में भी तो रहते हैं हम/तम-कण चूम/फिर ऐसी ही क्यों न रहेगी/यौवन-धूम ?

(निराला रचनावली, खण्ड-1, पृ.-202)

आत्महत्या के पक्ष में लिखते हुए आग्नेय 'यौवन-धूम' से विरक्त नहीं हुए हैं। यही इस कविता की खूबसूरती है।

यह सुरचित कविता है। लेकिन इसे भी हम 'फिनिश्ड' कविता नहीं कह सकते। आग्नेय की अवचेतन की फैकल्टी बड़ी है। अवचेतन जितना खुद में उटपटांग होता है, भारी मात्रा में उसकी अभिव्यक्ति वाली कविता कला की दृष्टि से कुछ गड़बड़ करती है। इस गड़बड़ के कारण कई अच्छे कवियों को कलापारखी आलोचक मान्यता नहीं देते, या कम मान्यता देते हैं। इसके कारण उन्हें रिकगिनेशन में दिक्कत आती है। इस दिक्कत के कारण या इसके दबाव से कला-पक्ष पर इस तरह के कवि जितना ज़्यादा ध्यान देने की कोशिश करते हैं, उससे अधिक मात्रा में उनका अवचेतन कविता में विस्तार पाता जाता है। यह बात आग्नेय में है।

कविता में, यह एक हद तक ज़रूरी है, हम अमूर्त विचारों को ढूँढ़ें, कोई दूसरी चीज़ उसमें देखें। कला की दृष्टि से गड़बड़ कविता इस बात का अधिक मौका देती है। इस दृष्टि से हमारी निगाह विनय दुबे की कविता पर जाती है।

यदि कोई प्रश्न करे- विनय दुबे की कविता क्या करती है? मेरा उत्तर होगा- यह वही नहीं करती जो किसी सजग कवि के द्वारा भाषा से करवाने की चेष्टा की जाती है। विनय दुबे की कविता में असजगता ही उसके प्राण हैं। इस तथ्य से रूबरू होने के लिए ज़रूरत है भाषा और संवेदना के 'विचित्र' रिश्ते को समझने की। कल्पना करें कि कोई आदमी अचानक पेट पकड़कर 'आँय-बाँय' बोलने लगे। हम पूछें'- क्या हुआ? वह उत्तर दे- पेट दुख रहा है। लगभग यही काम विनय दुबे की भी कविता करती है। वह मनुष्य के भाव और संवेगों को भाषा से भी पहले पकड़कर उसी रूप में उसकी व्यंजना कर देती है। यानी कोई सफाई देने वाली भाषा के आने से पहले ही कविता तैयार हो जाती है। कविता की यह नैसर्गिकता एक दुर्लभ वस्तु है, जो हमारे समय में सिर्फ़विनय दुबे में ही देखी जा सकती है।

विनय दुबे की व्यंजना-शैली वाग्मिक अधिक है: यह, ऊपर की बात से जोड़कर कहें, असजग वाग्मिक शैली है। बात पहले कह दी; कहने के बाद ही पता चलेगा कि इसमें कहा क्या गया है। एक कविता है- 'खूबसूरत लड़की'।

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खूबसूरत लड़की/शुरू से अखीर तक/कमरों से आँगन तक/आँगन से पेड़ तक/पेड़ से आकाश तक/आकाश से हम तक/हम से लोगों तक/लोगों से औरतों तक/औरतों से कमरों तक/ खूबसूरत होती है

(फिलहाल यह आसपास, पृ.-14)

हम कह सकते हैं कि पेट की पीड़ा को लेकर जैसे आँय-बाँय बोल दिया जाता है, वैसे ही एक खूबसूरत लड़की के बारे में बोल दिया गया है। इस वास्तविकता के बावजूद कविता कुछ और भी कर रही होती है। उसे हम इस बात से समझ ही नहीं सकते जो कविता में कही जा रही है। कविता तो ऊपर से सिर्फ़स्वांग-भर रही है। लेकिन स्वांग का जो वृत्त तैयार हुआ है कि- कहाँ से कहाँ तक खूबसूरत लड़की खूबसूरत होती है, उसमें कवि की इच्छा की थाह ली जानी चाहिए, फिर कविता अपने कवितापन के साथ उभरकर आ जाएगी।

विनय दुबे की कविता में नैसर्गिकता है, इसका अर्थ यह नहीं कि इसमें सीधापन या भोलापन है। जिसे 'वितंडा' (सोफिस्ट्री) कहते हैं, उस शैली का तर्क है विनय दुबे की कविता में- इसमें सत्य लगने वाले गलत तर्कों का जानबूझकर इस्तेमाल किया जाता है। दूसरे शब्दों में, इसमें ऐसे कूट तर्कों का इस्तेमाल होता है कि कोई छुपी हुई बात स्वयं ही अपना बखिया उधेड़ कर प्रकट हो जाए। इस तथ्य का विलक्षण उदाहरण है 'आपने गौरैया देखी है' कविता।

आपने गौरैया देखी है/आप किसी पेड़ के नीचे से गुज़रे हैं/तब ज़रूर/आपके सिर पर/या कंधे पर -/गौरैया ने बीट की होगी ज़रूर/और आपने सहज ही पोंछ भी ली होगी उसे/अगर आपके साथ/नहीं हुआ है/यह/तो न आपने गौरैया देखी है/और न आप किसी पेड़ के नीचे से गुज़रे हैं

(वही, पृ.-7)

कवि की इस कुटिलता के आगे 'अभिजात' निर्वश हो जाता है। सिर्फ़इसमें 'विट' की बात नहीं है; काव्यशास्त्रीय दृष्टि से देखें तो यह विरोधाभास का भी सुन्दर उदाहरण है।

दूसरी अच्छी बात यह है कि विनय दुबे की कविता सामने वाले को कुछ चिढ़ाती हुई नज़र आ सकती है, लेकिन यह पीड़ा पहुँचाने वाली कविता नहीं है। यह कुछ कचोटती-कुरेदती है तो इसके पीछे मंशा केवल इतनी होती है कि हम अपने परिवेश और दूसरों की पीड़ा से अपरिचित न रहें। इस बात के साथ ही, यह 'अभाव' से पैदा होने वाली भाव-विलक्षणता को प्राप्त करने में समर्थ है। जैसे यही भाव कि एक आदमी को इतनी फुर्सत तो मिलनी चाहिए, वह अपनी पत्नी को 'रोटी सेंकते हुए/ धूप नहाते हुए/ बदन सुखाते हुए/ बाल सँवारते हुए' देख सके। उद्धृत पंक्तियाँ विनय दुबे की बहुचर्चित कविता 'प्राचार्य जी महोदय' की हैं। कविता आवेदन की शैली में लिखी गई है- यह छुट्टी के लिए आवेदनपत्र का एक अंश है। इसे पढ़कर स्मरण हो आती है भर्तृहरि की यह कविता:

राजंस्तृष्णाम्बुराशेर्न हि जगति गतः कश्चिदेवावसानं
को वार्थोऽर्थैः प्रभूतैः स्ववपुषि गलिते यौवने सानुरागे।
गच्छामः सद्म यावद्विकस्ति नमनेन्दीवरालो किनीना-
माक्रम्याक्रम्य रूप झटिति न जरया लुप्यते प्रेयसीनाम।।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(हे राजा! तृष्णा-रूपी इस संसार के समुद्र का अन्त नहीं है। फिर, अपनी देह में यौवन को गलाकर बहुत धन पाने का भी क्या मतलब ? इसलिए खिले कमल के समान आँखों वाली हमारी प्रेयसियों का बुढ़ापा रूप हर न ले, उससे पहले हमें अपने घर जल्दी-से पहुँच जाने दो।)

विनय दुबे की कविता में तात्कालिकता के भीतर भी 'शाश्वत' उभर कर आता है। तात्कालिकता के दबाव के भीतर स्वयं कवि यह महसूस करने के लिए विवश है कि कविता तो अन्ततः शाश्वत की रचना है। इसलिए उसे कहना पड़ता है:

पीपल लिखेगा महान कविता/नदी लिखेगी महान कविता/पहाड़ लिखेगा महान कविता

(वही, पृ.-22)

वस्तुतः विनय दुबे के लिए कोई वस्तु अपने उपस्थित रूप में ही महान है। इससे अलग, कोई दिल्ली में है या उप प्रधानमंत्री है, वह महत्त्वपूर्ण नहीं है (देखें, 'आग्रह' और 'ये जो आप हैं तो होंगे आप' कविता)। दूसरी बात, जैसी यह दुनिया है और उसकी वस्तुएँ हैं, वैसे ही हमारे सुख-दुख हैं। इसलिए, कुछ भी हो गया हो अब तक, इसके लिए विनय दुबे का कवि दुखी नहीं है (देखें, 'जो होना था' कविता)। यही है विनय दुबे की मुख्य-चेतना, जिसे 'शाश्वत-बोध' के काव्यशास्त्र से मिलाकर देखा जाना चाहिए।

विनय दुबे की कविता में, अकाव्यात्मक कथन के भीतर भी काव्यात्मकता की सृष्टि होती है। इसे समझने के लिए 'मंसाराम बसोड़' कविता का उदाहरण देना चाहूँगा और एक कहानी का उल्लेख करूँगा, जिसे हमारे कॉलेज के एक शिक्षक कहते थे। कॉलेज में एक कहानी प्रतियोगिता हुई थी। कहानी का विषय था- 'गरीब आदमी'। एक अत्यंत धनी परिवार की लड़की ने कहानी की शुरुआत इस प्रकार की- 'रामू एक गरीब लड़का था। उसके पिता बहुत गरीब थे। उसकी माँ भी गरीब थी। उसके भाई और बहन भी गरीब थे...।' गरीबी क्या होती है, वह लड़की नहीं जानती थी। उसने जैसे कथन रचे थे, उसी से मिलते-जुलते कथन विनय दुबे ने मंसाराम बसोड़ के लिए रचे हैं-

मंसाराम जानता है/वह बसोड़ है/उसके बाप-दादा भी बसोड़ थे... /वह मुश्किल से खा-पी पाता है/उसके बाप-दादा भी मुश्किल से खा-पी पाते थे /वह नीचा सिर किए चलता है/उसके बाप-दादों ने भी सिर नहीं उठाए थे कभी/मंसाराम बीमार है/उसके बाप-दादा भी हमेशा बीमार रहते थे /पर मंसाराम दुखी है अपनी बीमारी पर/वह जानता है/उसके बाप-दादा अपनी बीमारी पर/दुखी नहीं होते थे कभी /मंसाराम को दुख है पर

(वही, पृ.-8)

कथन एक ही प्रकार के हो सकते हैं। फ़र्क़ इसके बावजूद पैदा हो जा सकता है, विषय के मर्म की पहचान से। कॉलेज वाली लड़की की कहानी की भाषा में विनय दुबे ने मर्म की खोज कर ली है; इस तरह विरोधाभास के उदाहरण की एक करुणाधर्मी कविता तैयार हो गई है। एक अकाव्यात्मक कथन के भीतर काव्यात्मकता पैदा हो सकती है, बशर्ते उसे रचने वाला व्यक्ति प्रेम और करुणा से संचालित हो रहा हो।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विनय दुबे उन कवियों में से नहीं हैं जो जीवन से कविता को ऊपर या अलग मानते हैं। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि जीवन से उनकी कविता एकमेक हो गई है। वस्तुत: उनकी कविता जीवन से रिश्ते की तलाश की कविता है। इस तलाश की मुख्य शैली है रोज़नामचा की या निबन्धात्मक टिप्पणी की। वाग्मिता के कारण इसमें समर्थ गद्य का लय पैदा हो गया है।

'हम बुदनी फिर कभी नहीं गए' या 'दैनंदिन' रोज़नामचा शैली की बढ़िया कविताएँ हैं। यह बात दूसरी कविताओं में भी है; लेकिन वाग्मिता की आत्यंतिक्तता के कारण रोज़नामचा वाली चीज़ थोड़ी दबती भी है, और टिप्पणी का स्वर हावी पड़ने लगता है। बहरहाल, ये बातें केवल विधागत प्रकृति तक महत्त्व रखती हैं। इन सबसे ऊपर विनय दुबे की कविता जीवन-राग की कविता है। इस राग का स्रोत है- पृथ्वी के जीव-जन्तुओं और वनस्पतियों से रिश्ते की भावना।

विनय दुबे अपने स्वभाव से अत्यंत वानस्पतिक हैं। नीम सबसे प्रिय पेड़ है उनका- वह लगभग कविता का पर्याय है:

एक कविता है नीम/ सघन फूली-फली/महकती/महक रहा है पूरा आसपास (वही, पृ.-42)

यहीं पर एक सख्त टिप्पणी भी कर लें। कई बार बुद्धि-विद्वेष के कारण विनय दुबे अपनी कविता को नष्ट करते रहे हैं। मसलन, इसी कविता को लें, उपर्युक्त चार पंक्तियों को लिखने के बाद कवि को क्यों यह कहने की ज़रूरत आ पड़ी ?-

घूर रहा है आलोचक/हतप्रभ/फिर/हाथ बढ़ाता है/तोड़ने के लिए दातौन (वही)

क्या वास्तव में आलोचना कोई सृजन के अज्ञान या विरोध से पैदा होती है ?

वस्तुत: जिस असजगता से, जिसकी हमने शुरू में चर्चा की, विनय दुबे की कविता बनती है, उसके प्रति आग्रह अथवा दंभ के कारण ही कई जगह उनकी कविता नष्ट भी हो जाती है।

जीव-जन्तुओं में विनय दुबे के यहाँ चिड़ियाँ हैं, भैंसें हैं, मछलियाँ हैं, वगैरह। एक कविता है 'भैंस'। इस कविता में दो अच्छी बाते हैं। एक तो यह है कि कविता में दुर्लभ बिम्बात्मक वाग्मिता है: 'भैंस/ खूटें से बँधी/ एक काली तराशी गई चट्टान'। यह कविता अपनी पूरी बनावट में स्वभावोक्ति का सुन्दर उदाहरण है। इसी से जुड़ी दूसरी बात है कि इस कविता में भैंस पर मनुष्य या स्वयं कवि के विचार या पूर्वग्रह का आरोप नहीं है।

प्राय: कवि कविता लिखने के साथ-साथ अपनी कविता में कविता की परिभाषा गढ़ने का भी काम करते हैं। यह काम विनय दुबे ने भी किया है और अपनी कविता के स्वभाव के अनुरूप तो किया ही है, उसमें बड़े संदेश की गुंजाइश भी छोड़ी है। एक कविता है 'जहाँ कुछ नहीं हो रहा है'-

वहाँ राजनीति हो रही है/यहाँ भूख हो रही है/वहाँ भीड़ हो रही है/यहाँ सन्नाटा हो रहा है/वहाँ जगमग हो रही है/यहाँ अंधकार हो रहा है/जहाँ कुछ नहीं हो रहा है/वहाँ कविता हो रही है

(वही, पृ.-36)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसमें आगे अपने आप जुड़ जाता है- सभी खाली जगहों पर कविता का कब्जा होना चाहिए। हमारी यह कोशिश दूसरी विसंगतियों को कम करने या खत्म करने में काम आएगी। महत्त्वपूर्ण बात यही है, और यह विनय दुबे की कविता में है।

आग्नेय की कविता के सन्दर्भ में पीछे हमने अनुपस्थित अर्थ की धारणा रखते हुए उनकी 'आत्महत्या का पक्ष' कविता की व्याख्या की है। इस दृष्टि से यहाँ हम विनय दुबे की 'मैं जहाँ रहता हूँ' कविता का अर्थ लगाना चाहते हैं। कविता में कुल पाँच स्टैंजा हैं। एक साथ हम तीन स्टैंजा उद्धृत कर रहे हैं:

मैं जहाँ हूँ और जहाँ रहता हूँ//भुतही गूँजों का घटाटोप है वहाँ/और एक बीहड़ है भाँय-भाँय जंगलों का/एक सघन है अँधेरों के तिलिस्म का/मैं जहाँ हूँ मेरे आसपास धरती पर /नहीं देखा मैंने नदियों का गंभीर/आकाश का विस्तृत और पहाड़ का ऊँचा/कितने-कितने डोलड्रमों के बीच/हिंस्त्रकों से घिरा हुआ हूँ मैं /घिरा हुआ हूँ मैं मंत्रियों के जलसों में/हाँ जी हुजूरों में अफ़सरों के हुकुमों में/और बाई-साहिबों के बुलावों में (भीड़ के भवसागर में, पृ.-39)

बात कुछ 'आत्महत्या का पक्ष' कविता जैसी है। भयावह दुनिया, टुच्चे और हिंसक लोग, लुटेरी महत्त्वाकांक्षा से ग्रस्त चाटुकार- आदि। 'एक सघन है अँधेरों का तिलिस्म का' जिसे पार करके नदियों का गंभीर, आकाश का विस्तृत पहाड़ का ऊँचा देखना मुश्किल है। घोर उदासी और विषाद के लिए इससे बड़ा कारण और क्या हो सकता है! उदासी या विषाद के लिए अंगरेज़ी का 'डोलड्रम्स' शब्द आया है- 'कितने-कितने डोलड्रमों के बीच'! 'डोलड्रम्स' शब्द के प्रयोग ने उदासी में से उदासी को घटा दिया है, विषाद को हल्का कर दिया है। विजातीय भाषा के प्रयोग से यह बात पैदा हो गई है, और अनायास पैदा हो गई है। कवि का स्वभाव ही नहीं कि वह उदासी और विषाद में जिए। यह बात विनय दुबे को आग्नेय से अलग करती है। आग्नेय जिसे घोर पीड़ा के रूप में लेते हैं, विनय दुबे उसे झटक देते हैं, उसके प्रति उनकी मुद्रा व्यंग्यात्मक होती है। अगला स्टैंजा है:

मैं जहाँ हूँ और जहाँ रहता हूँ/रहता हूँ मैं कई-कई रोगों में/कई-कई भूखों में मजबूरियों में/रहता हूँ मैं कितनी घृणाओं में/कितने दुर्व्यवहारों और अभावों में/कितने असहायों और कितने निरुपायों में/भूखा हूँ प्यासा हूँ नंगा-अधनंगा हूँ/आदिम हूँ अनुसूचित हूँ प्रदर्शनी-हाट में।

(वही)

यानी जो है, सब स्वीकार है। उसके कारण आत्महत्या के पक्ष में तर्क तैयार करने की ज़रूरत नहीं है।

इसमें भाषा की बहुत भड़भड़ है, बहुत बकबक है। उसी में से सबसे ज़्यादा उभर कर आती है 'हूँ' क्रिया। और इस 'हूँ' के भीतर जो 'होने' नाम का भाव है, उस स्पेस में साइलेंस का निवास है। यह साइलेंस ही है जहाँ 'कवि रहता है'। अंतिम स्टैंजा दो पंक्तियों का है:

मोगरे चमेली के फूलों और खुशबुओं से दूर/ मैं जहाँ हूँ और जहाँ रहता हूँ (वही)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अभाव, अभाव– हर स्टैंजा में अभाव का भाव है। मगर कविता जिस बात पर खत्म होती है 'मोगरे चमेली के फूलों से दूर/ मैं जहाँ हूँ/ और जहाँ रहता हूँ', इसमें जो 'दूर' है, उसी ने उन सभी जगहों को घेर लिया है जिसमें वंचित रूप से कवि रहता है। इस तरह वंचितों के लोक को सुवासित स्वायत्तता प्राप्त हो गई है।

यह है 'मैं जहाँ रहता हूँ'। इसे पढ़ते हुए भी निराला की कई पंक्तियाँ याद की जा सकती हैं –

बाहर मैं कर दिया गया हूँ/ भीतर पर भर दिया गया हूँ।

या

मरण को जिसने वरा है/उसी ने जीवन भरा है।

यह निराला की पंक्तियों से जोड़कर विनय दुबे को महानता प्रदान करने वाली बात नहीं है। इसमें एक दूसरी बात भी है। विनय दुबे की कविता में अनुपस्थित अर्थ निहित स्वार्थ भी है, अंगरेज़ी में जिसे 'वेस्टिड इंटरेस्ट' कहते हैं। जो लोग दुबे जी को व्यक्तिगत रूप से जानते रहे हैं, उन्हें पता होगा कि यह बात उनके स्वभाव में ही रही है। यह कविता में भी आती है। यानी उन्हें वह भी चाहिए जिसके प्रति उनमें वितृष्णा का भाव है। यह बात कई कविताओं में है। एक कविता है– 'दिल्ली होने से तो अच्छा है':

दिल्ली की तरफतो मैं भूलकर भी नहीं देखता हूँ/दिल्ली होने से तो अच्छा है/अपनी रूखी-सूखी खाकर यहीं भोपाल में पड़ा रहूँ। (वही, पृ.–18)

यह झूठी बात है। असली अर्थ इसका है कि विनय दुबे को दिल्ली मिली ही नहीं। वरना उन्हें दिल्ली चाहिए थी। ऐसे कई स्वार्थ उनके भीतर पलते थे। कविता में भी वे हैं। और इसे कविता की खूबी के रूप में ही देखना चाहिए और सवाल यह है कि दिल्ली क्यों नहीं चाहिए विनय दुबे को ? दिल्ली अमीरों और गिरोहबाजों को ही चाहिए, और विनय दुबे को मंसाराम बसोड़ की भुखमरी और बीमारी !

कविता की रचना, जैसा कि हमने शुरू में कहा, प्रतीकों के तर्क, बिम्ब सुघड़ता आदि से अधिक समस्यापूर्ण है। बड़े कवियों की सुरचना में यह बात दब जाती है। कला की दृष्टि से गड़बड़ कविता इस दृष्टि से विचार का बेहतर मौका देती है।

65 शुभालय विला, पिपलानी,
भोपाल 462022
मो.नं. 9406542866

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

त्रिनेत्र जोशी

दो कविताएं

रिसना

यह जो जख्म है कि जीवन
भरता नहीं
कई तरफसे छीजता है समय
कि जैसे वह अपना नहीं था

कोई भी राह रौ दस्तक देता
चला जाता था सरायों पर
पूरे दृश्य लड़खड़ा जाते हैं
समूची पृथ्वी रुक जाती है
एक दोराहे पर फिर भी
चलता रहता है चीखों का कारोबार

समय से समय की दूरी बहुत है
एक मकड़जाल में गुंथी चीजों को
हम पकड़ लाए हैं याददाश्त में
जो रहती नहीं हमेशा समय में

घड़ियाल के गजर में
बजती है उदासियां और उबासियां
रिसता जख्म कि कभी भरता नहीं!

दो

वह एक झुंड था
जिसके पीछे-पीछे चल रहे थे
हमारे अंधेरे

बस कलकल
सुनाई पड़ती थी गुजरती हुई
महसूस होता था कि कोई और भी चल रहा है
साथ-साथ
आवाज-सा
नीले आकाश में जैसे किसी और के दर्द
चमक रहे हों
किसी हाथ का सहारा लिये
गोया बह रहा है पानी

अपने को ही सागर की तरह
पार करते हैं हम
कई बंजर पीछे छूट गये हैं
कई उजाड़ आगे फैले हुए हैं
दूर कहीं मरीचिकाओं के नखलिस्तान भी
आते-जाते हैं दरक चुके सपनों से

यह पतझड़ है
उग चुकी चीजों को गिराता हुआ
उड़ती हुई चीजों के पंख
कतर दिये गये हैं
वे फड़फड़ाती हैं
आखिरी-आखिरी सांसों की मानिंद

स्मृतियों के जुलूस
निकल आये हैं सड़कों पर
जिन्हें देखना
कुचल जाना है
असंख्य पदचापों के नीचे
ऐसे पांव जिनकी
सिर्फआहटें हैं हमारे पास
जो अब हमारी नहीं हैं
उनका पीछा करना है हमें
इस दौड़ में हम
पहले ही हार चुके हैं

काश! पहले ही हमें पता चल जाता
काश! कि हम पांवों की पहले ही
मरम्मत कर लेते!!

एफ-57, पीलिया पार्क, भगवानपुर जयसिंह
पो. हरिपुर नायक हलद्वानी
जिला-नैनीताल (उत्तराखंड)
मो. 09313907253

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजकिशोर राजन

चुनाव

मैं नवागंतुक
उन ऐश्वर्यशाली शब्दों को देखता रहा
जिनसे कविगण लिख चुके थे
सैकड़ों काव्य, महाकाव्य
वे शब्द चमकते-दमकते
मुझे नभ में टँगे सितारे लगे
जिन्हें मैं देख सकता, पढ़ सकता और बस
प्रसन्न हो सकता था

शब्दों को मनाने
और अपना बनाने के लिए
शहर, गाँव, निर्जन-प्रांतर
कहाँ-कहाँ तो नहीं जाना पड़ा
जहाँ कुछ शब्दों को चुन सकता
उन्हें थोड़ा-बहुत अपना कह सकता

उन प्रयोगशील कवियों की तरह
प्रतिभासंपन्न भी कहाँ था!
जो गढ़ लेता नये शब्द और
चकित कर देता सभी को

कुछ ने देशज-विदेशज से
कुछ ने तत्सम-तद्भव के बीच
अर्द्धतत्सम को चुन लिया मैं क्या चुनता!

ऐसे में मैंने कब से कोटर में पड़े
मलिन मामूली शब्दों को चुन लिया
जिन्हें ठोक-बजाकर छोड़ दिया गया था
खुरचन की तरह किसी और के लिए
वे शब्द भी शायद जोह रहे थे मेरी बाट
उनसे मिलने के बाद ही जाना
जैसे चुनता है कवि शब्द
शब्द भी पा लेते अपना ठाँव ।

काव्य-संसार

आपने उनकी बात सुनी
तो सुनते रह जाएंगे
आपने अपनी बात कही तो
वे बुरा मान जाएंगे

यहाँ जो जहां है
ठहरना तो दूर
किसी और को देखना भी
मुनासिब नहीं मानता

ऐसे मोहमुक्त, निर्दयी संसार में
मैंने एक प्रेम कविता लिखी
और हाथ में लिए
घूम रहा हूँ, बरसों से
गाँव-गाँव, शहर-शहर
दिल्ली और पटना
इसे कोई पढ़नेवाला नहीं
कोई सुनने वाला नहीं

हद तो यह कि, कविता की नायिका
वह प्रेमिका भी मेरी नहीं रही
जिस दिन सुनाई थी उसे अपनी कविता
मुझ पर लानतें भेजती, पैर पटकते चली गई
यह कहते हुए कि, उसके प्रेम को मैंने
बना दिया किताबी, कर दिया जगजाहिर
मेरे जैसा आदमी क्या खाक करेगा प्रेम

काव्य-संसार के आचार्यगण, चिंतकों
लेखक-कवि, संपादक-गण
कम से कम आप
मेरी कविता तो सुनें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक कवि को सुनते हुए

चीखने से लेकर स्वगत-कथन तक
सुनना चाहता था कवि को
देखना चाहता था शब्दों की धार
कर लेना चाहता था इकट्ठा
उन कविताओं के मर्म
जो थीं हमारे वक्त की सबूत

उसकी बोली, हँसी-मुस्कुराहट,
सोच-विचार
किसी नये इलाके में पहुँचाते थे हमेशा
उसका मानना कि गुलाब के फूल
और कवि मन के बीच
पारस्परिक अटूट होता संबंध
कि उखड़ जाए एक पंखुड़ी भी
तो बिखर जाए फूल
इसलिए जीना ही चाहिए
कवि को, कवि का जीवन
कि कलि वृंत पर चटखती रहे

जैसे हुलसता है गुलाब कँटीली डाल पर
कवि मर्त्य में अमर्त्य का फूल
बन महकता है
हमेशा से रहे दुःसमय के विरूद्ध
अंततः कवि के जीवन से ही
कविता को मिलती जीवन

उस कवि को सुनते जाना
कैसे सुना जा सकता समय को
सिर्फकान से नहीं
लाखों-लाख रोम-कूप से।

एकरस गद्य

दफ्तर में हमेशा की तरह खटरपटर
ऊबे हुए पंखों की चकर-पकर
टेबुल पर धरी,
बेरंग उदास फाइलों को देखते
पता नहीं कब बन गया जीवन एकरस गद्य

ऐसे में एक दिन गद्-गद् गद्य को
अँगूठा दिखाते बिना टिफिन खाये
सहकर्मियों से बगैर गपियाये
निकल पड़ा दफ्तर से बाहर

एक अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठ
पता नहीं क्यों लिखने लगा
उसी वृक्ष के बारे में कैसी तो अद्भुत बात थी
लिखते-लिखते गद्य में
मिलने लगा बूँद-बूँद हरित पद्य
उचरते गये शब्द पत्तों से, वाक्य डालियों से
आने लगी खुशबू उस कागज से
जिस पर उतर रही थी शायद कोई कविता

वह कविता ही बोली
कि थोड़ी-सी गुंजाइश हमेशा बची रहती है
पाँव के नीचे सलामत रहती उतनी जमीन
जहाँ दुनिया के एकरस गद्य का
किया जा सकता
कभी भी सरस पद्य में अनुवाद

मैं लौट आया दफ्तर
पहली बार अपनी कविता लेकर
कंप्यूटर गुनगुना रहा था
पंखे की खटर-पटर बुरी नहीं लगी
फाइलों ने इशारा किया
उन्हें आज रख दूँ अलमारी में
सहकर्मियों में जिज्ञासा थी
उन्हें देख, सिर्फमुस्कुरा दिया

एकरस गद्य पिघल रहा था
उस दिन से, सरस पद्य में।

59 एलआईसी कॉलोनी, कंकड़बाग,
पटना 800020
फोन-9905395614

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शशिभूषण द्विवेदी

मिथिला की लड़ाकियाँ

नया कुछ भी नहीं है
लड़कियों औरतों के कहीं
न कहीं रोज नज़र आ जाने में...
इसी तरह नजर आ गई
तिरहुत-मिथिला की एक
लड़की मन की आंखों से
बिना ऊपरी आंखों से
देखे...

सिर्फ शब्दों में दिखती
रही थी करते प्रेम शब्दों
के तार-तार से और रचते
विमर्श औरत के कोने-कोने
से खोजे हुए स्नेह का:
पाने के लिए प्रेम का केसर
पराग ताकि बनी रहे वह
अपनी इज्जत-इयत्ता के
साथ एक पूरी स्त्री
काश... ?

कह ले कोई हीरामन की
हीराबाई या सत्यवती
शान्तनु की अंतर नहीं
पड़ेगा किसी सीता या आम्रपाली
को मर्दों के दिए किसी भी
संबोधन से...
उनमें तो बहती रही है
सदियों से पीसी हुई पारा नदी
की सुगंध आतुर
पाने को दो स्वाति बूंदें...

भोजपुर, मिथिला, तिरहुत
मगध में सीताएं और आम्रपालियां
हर गोधन पर भैया 'मुआती हैं' -
भैया 'जिआती' हैं कांटे से
और फिर छेदती है हल्के
से जीभ देती स्वजनों
के पराक्रम को धार स्नेह के
प्रायश्चित से ...

सीता- सी हों दृढ़ स्नेहिल
प्रेम पगी लड़कियां इस भूगोल
की देख- सुनकर ही भांप लेती
हैं 'कृष्ण' और 'राम' को
मांग लेती हैं 'चरणों में थोड़ी जगह'
इस इक्कीसवीं शताब्दी में भी और
नत्थू- खैरों को बहा देती हैं
एक ही झटके में 'नॉट क्वालीफाइड'
कहकर...

वे कर देती हैं बुद्ध के लिए
एक मुटठी भात पर आम्रपाली की
तरह सब कुछ न्यौछावर
लिच्छवी कुमारों से कहकर.
बुद्ध ने किया है स्वीकार मेरा
भात आज इसलिए सारी वैशाली एक
तरफ अऔर दूसरी तरफ मेरा यह
भात जिस पर न्योछावर सारी
दुनिया का राजपाट...

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

- कुमारो। मैं जीवन भर तड़पती रही
या तो इस भात के लिए या
फिर अपने
'अरूणध्वज' के लिए...

अरूणध्वज को खोकर मिला
यह भात तुम्हारी वैशाली
से बहुत विशाल है. तड़पती
भींगती रही मैं इसी के लिए
जीवन को हर 'धारासार'
बारिश में...

हर जगह लड़कियां देतीं
रोज अग्नि परीक्षाएं
सीता की तरह थकतीं:
- 'मैं परीक्षाएं देते- देते'
थक गई हूं मां अब
अपनी शरण में ले लीजिए...
दरकी-धरती से निकलती एक
मूरत
- 'आ बेटी चलें। मैं तेरी ही
प्रतीक्षा कर रही थी' -
दहाड़ते राम से कुछ भी नहीं होता
वशिष्ठ रोक लेते हैं उन्हें
खत्म- रामायण के साथ:
ध्वस्त धनुष की ढीली प्रत्यंचा जैसा
इधर इक्कीसवीं शताब्दी की
सीताएं,आम्रपालियां खाती
मार बुलवर्कर से अपने
धीरोदात्त नायकों द्वारा
होतीं लहुलुहान: दुखते
पैरों पर मल लेतीं खुद
हीं ऑयोडेक्स और

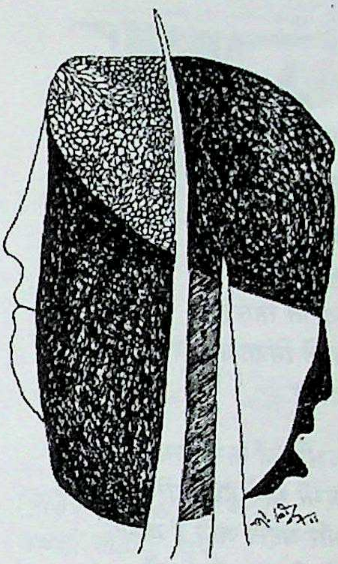

तोड़ लेतीं अनशन बासी
रोटी से इस प्रतीक्षा के बाद
कि कोई आकर मना लें-
लेकिन
'धीरोदात्त' और 'धीरगंभीर'
नायको।-
वे निचोड़ रही हैं सब कुछ
जब लिखतीं हैं कविताएं
और विमर्श जैसे मखमल
पर निचोड़ी गई हो पनीर
बूंद-बूंद और जो उतर
गया कागज की छाती पर वह
दलेगा मूंग जन्म- जन्मांतर
तक छाती पर
किसके- किसके
कौन जाने ....

महावीर गेस्ट हाउस, 31 ए,
के.सी. डे रोड, सिलीगुड़ी-737001
मो. 09775938214

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बनाफर चन्द्र

दिन

एक जैसे
नहीं होते वर्ष के दिन
बदलते रहते हैं
अपने मिज़ाज और
तासीर

कभी सर्द कभी गर्म
कभी भीगे हुए बारिश में
और बदल जाते हैं कभी
तीखी धूप और लू में

मनचले की तरह
उड़ाते हैं पतंग
तो कभी तितलियों की तरह
लेते हैं फूलों की गंध

एक जैसे नहीं होते
वर्ष के दिन
बदलते रहते हैं अपने मिज़ाज
और तासीर
बन जाते हैं कभी
घास के नर्म गलीचे
तो कभी चुग जाते हैं
बदन में कांटे की तरह

अंधेरे में हो जाते हैं गुम
तो कभी उजाले में
चमकते हैं चांदी की तरह
एक जैसे नहीं होते
वर्ष के दिन

लकीरें

किसी के माथे पर
नहीं लिखा है कुछ भी
इसके बावजूद
बहुत कुछ बता देती हैं
माथे की लकीरें

कौन है
कितना बड़ा चोर डकैत
कितना बड़ा दलाल
शरीफ है कि बदमाश
बता देती हैं माथे की लकीर
साफ़ साफ़

कहां क्या खदक रहा है
क्या पक रहा है
कोई कितना भी रखे
छुपाकर
बाहर भीतर का हाल
बता देती है माथे की लकीरें
बता देती है
उसका पता भूगोल

नज़र होनी चाहिए
आपके पास पढ़ने के लिए
माथे की लकीरों को
लकीरें कभी
झूठ नहीं बोलतीं
सच सच देती हैं अपना
बयान

एलआईजी 29/3 सी साकेत नगर
भोपाल-462024
मो. 9200739387

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

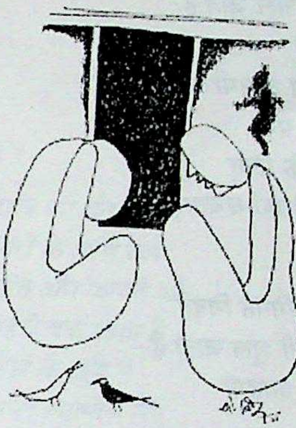

राज्यवर्द्धन

बूढ़ा आदमी

बूढ़े आदमी की
सुबह
जल्दी हो जाती है
सूरज उगने से भी पहले
घर के लोगों के
जागने से भी पहले

बूढ़ा आदमी
प्रतीक्षा करता है-
चिड़ियों के चहचहाने की
सूरज के उगने की
घर के लोगों के जागने की

प्रतीक्षा लंबी हो जाती है
ज्यों सूरज की
कोई रोक रहा हो राह
या फिर
चिड़ियों को दिया हो भगा
जवान लोग रात की खुमारी में
चाहते हैं और सोना

बूढ़ा आदमी
जाग जाने के बाद
फिर नहीं सो पाता
उसके लिए सोना
'सोना' नहीं हो पाता

चिड़ियाँ चहचहाने के बाद
जब हो जाती हैं-चुप
सूरज भी आकाश में जब
एक मुट्ठी ऊपर चढ़ जाता है
और तैरने लगता है
आकाश में धुँआ/चूल्हे का
तब बूढ़ा आदमी
कर रहा होता है-
प्रतीक्षा-एक कप चाय की

जवान लोगों की खुमारी
तब भी नहीं टूटती
चाय की तलब
और भी गहरी हो जाती है
बूढ़े आदमी की
फिर दिन तेजी से लगता है-
बीतने
परंतु बूढ़े की दिन और रातें होती है-
48 घंटों की
सब कुछ विस्तारित
इसलिए
बूढ़ा आदमी का समय नहीं कटता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बच्चे चले जाते हैं-
स्कूल
जवान आदमी चले जाते हैं-
काम पर
बूढ़े के लिए
गिनने को बचता है-
पहर

पहर गिनते गिनते
गिनती भूल जाता है-
बूढ़ा आदमी

बूढ़ा आदमी
प्रतीक्षा करता है फिर
जल्दी से सांझ के ढलने का

बूढ़े आदमी के लिए
दिन क्या सांझ क्या रात क्या
बूढ़े आदमी के पास
कहने को बहुत है
पर कोई नहीं चाहता है सुनना
कहते हैं-

कई बार सुन चुका हूँ
आपकी कहानियाँ
माथा मत खाइये

बूढ़ा आदमी
सुनाना चाहता है
पोते-पोतियों को
अपनी नानी दादी से सुनी कहानियाँ
-शीत बसंत की
-गोनू झा की
-सिकचिलिया की
परंतु बच्चे
व्यस्त हैं-
मोबाइल फोन पर

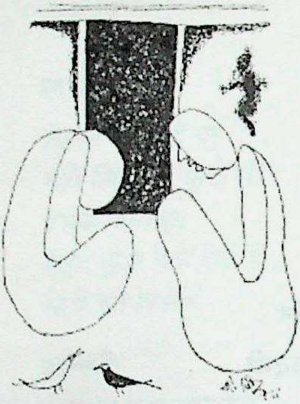

इंटरनेट के चैट पर
या फिर देख रहे होते हैं
बुद्ध बक्से में
चटपटी सीरियल्स
'दबंग' की दबंगता
'रा-वन' का करतब

बूढ़े आदमी के लिए-
समय रावण है
प्रतीक्षा कर रहा है
बूढ़ा आदमी
राम की

हे राम! हे राम! कहकर
बूढ़ा सो जाता है
हे राम! हे राम! कहकर
बूढ़ा फिर जाग जाता है
चिड़ियों के चहचहाने से भी पहले
सूरज के उगने से पहले
घर के लोगों के जागने से पहले
एक बार फिर

एकता हाईट्स, ब्लॉक-2/11ई
56, राजा एस सी मल्लिक रोड
कोलकाता-700032
मो. 09002025465

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जगतनन्दन सहाय

जीवन-ताप

निर्जन-वन प्रान्तर में
कंधे पर बोझ लिए
लकुटी और कम्बल, सिर्फ
भेड़ों के झुंड बीच
बढ़ रहा, धीरे-धीरे
हांक रहा रेवड़ को

दुश्चिन्ता की प्रबल रेखा
ललाट पर नहीं उभरी
फिर अमुदित मन-धीर गति
आगे-पीछे-अगल-बगल से
झुंड-झुंड भेड़ों के मध्य
बढ़ता, धीरे-धीरे

'उर-उर' का स्वर अधरों पर
भाषा वैज्ञानिक भी समझने में असमर्थ
अनुवादित भी न हो सका,
मर्मर ध्वनि बहती हवायें
पक्षियों का कलरव,
शब्दातीत संकेत दीर्घश्वास केवल
प्रकृति भाषा का अभाव पूरा कर देती है

मध्याह वेला में
पक्षी नहीं बोलते
जनपूर्ण जगत, कोलाहल में
डूब जाता है
दूर फैली धूप में
या लघु तरु-छाया में
बैठा विश्राम करता

रात्रि की नीरवता में
तारों के छांव तले
सोते और जागते भी
प्रहरी बना रहता है
भेड़ों के झुंड में
अपने आत्मीय संग
भाषा-समभाषा
अभिप्राय का संकेत देता
सो जाता सुख-निद्रा में

केवल अन्तर्यामी ही
जान सकता
असीम अव्यक्त क्रदन को
ध्वनित होता निरछल उस
नीरव हृदय में

भेड़ों के प्रति अनुरक्ति
उसकी भक्ति
हृदय के रक्त साथ
बहती है

कठिन श्रम, कठोर जीवन
नियति है उसकी
जीवन की गंध वही
जीवन का ताप वही।

गायत्री सदन
संकटमोचन नगर, आरा,
जिला-भोजपुर-802301
(बिहार)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

श्रीधर करुणानिधि

मिलो... चट्टानी-वृक्ष से

कुछ भी हो
सच को सच कहने के लिए
तारों के गुच्छों के बीच एक तारा बन जाओ
किसी एक दिशा को चुनो
और बढ़ते जाओ
वक्त की दिशा से चाहे अलग
बचपन की ओर...
और भागो सच के आगे-आगे
छिप जाओ नीम के पेड़ की शाखों पर
झूठ के लिए प्यार दिखाने से बेहतर है
चेहरे पर एक कनस्तर अंधेरा पोतकर
भूत बन जाना
अगर ऐसा ही है
तो कोई भी कह दे
जाओ तालाब के अंदर
तहखाने में
पर नहीं...
जाओ पहाड़ी के उस पार
जंगल में...
सच के पाँव की तरह जमे
मोटे-चट्टानी वृक्ष से मिलो
उसके बीज को रोपो और सींचो
बड़े होने तक
आँधियों में खड़े होने तक...।

तुमसे ज्यादा... एक चिड़िया

क्या वाकई
तुम नहीं देखते
जमीन में उभरी दरारों
और अंतिम साँसें गिनते
अंकुरण का भवितव्य...
शायद तुम नहीं सुनते
लकड़हारे की कुल्हाड़ी का
एक सख्त तने पर प्रहार
और फिर उठती सिसकियाँ...
ठीक आधी रात
बस्तियों से उठता
नींद छीनता रुदन...

शायद तुम नहीं जानते
कुत्तों के सामूहिक क्रंदन से
खंड-खंड होकर
अंधेरे में विलीन हो जाते हैं सपने...

तुम्हारे आस-पास
पेड़ पर रहती एक चिड़िया
देखती है सब कुछ...
सुनती है बहुत कुछ...
शायद..तुमसे ज्यादा...।

C/o श्रीमती इंदु शुक्ला
आलमगंज चौकी
पोस्ट-गुलजारबाग, पटना-800007
मो. 09709719758

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हेमधर शर्मा

कविता के साथ-साथ

हो सकता है कि अच्छी न बने कविता
क्योंकि आँखों में नींद
और सिर में भरा है दर्द
पर स्थगित नहीं हो सकता लिखना
लिखा था कभी
कि जीवन की लय को पाना ही कविता है
लय तो अभी भी टूटी नहीं
पर सराबोर है यह कष्टों और संघर्षों से
नहीं रोकूँगा अब इन्हें
कविता में आने से।
ओढूँगा-बिछाऊँगा
रखूँगा अब साथ-साथ कविता को।
जानता हूँ कठिन है
इजाफा ही करेगी यह
कष्टों-संघर्षों में
लेकिन मंजूर है यह।
साथ रही कविता तो
भयानक लगेगी नहीं मौत भी
कविता के बिना लेकिन
रास नहीं आयेगा जीवन भी।

कठिन विकल्प

गुजरता हूँ जब गहन पीड़ा से
जन्म लेती हैं तभी कविताएँ
इसीलिये नहीं करता मन
भागने का, अब कष्टों से
चुनता हूँ वही विकल्प
जो सर्वाधिक कठिन हो।
हताशा लेकिन होती है
शक्ति के अभाव में जब
चिड़चिड़ा उठता है मन।
होती महसूस तब
प्रार्थना की जरूरत
इसलिये नहीं कि
कम हो जायँ दुःख-कष्ट
बल्कि शक्ति मिले उन्हें सहने की।
इसीलिये बार-बार
हार कर भी आता उसी जगह पर
चुनता हूँ कठिन विकल्प
स्वेच्छा से दुःख-कष्ट।
फीनिक्स पक्षी की तरह
मरता हूँ बार-बार
जीता हूँ फिर-फिर
अपनी ही राख से।

वार्ड नं. 3, घर क्र. 318
मंगलधाम ले-आउट
पो.-लोणखैरी,
वाया-कोराडी कॉलोनी
जिला-नागपुर, (महाराष्ट्र) 441111
मो. 09922427714

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रदीप राज

मिट्टी के संग

हवा की लकीरें धीरे-धीरे छांट रही थी
नींद की स्याही रेखाओं को
एक तस्वीर साफ
स्वच्छ
निर्मल
शबनम में नहाती
यादों के पगडंडियों में कहीं
फिर से एक हरा रंग
छलकाकर उमड़ आयी
जब वह कुदाली लिए
बंजर ज़मीन की तरफ चल पड़ा।

गरीब था, मगर
झुकी नहीं थी उसकी रीढ़।

किसी धुन में चित्त मगन हुआ
एक अहसास जाग उठा

जैसे सदियों बाद नंगे पॉव को मिला हो
गीली मिट्टी का स्पर्श ।

समय के रूख को शाखाओं में ढ़ोता
महावृक्ष
पगडंडियों के किनारे
जब- जनम -मरण का राग सुनाता है
तब वह खुशबू की तरह
बिखरना चाहता है
काल की सीमा रेखा में

कैद न होकर
फैलाना चाहता है अपनी जड़
धरती की कोख में
फिर- फिर जन्म लेना चाहता है
शाखाएं- उपशाखाएं, फल- फूल और
पत्ते की तरह।

कोई उम्मीद आए, न आए
उसकी छोटी सी कुटिया में रहकर भी
वह हर दिन एक नया सपना देखता है

सपने में वह बारिश की तरह बरसता है
नदी- झरनों की तरह बहता है
मिट्टी को उर्वर बनाता है
संबंधों में नए रंग भरता है ।

2. क्या तुमने सुना है

बंद मुट्ठी भर दाने लिए
अपने बैलों संग
वह देखता है मेंड़ों के उस पार
अपनी मिट्टी को
अपने सुनहरी भविष्य को

तन और मन
तिनका- तिनका पिघल कर
बहुत धीरे, चुपचाप
जब गढ़ता है अपने को
जीवन रस पिलाने सबको
हवा- मिट्टी संग,
तब सुनाई पड़ता है वह राग
अनुराग का
जो मौत के अनोखे सन्नाटे में भी
बुनता है जीवन की रंगीन स्मृतियां
क्या तुमने कभी उसे सुना है।

हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय
मो. 09895690900

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुशीला पुरी

'रोना'

तुमने पूछा था
क्या बचपन से तुम
इसी तरह रोती रही हो ।
और सोचने लगी मैं
उस समय के बारे में
जब हम
बिना रोये हुआ करते थे
रोने की जगह

हंसना होता था तब,
बात- बेबात बस
हंसते जाते पागलों की तरह
और हमारी हंसी में
शामिल हो जाती थी
पूरी दुनिया,
हंसने की जगह तब,

रोना नहीं बना था शायद
उन दिनों हमारी हंसी में
चांद, सूरज, नदी, पहाड़
सभी शामिल थे,
घरों के भीतर की जगह भी
तब हंसती रहती थी
आंगन से आकाश तक
हंसने में साथ होते थे हमारे,

हंसते समय तब मैं
बड़ी निश्चिंत होती थी
सोचती-
यह कहीं नहीं जाएगी

दुनिया के किसी भी कोने में तब
हंसा जा सकता था बेखौफ,

फिर चुपचाप जाने कब
बदलता चला गया सब
हंसने की जगह
रोना आता गया

हांलाकि पहले शर्म भी आती थी रोने में
तो छुप छुप कर रोती,

शुरू में सिर्फ पलके नम होती थीं
फिर जोर जोर से रोना हुआ

जोर जोर के रोने में
नामित थीं कई जगहें
कभी अयोध्या कभी मेरठ
कभी गोधरा तो कभी गुजरात,
अब तो हर वक्त डर बना रहता है
ऐसा लगता है कि स्टेशन- मास्टर
अभी भी छुपाये बैठा है
उस जलती रेलगाड़ी के टिकट
कभी भी
वह काटने लगेगा टिकट,

डर लगा रहता है कि कहीं
रोना भी न छिन जाये हमसे
और गिने चुने लोग
जो शामिल हैं रोने में
रोने को हंसना न समझ बैठें,

वैसे भी
रोने जैसा रोना भी कहां रहा अब!

सी-479/सी
इंदिरा नगर लखनऊ-226016
मो. 09451174529

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

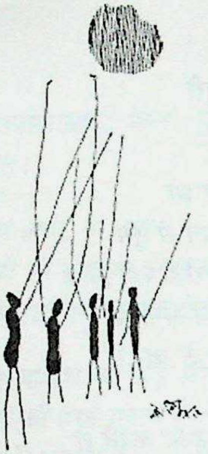

पाँच अनुभूतियाँ

निर्मला तोदी

1. दृष्टि

एक पेड़ में
अनगिनत पत्ते
उन पर सजी है
लाल-पीली धारी
बड़े ही फुर्सत से
बनाई विधाता ने
अनोखी-रंग-बिरंगी
न्यारी-न्यारी पत्ती
मैं देख पा रही हूँ आज
उनके हाथों की कृति

2. सुगन्ध

बिन सूँघे ही
मीठी सुगन्ध आ रही है

अब समझी मैं
पंचेन्द्रियों के ऊपर
हमारा मन है
जो हमें प्रभावित करता है

3. श्रवण

चिड़ियों का चहचहाना
पत्तों का सरसराना
पानी की कलक
हवा का सरसराना
भँवरों का गुंजन
दूर से ही सुनाई देती
रेल की सीटी
और कोयल की कूक
इस सरगम के बीच
है मन कितना शान्त

4. स्वाद

इन आँखों से
पी रहे हैं
छिपे हुए फूलों का स्वाद
अन्दर कुछ
घुल रहा है
पता नहीं
कैसा है स्वाद

5. स्पर्श

कँटीली कठोर
शाखाओं पर
कोमल-कोमल फूल
बाहर से दिखते
हम भी कठोर
अन्दर हैं
हम भी
कोमल
मुलायम फूल

मुकुन्द अपार्टमेन्ट्स
6/2/3 क्वीन्स पार्क
कोलकाता-700019
मो. 09831054444

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

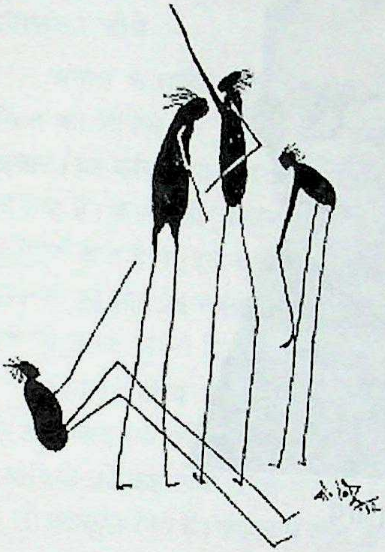

जितेन्द्र धीर

' अक्षर अक्षर...'

अक्षर अक्षर डूब रहा हूं
भाषा से मैं जूझ रहा हूं।

छन्द व्याकरण की सीमा है
सारे भाव नहीं अट पाते
रह जाता अनकहा बहुत कुछ
सब कुछ कहां कभी कह पाते,
कथ्य समेटूं कैसे सारा
यह कविता से पूछ रहां हूं।

चिन्ह प्रतीकों में कहने का
इस युग में अब अर्थ नहीं है
सीधा साफ कहो जो कहना
सच कहने का समय यही है
शक्ति, व्यंजना में है, माना
मैं अमिधा में ढूंढ रहा हूं ।

उन लोगों का ही कवि हूं

जीवन से जो हैं जूझ रहे
उन लोगों का ही मैं कवि हूं

खेतों खलिहान खदानों में
मेहनत से जो हैं डटे हुए
चट्टान, पहाड़ों से लड़ते
हिम्मत से जो हैं अड़े हुए,
उनके पौरूष का हूं गायक
उनके सुख- दुख की ही, छवि हूं।

दर्शन, अध्यात्म बघारें वे
मैं जीवन-सत्य उचारूंगा
है अच्छा बुरा जहां भी
जो शब्दों में वही उतारूंगा,
समय- सत्य की ज्वाला में
अर्पित समिधा हूं मैं, हवि हूं।

जितेन्द धीर क्यू.283 मुदियाली रोड,
गार्डेन रीच, कोलकाता-700024
मो. 9903491670

©2020 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

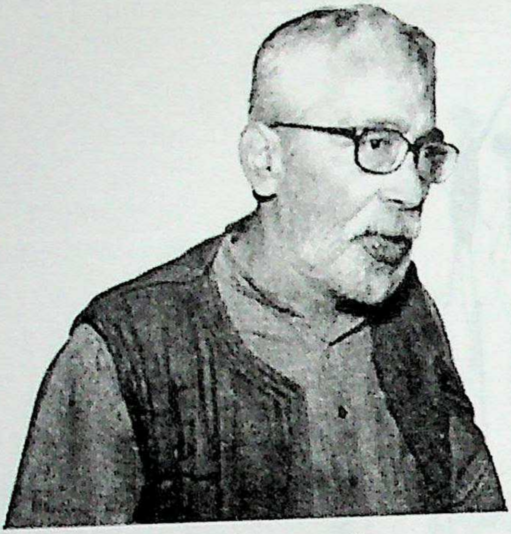

नवारुण भट्टाचार्य

गौरैया

शराब नहीं पीने पर भी
स्ट्रोक नहीं होने पर भी
मेरा पैर लड़खड़ाता है
भूकंप आ जाता है मेरी छाती और सिर में।

मोबाइल टावर चीखता है
गौरैया मरी पड़ी रहती हैं
उनका आकाश लुप्त हो गया है
तस्करों ने चुरा लिया है आकाश।
पड़ी रहती है नितांत अकेली
गौरैया

उसके पंख पर जंगली निशान
चोट से नीले पड़े हैं होंठ व नेत्र
पास में बिखरे पड़े हैं खर पतवार, एके फोर्टिसेवेन
इसी तरह खत्म हुआ इस बार का लेन-देन।

जरा चुप करेंगे विशिष्ट गिद्धजन
रोकेंगे अपनी कर्कश आवाज
कुछ देर, बिना श्रवण यंत्र के, गौरैया की किचिरमिचिर
सुनी जाए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नवारुण ने फिर खींची प्रत्यंचा

कृपाशंकर चौबे

बंगाल के साहित्य जगत में पिछले तीन महीने से एक कविता चर्चा के केंद्र में है। इस कविता का शीर्षक है- गौरैया, और इसके रचयिता हैं बांग्ला के क्रांतिकारी कवि नवारुण भट्टाचार्य। यह कविता माओवादी नेता एम. कोटेश्वर राव उर्फ किशन जी की मौत पर काव्यात्मक प्रतिक्रिया है। कहने की जरूरत नहीं कि किसी तात्कालिक घटना पर कविता लिखना बहुत चुनौतीपूर्ण होता है पर इस चुनौती का सामना नवारुण ने पूरी रचनात्मकता के साथ किया है। किशन जी की मौत 24 नवंबर 2011 को हुई और 25 नवंबर 2011 को नवारुण ने यह कविता लिखी जो उसके अगले दिन कोलकाता से प्रकाशित बांग्ला दैनिक प्रतिदिन में छपी।

ध्यान देने योग्य है कि इस कविता में कवि पहले आम गौरैयों की बात करता है और उसके ठीक बाद एक खास गौरैया; किशन जी की। इस कविता में विशिष्ट गिद्धजन बंगाल के उन बुद्धिजीवियों को कहा गया है जो सत्ता से लाभ पाने के लिए सदा.सर्वदा गिद्ध की तरह झपट्टा मारने को व्याकुल रहते हैं। बंगाल में हाल के वर्षों में विशिष्टजन, विद्वतजन उन बुद्धिजीवियों के लिए व्यवहृत होता रहा है जो राज्य सरकार के पक्ष में रहे हैं। उन बुद्धिजीवियों के बीच नवारुण की इस कविता के छपने के बाद खलबली मच गई। इन बुद्धिजीवियों का कहना है कि हत्या की राजनीति करने वालों को महिमामंडित किया जाना अनुचित है। किशन जी को गौरैया कहे जाने की बात उनके गले नहीं उतरती। दूसरे खेमे के बुद्धिजीवियों का कहना है कि यह कविता चिनगारी साबित हो रही है। नवारुण का यह विलक्षण रचनात्मक विस्फोट है।

नवारुण की इस एक छोटी कविता ने बांग्ला में जिस तरह का उद्वेलन अभी पैदा किया है, ठीक इसी तरह का उद्वेलन उन्होंने सत्तर के दशक में भी 'ऐई मृत्यु उपत्य का आमार देश नेई' (यह मृत्यु उपत्य का नहीं है मेरा देश) कविता लिखकर पैदा किया था। वह कविता सत्तर के दशक में बांग्ला पत्र-पत्रिकाओं में बार-बार छपी। दूसरी भारतीय भाषाओं में भी अनूदित होकर यह कविता छपी। ज्ञानरंजन के संपादन में निकलने वाली हिंदी की प्रसिद्ध पत्रिका पहल ने हिंदी में उसे पुस्तिका के रूप में छापा था। अनुवादक थे मंगलेश डबराल। वह कविता हिंदी में एक विस्फोट की तरह चर्चित हुई, कइयों को जुबानी याद हुई और मंगलेश डबराल के शब्दों में कहें तो संस्कृति के मोर्चे पर बेचैनी से सक्रिय लोगों के लिए काव्यात्मक घोषणा पत्र या थीम पोएम बन गई थी। विद्रोही और क्रांतिकारी आवेग के अलावा नवारुण की कविता में कथ्य, संवेदना और फार्म की विविधता है। नवारुण की कविता में राजसत्ता के आतंक और जीवन को अमानवीय बनाने वाले शत्रुओं के खिलाफभीषण रोष में भीषण युद्ध की आकांक्षा है। ''जो पिता अपने बेटे की लाश की शिनाख्त करने से डरे मुझे घृणा है उससे जो भाई अब भी निर्लज्ज और सहज है मुझे घृणा है उससे जो शिक्षक, बुद्धिजीवी, कवि, किरानी दिनदहाड़े हुई इस हत्या का प्रतिशोध नहीं चाहता मुझे घृणा है उससे।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नवारुण भट्टाचार्य बांग्ला की समृद्ध साहित्य परंपरा के ऐसे हिस्सेदार हैं जिन्हें अलगाकर आधुनिक बांग्ला साहित्य का कोई इतिहास नहीं लिखा जा सकता। उन्होंने ांग्ला कविता और कथा साहित्य दोनों में अपनी अलग पहचान बनाई है। नवारुण को 'हरबर्ट' उपन्यास के लिए 1997 का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था। कवि शंख घोष से लेकर आनंद बाजार पत्रिका तक ने 'हरबर्ट' को विश्वमान की कृति करार दिया है। नवारुण के दूसरे उपन्यास 'कांगाल मांसाट' ने भी बांग्ला में धूम मचाई। हरबर्ट पर फिल्म बनी तो कांगाल मांसाट पर नाटक खेला गया। भोगी, आटो और युद्ध परिस्थिति नवारुण के दूसरे महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। नवारुण ने कई महत्वपूर्ण कहानियां भी लिखी हैं। उनकी कहानियों का संग्रह 'नवारुण भट्टाचार्येय गल्प' बेहद समादृत रहा है।

नवारुण को लिखते हुए पांच दशक हो गए। विद्यार्थी जीवन में नवारुण के सभी साथी जब कैरियर की चिंता कर रहे थे तो अपने पिता से नवारुण ने पूछा था- मैं बड़ा होकर क्या बनूंगा पिता ने कहा था। तुम लेखक बनोगे। लेकिन लिखकर गुजारे की कोशिश मत करना। नवारुण ज्योलाजी में आनर्स कर रहे थे। वह अधूरा ही रह गया। फिर उन्होंने अंग्रेजी में आनर्स किया। उसके बाद ही लिखना शुरू किया। तब नए लेखकों को प्रोत्साहित करने वाले लोग भी थे। वीरेन चट्टोपाध्याय जैसे सीनियर संपादक भवानीपुर से चलकर नौजवान नवारुण के घर सुबह-सुबह आए और उनकी दो कविताएं छापने के लिए ले गए। सुभाष मुखोपाध्याय भी लगातार लिखने के लिए नवारुण से आग्रह करते थे। साहित्य.संस्कृतिमय घरेलू परिवेश में ही नवारुण का बचपन बीता। छुटपन से ही साहित्य पढ़ने का जो मजा है, उसे मां ने गाइड किया। बचपन में ही पिता के नाटक देखते थे तो थियेटर में रुचि भी स्वाभाविक तौर पर हो गई थी। बाद में नवारुण ने 'नवान्न नाट्य दल' का संचालन-निर्देशन भी किया। नवारुण ने 'सोवियत देश' पत्रिका में अठारह साल काम किया। नवारुण के लिए 'सोवियत देश' का संपादन का अनुभव बाद में बहुत काम आया। पिछले नौ वर्षों से नवारुण बांग्ला मासिक 'भाषा बंधन' निकाल रहे हैं और समकालीन हिंदी लेखकों की रचनाएं हर अंक में बांग्ला में अनूदित कर छापते हैं। नवारुण हिंदी ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं की रचनाएं भी अपनी पत्रिका में अनुवाद कर छापते हैं और प्रमुखता से छापते हैं। यह एक अखिल भारतीय दृष्टि है जो उन्हें विरासत में मिली। बहरमपुर में 23 जून 1948 को जन्मे नवारुण बांग्ला के विख्यात लेखक व अभिनेता विजन भट्टाचार्य तथा लेखिका महाश्वेता देवी की इकलौती संतान हैं।

महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, कोलकाता क्षेत्रीय केन्द्र
2 ए/2बी, मृगेन्द्र लाल मित्रा रोड, द्वितीय तल कोलकाता-700017
मो. 09836219078

(नवारुण भट्टाचार्य से एक वृहद साक्षात्कार हम वसुधा के आगामी 91वें अंक में प्रकाशित करने जा रहे हैं। हमारे लिए कोलकाता में इस साक्षात्कार का दायित्व कृपाशंकर चौबे के सहयोग से युवा कवि निशांत ने लिया है।)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

(पता नहीं कि ऐसा होगा अथवा नहीं। होगा, तो कब होगा। लेकिन कई बार ऐसा स्वप्न आता है कि सचमुच ऐसा हो गया है। चूँकि उन सबमें स्वयं को भी पाता हूँ, इसलिये कह नहीं सकता कि ये काफी समय बाद होगा। इसीलिये जब इसे लिखने का मन में आया तो ऐसा लगा कि ये आज ही हो रहा है। सो लिखते समय वर्तमान को ही कालखण्ड मान लिया है। सारे पात्र आज के ही हैं। आज मतलब, आज। बस ऐसा लगा कि ये हो गया है। और जब लगा तो कहानी का होना तय हो गया।)

दो एकांत

पंकज सुबीर

'जब मैं कह चुका हूँ कि मुझे ये सब पसंद नहीं है तो क्यों मुझे परेशान करते हो।' यह वाक्य कहने वाला एक पच्चीस-छब्बीस साल का युवक है। और सुनने वाला एक सत्तर-पचहत्तर साल का बूढ़ा।

युवक के कहने पर बूढ़ा अपने ही तरीके से निर्लिप्त भाव से शून्य में उसी प्रकार से ताकता रहा। उसकी पीली और मिचमिसी आँखों के किनारे पर समय का कीचड़ फँसा हुआ है। 'तो फिर क्या करोगे ? उसके अलावा कोई और चारा भी है ?' बूढ़ा बुदबुदाया।

'मत होने दो कोई चारा, क्या जरूरी है वो सब ? उसके बिना क्या ज़िंदगी नहीं चलेगी ? आप लोगों के समय वो सब होता होगा इतना जरूरी, आज नहीं है। और फिर बात तो मेरी है, अब मुझे वो सब कुछ चाहिये या नहीं, ये तय भी तो मैं ही करूँगा। आप इसको मुझ पर ही क्यों नहीं छोड़ देते ?' युवक की आवाज़ में झुँझलाहट भरी हुई थी।

'ठीक है अब जो तुम्हें सुहाये वो करो। तुम्हारी ज़िंदगी है तुम जानो।' बूढ़े ने बिना युवक की तरफ देखे हुए कहा।

'अगर आपको लगता है कि ज़िंदगी मेरी है तो मेरी तरह से जीने क्यों नहीं देते ? ये जानते हुए भी कि मेरे जैसे कई लोग अब उसके बिना जीने की आदत डाल रहे हैं। बल्कि आदत डाल चुके हैं। ऐसे में क्यों मुझे बार-बार उसकी याद दिलाते हो।' युवक अभी भी झुँझला कर ही उत्तर दे रहा था।

'क्या आदत डाल रहे हो तुम ? मुझे सब पता है, बताने की कोशिश मत करो।' बूढ़े ने एक बार फिर से कोशिश की।

'तो ? ये अपने लिये हमने तय किया था ? ये तो आपने तय किया है हमारे लिये।' युवक अब गुस्से में आकर बोल रहा था। कई सालों से यूँ ही ज़िंदगी बिता रहे हैं ये दोनों। यूँ ही का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मतलब, इसी प्रकार एकाकी। युवक और बूढ़ा बस दो ही प्राणी। हैरत होती है ना ? कि ऐसा कैसे हो सकता है। बस दो ही लोग हैं और कहीं कोई नहीं है। एकाकी होने के कारण बड़ी ही नियमबद्ध सी ज़िंदगी जी रहे हैं दोनों। रोज़ सुबह बूढ़ा पाँच-पाँच टोस्ट अपने और युवक के लिये प्लेट में डाल कर रख देता है। युवक घर के ही सामने के हिस्से में अपना खुद का कुछ छोटा मोटा काम करता है। टोस्ट खाके वो अपने काम पर चला जाता है और इधर बूढ़ा अकेला रह जाता है। नहा धोकर वो तीन लोगों के लायक खिचड़ी कुकर में चढ़ा देता है। तीन लोगों की इसलिये कि दोपहर में तो दोनों खाना खाते हैं लेकिन रात को बूढ़ा खाना नहीं खाता है। रात को तीसरे आदमी की बची हुई खिचड़ी युवक खा लेता है। केवल कुकर ही ऐसा बर्तन है जो रात को बूढ़ा धोता है। बाकी सारे बर्तन डिस्पोज़ेबल रखे हैं, चम्मच से लेकर प्लेट तक। पानी के लिये दोनों की अपनी अपनी प्लास्टिक की बोतलें हैं। सुबह बूढ़ा दोनों में पानी भर देता है और फिर एक बार दोपहर के खाने के बाद। इन्हीं बोतलों से दोनों दिन भर पानी पीते रहते हैं, ग्लास की ज़रूरत ही नहीं होती। रात को बूढ़ा दिन भर के सारे डिस्पोज़ेबल उठाकर बाहर फेंक आता है। अब अगला दिन फिर वही टोस्ट और वही खिचड़ी। इन सबका एक नियम सा बना हुआ। ऐसा नियम जिसे कभी टूटते हुए नहीं देखा गया। दोनों प्राणियों ने पिछले कई सालों से टोस्ट और खिचड़ी के अलावा कुछ और खाया हो, ऐसा कभी नहीं हुआ। रसोईघर में केवल तीन कनस्तर हैं दाल का, चावल का, और टोस्ट का। इसके अलावा एक छोटा सा डिब्बा है नमक का। नमक का डिब्बा बहुत धीरे ख़ाली होता है। धीरे-धीरे इसलिये कि बूढ़ा कम नमक खाता है और इसी कारण खिचड़ी में भी नाम के लिये नमक डालता है, युवक को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि खाई जा रही चीज़ का स्वाद कैसा है।

'ये तो बरसों से किये जा रहे कर्मों का नतीज़ा था, इसमें हमने क्या किया और हमारे बापों ने क्या किया इसकी बहस करने से कोईमतलब नहीं है। जो होना था हो चुका। अब तो ये सोचना है कि आगे क्या होगा। बार-बार एक ही बात का रोना रोने से कुछ नहीं होने वाला। हमारी पीढ़ी ने बंदूकें और तोपें लेकर ख़त्म नहीं किया है, जाने कितने बरसों से धीरे-धीरे होता रहा और आख़िर में ये हो गया।' बूढ़ा अब मानो घिघिया रहा है। ये उसकी आदत है। उसके मन में एक डर है युवक को लेकर। मगर युवक तो मानो सब चीज़ों से बिल्कुल ही निस्पृह हो चुका है। जीवन को लेकर उसके अंदर कहीं कुछ नहीं है। कुछ भी नहीं। एक नियमबद्धता सी है, बस। जैसे ये कि युवक सप्ताह भर में दो जोड़ी कपड़े पहनता है, एक जोड़ी को सोमवार, बुधवार और शुक्रवार को पहनता है तो दूसरे को मंगलवार, गुरुवार और शनिवार को। बूढ़ा दिन भर घर में रहता है सो पायजामे पर बनियान पहने रहता है। घर से बाहर कहीं जाता नहीं है, और उससे मिलने कोई आता नहीं है सो बनियान पर कुरता पहनने की कभी जरूरत नहीं पड़ती। हाँ सर्दियों में एक शॉल ओढ़ लेता है ऊपर से। उसके पास दो कुरते भी हैं, जो उसने बरसों से नहीं पहने हैं। रविवार को बूढ़ा अपने और युवक के कपड़े धो डालता है। पैसों की कोई तंगी नहीं है दोनों के पास। गाँव से ठीक ठाक पैसा आ जाता है खेतों की बटाई का। इतना कि अगर दोनों कुछ न

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करें और बैठ कर भी खाएँ तो खा सकते हैं। युवक इसीलिये वास्तव में कुछ काम धाम करता नहीं है। वो जो घर के ही सामने के हिस्से में अपना व्यवसाय है, वो व्यवसाय भी नाम का ही है। वहाँ बैठकर दिन को काटना है बस।

ये रात के खाने का समय है। रात का खाना, जो अकेला युवक ही खाता है। उस दौरान बूढ़ा वहीं पास बैठा कुकर को माँज कर साफ करता रहता है। इसी दौरान दोनों में बातें होती हैं। आज भी वही हो रहा है युवक अपने हिस्से की, सुबह की तीसरे आदमी की खिचड़ी को ख़त्म करने में जुटा है। बूढ़े की बातें उसे थका देती हैं। उन बातों का हर सिरा एक ही खूँटी से बंधा रहा है।

'गाँव कब जाओगे?' युवक ने बातों को दूसरी ओर मोड़ने के लिये कहा।

'अभी कुछ सोचा नहीं है। सोमवार को चला जाऊँ तुम्हारा खाना बनाकर? एक दिन की ही दिक़्क़त होगी तुमको, मंगल की रात तक या बुध की सुबह आ जाऊँगा वापस। वैसे तो वहाँ न भी जाओ तो बटाईदार आ ही जाता है पैसे लेकर, मगर अपने सामने कराओ तो अच्छा लगता है। बाद में तो सब...।' बूढ़े की आँखें पनिया गईं।

बूढ़ा सिर झुकाए कुकर के पैंदे को रगड़ रहा है। बीच बीच में नाक को सुड़कने की ध्वनि कर रहा है। युवक प्लास्टिक की डिस्पोज़ेबल चम्मच से थर्मोकोल की प्लेट में बची हुई खिचड़ी को धीरे-धीरे समेट रहा है। रात ठीक यहीं पर आकर रोज़ बोझिल हो जाती है। दिन भर तो युवक आने जाने वालों के बीच में रहता है, मिलता जुलता रहता है, इसलिये कुछ फ़र्क नहीं पड़ता लेकिन रात को...। कुकर को पानी से धोकर बूढ़ा उसे अंदर रखने चला गया। अंदर से खटर पटर की आवाज़ आ रही है। युवक कई बार हैरत में पड़ता है कि जब रसोई में केवल तीन कनस्तर, एक डिब्बा और एक कुकर ही हैं, तो फिर ये अंदर से इतनी देर तक खटर-पटर की आवाज़ें कैसे आती हैं। क्या करता है ये बूढ़ा अंदर जाकर?

'कल चूहे मार दवा रखनी पड़ेगी, दो तीन चूहे हैं अंदर।' बूढ़ा बुदबुदाते हुए रसाई से निकला। बूढ़ा इसी प्रकार बात करता है। बुदबुदाते हुए। इस प्रकार मानो किसी अप्रत्यक्ष को संबोधित कर रहा हो। ये जैसे मन ही मन कोई मंत्र उच्चारण कर रहा हो। युवक अंदाज़ा लगा लेता है कि ये बात उसी से कही गई है और उसे ही उत्तर देना है।

'चूहे... ? चूहे कैसे हो गये हैं?' युवक ने कुछ हैरत के साथ पूछा।

युवक के सवाल पर बूढ़ा चलता चलता अचानक ठिठक गया। उसके चेहरे पर कुछ बहुत ही अजीब से भाव आये। युवक ने उन भावों को देखा और बात को बदलते हुए बोला 'मेरा मतलब है चूहे क्यों होंगे भला? क्या है जिसके लालच में चूहे आएँगे? कोई वहम हुआ होगा, चूहे हो ही नहीं सकते।'

युवक की बात से बूढ़े का चेहरा और बदल गया। एक प्रकार का ख़ौफ़ उसके चेहरे पर तारी हो गया। उसका चेहरा पीला पड़ गया। 'चूहे ही हैं, मैंने देखे हैं, कोई वहम नहीं है।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बुदबुदाता हुआ वो वहाँ से चला गया। युवक चुपचाप चम्मच से प्लेट में इधर उधर बिखरे चावल और दाल के इक्का दुक्का दानों को समेट कर उनका अंतिम कौर बनाने लगा।

जब युवक अपना खाना ख़त्म करके बाहर के कमरे में आया तो बूढ़ा अपने बिस्तर को ठीक ठाक कर रहा था। युवक कुछ देर तक बूढ़े की तरफ देखता रहा फिर बोला 'आज जल्दी सो रहे हो?' बूढ़े के हाथ कुछ देर के लिये रुके और फिर से चलने लगे। मानो वो इस बात का उत्तर देना ही नहीं चाह रहा हो। कमरे की छत से लटका हुआ पंखा पुराने बेयरिंग की अजीब सी आवाज़ पैदा कर रहा था। 'मैं उठाकर फेंक दूँ आज का कचरा?' युवक ने बूढ़े की तरफ से कोई उत्तर नहीं पाया तो कुछ देर रुक कर दूसरा सवाल किया। बूढ़े के निर्णायक रूप से तकिये को रख कर उस पर दो बार हाथ ठोंका, भद्द-भद्द की आवाज़ आई। उसके बाद वो पलटा और बिना युवक की तरफ देखे अंदर चला गया। युवक ने पलट कर अंदर देखा, बूढ़ा दिन भर के डिस्पोज़ेबल इकट्ठे कर रहा था। ये बूढ़े का अंतिम काम होता है। सारे कचरे को बाहर कूड़ेदान में फेंकना। इस प्रकार से, मानो एक भरे पूरे दिन को रात के कूड़ेदान में फेंक दिया है। एक भरा पूरा दिन जिसमें से चंद डिस्पोज़ेबल के अलावा कुछ नहीं निकला, कुछ नहीं मिला, और मिलना है भी नहीं। बूढ़ा कचरा बाहर फेंककर लौट के अपने हाथ पैर धोने लगा। हाथ पैर धोने का मतलब समझता है युवक। हो गया सब कुछ, अब जाओ, सोओ और सोने दो। आज समय से कुछ पहले हाथ पैर धुल रहे हैं। ये भी होता है अक्सर। सप्ताह में एकाध बार समय से पहले हाथ पैर धो लेता है बूढ़ा।

'मैं.....' युवक ने बूढ़े की तरफ पीठ किये किये ही कहा, पीछे से बूढ़े की आवाज़ आई 'हूँ....'। इस मैं और हूँ का क्या मतलब है ये दोनों जानते हैं। बूढ़ा युवक के पीठ पीछे खड़ा था लेकिन साइड में रखी हुई टेबल पर पड़े हुए सामान को व्यवस्थित करने में जुटा था। दरवाज़े के पास जाकर वो एक बार ठिठका और बोला 'दरवाज़ा....।' पीछे से एक बार फिर से वही आवाज़ आई 'हूँ....।' कोई गुप्त कोडिंग है जिसे वो दोनों ही जानते हैं। पीछे के हूँ को सुनकर युवक ने दरवाज़ा खोला और बाहर निकल गया। उसके बाहर जाते ही बूढ़े ने टेबल के सामान को जस का तस छोड़ा और दरवाज़े की तरफ बढ़ गया। ये दरवाज़ा घर से बाहर जाने का दरवाज़ा है, इसके अलावा इस कमरे में एक दरवाज़ा और भी है जो उस हिस्से को जाता है जहाँ युवक का व्यवसाय है, और जहाँ वो रात को सोता भी है। उस हिस्से का भी एक दरवाज़ा है जो बाहर की तरफ खुलता है। इस प्रकार से घर के दो दरवाज़े हैं जो बाहर खुलते हैं, एक ये दरवाज़ा जो कि बूढ़े का दरवाज़ा है और दूसरा वो दरवाज़ा जो युवक का दरवाज़ा है। बीच में है तीसरा दरवाज़ा जो दोनों को जोड़े हुए है। युवक केवल एक बार बूढ़े दरवाज़े से बाहर जाता है, रात को। इस दरवाज़े से बाहर निकल कर फिर कुछ देर बाद अपने वाले दरवाज़े से अपने उस सामने वाले हिस्से में जा जाता है। उसी हिस्से में रात गुज़ारता है और सुबह, बीच के तीसरे दरवाज़े से घर में लौटता है। बूढ़ा केवल अपने ही हिस्से के दरवाज़े का उपयोग करता है, वो इस तीसरे दरवाज़े का भी उपयोग नहीं करता। कभी युवक के उस हिस्से में नहीं जाता जहाँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

युवक का व्यवसाय है और जहाँ वो युवक रात गुज़ारता है।

बूढ़े ने दरवाज़े को लगाया और मुड़कर अपने पलंग पर आकर बैठ गया, उसका पलंग जो उस डबल बेड का आधा हिस्सा है जो कमरे में रखा है। एक बार उसने पलंग के पास रखे स्टूल पर देखा, वहाँ पानी की बोतल, कुछेक दवाईयाँ और उसकी घड़ी रखी है। घड़ी, जो उसने कितने ही दिनों से हाथ में पहनी ही नहीं है। ये घड़ी यहीं इसी तरह से रखी है। केवल एक बार रात को सोते समय वो इसमें समय देखता है, और फिर इसे यहीं रख देता है। टेबल से घड़ी को उठाकर उसने समय देखा, और फिर उसे वापस रख दिया। एक बार चारों तरफ देखा और उठकर कमरे की लाइट बंद कर दी। गहरे अंधेरे में बूढ़े द्वारा छोड़ी गई गहरी साँस की आवाज़, और फिर पलंग के हल्के से चरमराने की आवाज़ आई। बूढ़े के हिस्से का दिन ख़त्म हो चुका है।

दरअसल में ये दोनों जन समय के एक ख़ास हिस्से में हैं। ख़ास हिस्सा, जब कुछ बहुत अनहोनी सी बात हो चुकी है। इस अनहोनी को लेकर काफी समय से आशंका तो व्यक्त की जा रही थी कि ऐसा न हो जाये लेकिन फिर भी सब मुतमईन थे कि ऐसा नहीं होगा। ऐसा हो भी कैसे सकता है। जो कुछ शंका कुशंका है वो बिल्कुल ही फ़िजूल है। मगर उन सबके बाद भी वैसा हो गया। ये दोनों उसी हो जाने के संत्रास को भोग रहे हैं। और ये दोनों अकेले नहीं हैं जो इस संत्रास को झेल रहे हैं। दरअसल में तो इनके जैसे कई कई हैं। बल्कि ये कहा जाये कि इनके जैसे ही हैं अब हर तरफ हर जगह। आज की बहस भी उसी से तात्कालिक या फौरी निज़ात पाने को लेकर हो रही थी। बूढ़े को तो अब उस सब की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन उसे लगता है कि युवक को तो है। वो तो अभी उम्र के उस दौर में है जहां उसे इस सबकी बहुत जरूरत होती होगी, भले ही वो कह नहीं रहा है और बात को टाल रहा है। बूढ़ा बार-बार उसे वापस सही दिशा में मोड़ने की कोशिश करता है और इसी चक्कर में बहस हो जाती है। जैसा आज हुआ।

सुबह। युवक रोज़ की तरह तीसरे दरवाज़े से अंदर आया। युवक कुछ जल्दी उठ जाता है। फिर वहाँ से उठकर आकर यहाँ लेट जाता है, कभी-कभी सो भी जाता है फिर से। युवक के आने के बाद बूढ़ा उठता है और अपना दिन शुरू करता है। युवक ने कमरे में आकर बूढ़े को देखा। पास आकर देखा। गौर से बूढ़े के पेट को देखने लगा, साँस चल भी रही है कि नहीं। कुछ समझ में नहीं आया तो नाक के पास हाथ लाकर देखा, चल रही है साँस। युवक, बूढ़े के पास वाले ख़ाली पलंग पर लेट गया।

'तो फिर पिताजी की शादी कैसे हुई थी ?' ये दोपहर के खाने का समय है। जब दोनों आमने सामने होते हैं। बूढ़ा बीच में कुकर रख देता है, और दोनों तरफ की डिस्पोज़ेबल प्लेट, पानी की बॉटल, चम्मच वगैरह। जिसको जितना लगता है वो उतना अपनी प्लेट में लेता जाता है। यही तरीका है दोनों के खाना खाने का। इस दौरान बूढ़ा कम चिड़चिड़ा रहता है। युवक को जो भी बातें करनी होती हैं वो इसी समय करता है। बूढ़ा अपने हिस्से की बातें रात को करता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'नहीं हुई थी तुम्हारे पिताजी की शादी....।' बूढ़े की आवाज़ जैसे किसी खाई से आई। बोलते समय उसने अपना मुँह भी ऊपर नहीं किया, उसी तरह नीचे देखता हुआ खिचड़ी को चम्मच में भरता रहा। बूढ़े के उत्तर पर युवक का मुँह की ओर चम्मच ले जाता हुआ रुक गया। बूढ़ा उसी प्रकार से खिचड़ी में लगा रहा, मानो कोई आम सी रोज़मर्रा की ही बात कही हो।

'मगर आपने तो कहा था.... ? और फिर वो फोटो... ? और वो सारी बातें.... ?' युवक ने जब देखा कि बूढ़ा किसी भी प्रकार से उसकी तरफ नहीं देख रहा है तो उसने एक के बाद एक कई सारे सवाल दाग दिये। बूढ़ा युवक के प्रति लापरवाही जताते हुए अपनी खिचड़ी को ख़त्म करने में लगा हुआ था।

'बोलते क्यों नहीं ? इतनी बड़ी बात कह के आप चुपचाप खा कैसे सकते हो ? पहले मेरी बात का जवाब दीजिये। कैसे नहीं हुई थी पिताजी की शादी ? वो जो फोटो बाहर लटका है वो आपने ही लगाया है, मैंने नहीं। आप कहते थे कि मेरी माँ अनाथ थीं, पिताजी को कहीं मिल गई थीं सो पिताजी ने शादी कर ली, और आज आप कह रहे हैं कि मेरी माँ ही नहीं थी, मेरे पिताजी की शादी ही नहीं हुई थी। क्या तमाशा है ये सब ?' युवक बूढ़े की लापरवाही के चलते कुछ क्रोध में आ गया था। बूढ़ा अभी भी कोई उत्तर देने की मुद्रा में नहीं दिख रहा था। उसी प्रकार से खिचड़ी खा रहा था।

'मैं कुछ बोल रहा हूँ आपसे।' युवक का क्रोध बढ़ता ही जा रहा था।

'तुम भी चुपचाप खा लो। उसके बाद ही बात करेंगे सारी। मैं दिन भर में खाना खाता हूँ, मुझे चैन से खा लेने दो। और तुम भी चैन से खा लो। ये सब बातें खाना खाने के बाद भी हो सकती हैं। जो कुछ भी पूछना हो सब पूछ लेना, लेकिन पहले अपनी प्लेट में रखा खाना ख़त्म करो, उसके बाद।' बूढ़े ने लगभग आदेश की तरह कहा। और वापस खाने में लग गया। युवक कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा और फिर चुपचाप खाना खाने लगा। बहस तो अक्सर होती है दोनों में और हमेशा खाते समय ही होती है। बूढ़ा हर बार बहस को अपने तरीके से एक ही दिशा में मोड़ने का प्रयास करता है। और युवक उस दिशा से भागने का। आज बूढ़ा पहली बार बहस को टाल रहा है। दोनों उसी प्रकार चुपचाप खाना खा रहे हैं। बूढ़ा नीचे मुँह किये कौर पर कौर खा रहा है।

'मैं बाहर बैठा हूँ।' खाना खाकर उठते हुए युवक कहा।

'हूँ।' ये बूढ़े का सबसे अच्छा अस्त्र है। जिसका कोई भी मतलब निकाला जा सकता है।

'कितनी देर में आ रहे हैं आप ?' युवक ने हूँ से भन्नाते हुए कहा।

'कह दिया न कि आज बता दूँगा, जो भी पूछोगे, मगर अभी नहीं बताऊँगा, रात को बताऊँगा। अभी तुम जाओ काम काज देखो, आराम से रात को बात करेंगे। बात इतनी छोटी नहीं है कि इतनी जल्दी हो जाए। अभी तुम जानते ही क्या हो।' बूढ़े ने पहली बार सिर उठाकर युवक की आँखों में आँखें डालकर उत्तर दिया और लम्बा उत्तर दिया। बूढ़े की धुँधली आँखों में जाने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्या था कि युवक सिहर गया। बरसों बाद बूढ़े ने युवक से इस प्रकार आँखों में आँखें डालकर बात की है। अधिकतर होता ये है कि या तो किसी बात पर युवक नज़रें चुरा कर बात करता है या फिर बूढ़ा आँखें बचा रहा होता है। बूढ़े के उत्तर के बाद युवक ने कोई सवाल नहीं किया और चुपचाप चला गया। बूढ़ा भी धीरे से उठा और सामान समेटने लगा।

सामान समेट कर बूढ़ा बाहर के कमरे में आ गया। दोपहर को खाना खाने के बाद हल्की झपकी लेना उसकी आदत में है। आदत में भी है और फिर ये भी कि और कुछ होता भी नहीं है करने को दिन के समय में। पलंग के चादर को ठीक करके बूढ़ा लेट गया। सामने दीवार पर टँगी हुई तस्वीरों को देखने लगा। तस्वीर, जिसमें बूढ़े का बेटा है, युवक की माँ के साथ। दूसरी तस्वीर जिसमें तीनों हैं बूढ़ा, उसका बेटा और पोता, लेकिन पोता बहुत छोटा है, बिल्कुल बच्चा। और एक तस्वीर जिसमें केवल बूढ़ा है और युवक है, उसमें युवक किशोर है और अपने दादा के कंधे पर हाथ रखकर खड़ा है। एक तस्वीर अकेले युवक की है। बिल्कुल अकेले की। ये ज़्यादा पुरानी नहीं है। युवक आँखों में सपने लिये खड़ा है, किसी स्टूडियो में खिंचवाई गई है ये फोटो। बहुत पहले शादी लायक लड़के और लड़कियों की इसी प्रकार की फोटो खिंचवाई जाती थीं। बूढ़े की निगाह युवक की एकाकी फोटो पर आकर ठहर गई। फोटो का सूनापन और अकेलापन तस्वीर के किनारों के रिस रहा है। जब रिसाव बढ़ गया तो बूढ़े ने करवट कर ली। करवट करके वो अपनी स्मृतियों को टटोलने लगा। क्या क्या हुआ, क्या क्या हो चुका है। युवक के सवालों के हर उत्तर को तलाशने लगा। हर वो घटना जो कि बतानी है युवक को। जिसके बारे में पूछ सकता है युवक। ये तलाश शुरू होती है उसके अपने जन्म से। उसका अपना जन्म मतलब बूढ़े के जन्म से। और फिर उसके बाद युवक के पिता का जन्म, फिर युवक का जन्म। बस वही तो है कहानी, उसके बाद तो कुछ भी नहीं है, कुछ भी नहीं। धीरे-धीरे बूढ़े को दोपहर की झपकी लग गई।

'आपने कहा था कि मेरे पिताजी की शादी नहीं हुई थी, फिर ये कौन है?' युवक ने तस्वीर की तरफ इशारा करते हुए पूछा। रात का खाना चुकने के बाद तीनों कमरे में बैठे हैं। तीनो? एक दूसरा युवक भी है। दूसरा युवक भी युवक की ही उम्र का है। दोस्त है उसका, युवक शायद वो सारी बातें अपनी तरफ से पूछने के लिये उसे लाया है जिन्हें वो सीधे नहीं पूछ सकता बूढ़े से। बूढ़ा पलंग के दीवार से चिपके हिस्से पर तकिया लगा कर उससे पीठ टिकाये बैठा है। युवक और दूसरा युवक पलंग के दूसरे सिरे पर बैठे हैं आलथी पालथी मारकर। दूसरे युवक का चेहरा आधे उजाले और आधे अंधेरे में है। युवक के सवाल पर बूढ़ा उस आधे उजाले और आधे अंधेरे को देखने लगा। गौर से देखने लगा मानो कुछ तलाश कर रहा हो। इस देखने के क्रम में एक बार दोनों की नज़रें भी मिल गईं और दूसरा युवक एकदम नज़र हटा कर दीवार पर टँगी उस तस्वीर को देखने लगा जिसके बारे में युवक ने कहा था।

'ये तुम्हारी माँ हैं।' बूढ़े की निगाह अभी भी दूसरे युवक पर ही टिकी है। उसने अपना उत्तर भी आहिस्ता से दिया बिना नज़रें हटाए। बूढ़े के उत्तर पर दूसरे युवक ने तस्वीर से नज़र

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हटा कर बूढ़े की ओर देखा।

'ये अजीब बात है, कभी कहते हैं कि तुम्हारी पिता की शादी ही नहीं हुई थी और कभी कहते हैं कि ये तुम्हारी माँ है।' युवक ने झुंझलाहट के स्वर में कहा।

'क्यों ? क्या दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं ? तुम्हारी माँ के साथ तुम्हारे पिता की शादी हुई ही हो ये ज़रूरी है क्या ?' बूढ़े ने इस बार युवक की ओर देखते हुए कहा।

'हो सकता है लेकिन फिर ये तस्वीर, और आप जो आज तक कहते थे कि मेरी माँ...।' युवक ने जान बूझकर बात को आधे में ही छोड़ दिया।

'नहीं रही, यही कहा था मैंने ? वो झूठ था। सच यही है कि ऐसा कुछ भी नहीं हुआ था। बल्कि मुझे तो ये भी नहीं पता कि वो है कहाँ, और मुझे ही क्या किसी को भी नहीं पता कि ये जो तस्वीर में तुम्हारे पिता के साथ बैठी है और जो तुम्हारी माँ है ये कहाँ है।' बूढ़े ने तस्वीर की ओर इशारा करते हुए कहा। इस बार तीनों एक साथ उस तस्वीर की महिला की तरफ़ देखने लगे।

'तो क्या ये आदमी इसका पिता नहीं है।' दूसरा युवक पहली बार बोला।

'है ना, ये दोनों इसके माँ-बाप ही हैं। लेकिन....।' बूढ़ा बोलते बोलते चुपा गया। मानो कुछ ऐसा हो जिसको बोलने से पहले कुछ हिम्मत जुटा रहा हो। दूसरा युवक, युवक की तरफ देखने लगा।

'ये रातों रात नहीं हुआ था। बहुत समय से धीरे धीरे हो रहा था। बहुत सालों से। धीरे-धीरे, आहिस्ता आहिस्ता। कोई कोई जानता था कि ये जो धीरे-धीरे हो रहा है, ये कभी एकदम यहाँ तक भी पहुंचा देगा। सैंकड़ों बरस लग गये इसको होने में, लेकिन ये होकर रहा।' बूढ़े की बात ख़त्म होने के बाद दोनों युवक कुछ नहीं बोले। कुछ देर तक कमरे में ख़ामोशी छाई रही।

'मेरे पिताजी की जब शादी हुई तो उसके लिये क्या क्या करना पड़ा मेरे दादाजी को। उस समय ये सब दिखने लगा था कि अब कुछ समय बाद ये सब होने वाला है। हमारे गाँव और आसपास के पचासों गाँवों में कोई लड़की थी ही नहीं किसी के घर में। सबके घरों में केवल लड़के थे। बस लड़के। मुरझाए हुए, सवालों की तरह घर में घूमते फिरते नज़र आते लड़के। लड़के जो अब आदमियों में बदल जाते थे, पता ही नहीं चलता था। यूँ ही बदल जाते थे, बस। कहीं कुछ भी नहीं था उनके लिये, धीरे-धीरे आहिस्ता आहिस्ता सब लड़कियाँ ख़त्म हो गई थीं। ख़त्म हो गई थीं या कर दी गई थीं। वो आबादी जो आधी आबादी कहलाती थी उसे ख़त्म कर दिया गया था। चली गई थीं सारी लड़कियाँ जाने कहाँ, जाने कौन देस....।' बूढ़े की आवाज़ कंपकंपा गई और उसमें उदासी भर गई। दोनों युवकों ने एक दूसरे की तरफ देखा। बूढ़ा चुपचाप अपनी बोतल को खोल कर उसमें से पानी पीने लगा।

'पिताजी बताते थे कि पूरा गाँव उजाड़ सा लगता था। दादाजी को पता लगा कि कहीं किसी गाँव में एक लड़की है। जात पात का तो कुछ पूछना ही नहीं था। लड़की होना ही सबसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बड़ी जात थी। बात इतनी आसान भी नहीं थी, जितनी दादाजी समझ रहे थे। तब आधी ज़मीन बिकी थी, ये पहली बार था कि परिवार में ज़मीन बिकने की नौबत आई थी। नहीं तो अब तक तो ज़मीन बढ़ती ही आ रही थी। आधी ज़मीन को बेचकर जो पैसा मिला वो, और पता नहीं कितना सोना चाँदी दिया था लड़की के बाप को। मेरी माँ के पिता को, मेरे नाना को। दादी बताती हैं कि जतन से संभाल कर रखे गये जाने कितने ज़ेवर उस समय खेत के साथ हो गये थे। पिता की शादी ज़रूरी काम था। नहीं होती तो....।' बूढ़ा एक बार फिर से चुपा गया। दोनों युवक बूढ़े की बात ख़त्म होते ही एक बार फिर से एक दूसरे क़ी तरफ देखने लगे।

'मगर सब लड़कियाँ चली कहाँ गईं यूँ अचानक?' प्रश्न एक बार फिर से दूसरे ही युवक ने पूछा। वो प्रश्न पूछने के बहाने बूढ़े के साथ सहज होने का प्रयास कर रहा है। उसे पता था कि उसको लेकर बूढ़े के मन में एक कड़वाहट है। आज बूढ़े ने उस कड़वाहट का कोई निशान दिखने नहीं दिया है।

'कहीं नहीं गईं, हमने ख़त्म कर दीं, हमने। हमने, हम जो दूसरे हर रूप में स्त्री को पसंद करते थे, लेकिन बेटी के रूप में उसे देखते ही हमें जाने क्या हो जाता था। पहले कई सालों तक ये होता रहा कि पैदा होने के बाद उसे ख़त्म किया जाता था। क्योंकि तब पैदा होने के पहले पता नहीं चलता था कि पैदा होने वाली संतान नर है या मादा। मगर ख़त्म तब भी कर दिया जाता था। कभी पैदा होते ही खाट के पाये से दबा कर, तो कभी किसी औरत के स्तनों पर नीला तूतिया लगाकर उसका दूध पिलाकर। बाहर ख़बर आती थी कि मरी हुई लड़की हुई है। समझने वाले समझ जाते थे कि लड़की पैदा होकर मरी है। कोई कुछ नहीं बोलता था, सबको यही करना होता था। एक मादा, एक और मादा को पैदा करती थी और फिर कई सारी मादाएँ मिलकर उसको ख़त्म कर देती थीं। बाहर खाट पर बैठे पुरुष इंतज़ार करते थे, दोनों में से किसी एक ख़बर के आने का। या तो ये ख़बर की बेटा हुआ है बधाई हो, या ये कि लड़की पैदा हुई है मरी हुई।' बूढ़े की आवाज़ काँप रही थी। राह गहरा चुकी थी और ऐसे में बूढ़े की आवाज़ एक विचित्र प्रकार का हाँटिंग इफेक्ट पैदा कर रही थी।

'ख़बर सुनते ही वे पुरुष उठकर खड़े हो जाते थे, नर पैदा होने पर बोतल खोलने की तैयारियाँ करने के लिये और मादा पैदा होने पर उसे दफ़नाने की तैयारियाँ करने के लिये। कमरे में पड़ी वो मादा तब तक माँ नहीं बनती थी जब तक कि वो किसी नर को नहीं जन देती थी।' बूढ़ा खाँसने लगा। दूसरे युवक ने बोतल खोलकर उसकी तरफ बढ़ा दी। युवक इस बीच उठा और उठकर उसने कमरे का दरवाज़ा लगा दिया। दूसरे युवक के आने के बाद से ही जो खुला हुआ था।

'ये सब बहुत पहले की बातें हैं। बाद में काफी बदलाव आ गया था, अब लड़की को मारने के लिये उसके पैदा होने का इंतज़ार नहीं करना पड़ता था। वो तो तुमको पता ही है। पेट में ही पता लगने लगा था कि जो बन रहा है वो नर है कि मादा। यदि मादा होता था तो माँ के पेट में ही पहले उसे एक संडासी से...। और फिर उस लोथड़े को निकाल कर बाहर फेंक दिया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जाता था। पेट में इसलिये मार दिया जाता था कि कहीं बाहर ज़िंदा आ गया तो बात तो पहले जैसी ही हो जाएगी न। उसमें फिर विज्ञान और इतनी प्रगति होने का क्या फायदा। हाँ एक बात जो समान थी वो ये थी कि पहले भी उस मादा को पैदा होते ही कुछ मादाएँ ख़त्म करती थीं और बाद में भी जब पेट में ख़त्म करने का काम शुरू हुआ तो वो भी मादाएँ ही करती थीं। नर केवल इशारा करता था, पहले भी और बाद में भी। कई बार नहीं भी करता था, ये निर्णय मादाएँ ही कर लेती थीं।' बूढ़ा थकने लगा है बोलते बोलते। कमरे में एक विचित्र प्रकार का मातम भाँय-भाँय कर रहा है। कुछ देर तक तीनों चुपचाप रहे। फिर युवक उठ कर बीच वाले दरवाज़े में अपने वाले हिस्से में चला गया।

'आप क्यों परेशान करते हैं उसे?' दूसरे युवक की हिम्मत बढ़ गई थी।

'परेशान कहाँ करता हूँ, मैं तो बस ये कहता हूँ कि एक बार, बस एक बार....। अभी मौक़ा है, बाद में शायद वो भी न हो। मैं भी कितने दिन का हूँ अब? एक बार तुम उसे समझाओ न।' बूढ़ा दूसरे युवक के प्रति संवेदनशील हो गया था।

'उससे क्या होगा?' दूसरे युवक ने सवाल किया। बूढ़ा कुछ उत्तर देता उससे पहले ही युवक ने बीच के दरवाज़े से अंदर प्रवेश किया। उसके हाथ में कुछ सामान था। कुछ बिस्किट, कुछ नमकीन और ऐसा ही सामान। युवक ने जब सामान तीनों के बीच में रखा तो बूढ़ा हैरान हो गया।

'ये सब इतनी रात को?'

'उधर रखा रहता है, कभी कोई आने जाने वाले के लिये, या कभी खुद को ही ज़रूरत पड़ जाये तो।' युवक ने उत्तर दिया। 'ये मीठा वाला बिस्किट ले लीजिये ये नुकसान नहीं करेगा।' युवक के कहने पर बूढ़े ने एक बिस्किट उठा लिया।

'बरसों बाद....।' बूढ़े ने बिस्किट को निहारते हुए कहा उसका स्वर डूबा हुआ था। दूसरे युवक ने भी एक नमकीन बिस्किट उठा लिया और उसे दाँतों से कुतरने लगा।

'फिर आपकी शादी?' दूसरे युवक ने ही सवाल किया।

'तब तक हालात और बदतर हो गये थे। अब लड़कियाँ कहीं नहीं थीं। सारे रंग बुझ गये थे। अब हर तरफ एक ही रंग था स्याह रंग। मेरी शादी किसी लड़की से नहीं हुई, बल्कि एक औरत से हुई थी। औरत जो मुझसे काफी बड़ी थी। शादी भी क्या हुई थी, बस वो आकर रहने लगी थी घर में। बदले में उसके पति को उस बची हुई ज़मीन में से काफी कुछ देना पड़ा था। उसका पति भी उसको ऐसे ही लाया था। तो वो औरत मेरे पास आ गई। और उससे ही पैदा हुआ था इसका बाप।' बूढ़ा पहली बार सधी आवाज़ में बोल रहा था, बल्कि अंतिम वाक्य बोलते समय तो ऐसा लगा कि वो हल्का सा मुस्कुराया भी था। चूँकि वो बहुत दिन से मुस्कुराया नहीं था, इसलिये अभ्यास खो चुका था मुस्कुराने का। मगर लगा ऐसा ही कि वो मुस्कुराया था। बूढ़े ने एक नमकीन बिस्किट उठा लिया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'आपको.... ?' युवक ने कुछ कहना चाहा मगर बूढ़े ने हाथ के इशारे से उसे रोक दिया। दूसरे युवक ने भी पहले को आँखों के इशारे से मना कर दिया। बूढ़ा अब नमकीन बिस्किट को कुतर रहा था।

'औरत..... ?' दूसरे युवक ने प्रश्न को इस प्रकार छोड़ा मानो बूढ़े को पता हो कि सवाल क्या है।

'मह-मह करती थी औरत, सोनामाटी की तरह होती थी औरत। जब लहलहाती तो सारा कुछ भींज जाता था। उसका कोई बदल नहीं हो सकता। हो ही नहीं सकता। इधर से संभालो तो उधर से बिखरे। जैसे मोती की माला हो, एक सिरा पकड़ो तो दूसरे से मोती छूट जाएँ। सारी रात मोती.... ।' बूढ़े ने बात को बीच में ही छोड़ दिया। उसकी पीली आँखें चमक रही थीं। युवक ने पहली बार बूढ़े की आँखों को चमकते देखा था। बुझी हुई आँखों को।

'फिर ?' अब सारे प्रश्न दूसरा युवक ही कर रहा था।

'फिर सारी औरतें चली गईं। जो बरसों से होता आ रहा था उसका परिणाम सामने आ गया। पहले लड़कियाँ गईं, फिर औरतें। जाना था ही। तय था। सो हो गया। चली गई सारी सोनामाटी, जाने कहाँ किस देस उड़ गई सारी। सारी की सारी, और रह गई ये रेत, दिन रात किसकिसाती हुई रेत, उड़ गई जैसे कोई गंध हो। हाँ गंध ही तो थी, औरत एक गंध ही तो थी, लहलहा के गमकती फिरती थी। उसके होने से सब कुछ होता था। उसके नहीं होने से सब कुछ रुक जाता था। वो थी तो घर था, वो थी तो नर था। उस बावली गंध को थाम कर ही तो नर, नर बनता था। उसे थामना कोई आसान था क्या। महमहा कर उँगलियों से फिसल जाती थी तो। बिजुरी की तरह चमकती थी औरत, और लपलपा के कहती थी, आ मुझे गह। गह लिया तो रह जाऊँगी नहीं तो.... ।' बूढ़े की आवाज़ मानो नशे में डूब रही थी। दोनों युवक भी बूढ़े की बात सुनकर कहीं डूब रहे थे, डूब रहे थे किसी अज्ञात में। उस अज्ञात में जिसे कभी देखा भी नहीं था। बूढ़े की आवाज़ की उँगलियाँ थाम कर उतर रहे थे उस अज्ञात में जिसके बारे में बूढ़ा जाने क्या क्या कह रहा था। कभी ये तो कभी वो। दूसरे युवक को गला सूखता महसूस हुआ तो उसने बोतल खोलकर गटगटाना शुरू कर दिया। आधी से ज़्यादा बोतल ख़ाली करके उसने बोतल वापस रखी। बूढ़ा गौर से देख रहा था दूसरे युवक का पानी पीना। हलक की गुठली में उतरते हुए पानी की उत्कंठा को पकड़ने की कोशिश कर रहा था बूढ़ा।

'इसका बाप जब बड़ा हुआ, जवान हुआ, तब तक सब ख़त्म हो चुका था। कुछ नहीं था। शादी जैसा तो कुछ सोचा भी नहीं जा सकता था। सोचता भी कैसे, और किससे।' बूढ़ा अब धीरे-धीरे फिर से उदास हो रहा था। उसकी आवाज़ धीरे-धीरे फिर से डूब रही थी।

'फिर ये कैसे ?' युवक की तरफ़ इशारा करते हुए पूछा दूसरे युवक ने। बूढ़े ने हवा में हाथ उठाकर इशारा किया रुको बता रहा हूँ, बता रहा हूँ, सब कुछ। एक बार उसी जगह पर पहलू बदल कर बैठ गया। मानो अब किसी दूसरे अध्याय को शुरू करने जा रहा हो। दूसरा

© Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अध्याय जो औ अलग है अभी तक के अध्यायों से।

'इसको पैदा करने के लिये इसकी माँ को किराये पर लिया था मैंने।' बूढ़े ने आँखों को शून्य में स्थापित करते हुए कहा।

'किराये पर ?' दूसरे युवक ने पूछा।

'हाँ किराये पर, उस समय तक आते आते शादी जैसी बातों का तो सोचा भी नहीं जा सकता था। कोई इस बात को सपने में भी नहीं ला सकता था कि कोई औरत केवल और केवल उसी की होगी। पूरी की पूरी। और पूरी ज़िंदगी के लिये। बस उसकी। वो समय तो बीच चुका था। अब तो बस जो कुछ था उसी से...।' बूढ़ा फिर से चुप हो गया। इस अध्याय को खोलते हुए शायद उसे पीड़ा हो रही है। उसका चेहरा कुछ उलझी हुई लकीरों से भरा हुआ है। ऊपर ही देखते हुए उसने हाथों से टटोल कर सामने से एक बिस्किट उठा लिया। खाने के बजाय उस बिस्किट के ऊपर अपनी उँगलियाँ फिराने लगा। बिस्किट पर लगा नमक उसकी उँगलियों पर किरकिराने लगा।

'फिर भी परिवार को तो आगे बढ़ाना ही होता है। न सही शादी, मगर औलाद तो आ जाये। अपने सामने कम से कम ये तो देख जाएँगे कि अपनी लकीर ख़त्म नहीं हुई है। कुछ और आगे खिंच गई है। बस यही सोचकर मैंने भी वही किया जो बहुतेरे कर रहे थे।' बात को छोड़ कर बूढ़े ने बिस्किट कुतर लिया और उसे चबाने लगा।

'इसका बाप भी बहुत ज़िद्दी था, इसी की तरह। मगर मेरी ही ज़िद पर वो मान गया। जब मान गया तो ढूँढ़ हुई कि कहाँ और कैसे हो।' बूढ़ा अटक अटक के कहानी को चला रहा है।

'बहुत दूर से आई थी इसकी माँ। बहुत दूर से। उसके आने में खेत का और एक हिस्सा बिक गया था। बहुत कुछ तो पहले ही जा चुका था। अब नाम का ही रह गया था। जो पहले था उसके मुकाबले तो उसे नाम के ही खेत कहेंगे। अब हम दो प्राणियों के लिये वो नाम का खेत ही बहुत हो रहा है। मगर उस समय तो....।' बूढ़ा साँस लेने के लिये ज़रा रुक गया। दूसरे युवक ने युवक की तरफ़ देखा। दोनों में आँखों ही आँखों में कुछ हुआ। दूसरे युवक ने भवें उचका कर होंठ ज़रा तिरछे कर दिये।

'इसकी माँ ?' दूसरे युवक ने प्रश्न किया।

'लड़की तो वो भी नहीं थी, औरत ही थी। लेकिन थी लड़कियों की ही तरह टुह-टुह। अपने बाप के साथ आई थी। बाप ने आधे पैसे आते ही धरवा लिये थे। पैसे लेकर चला गया था। इसकी माँ को वहीं छोड़कर। इसकी माँ....। धूप का टुकड़ा थी इसकी माँ। ये अपनी माँ पर ही गया है। ये दूध रंगत माँ से ही मिली है इसको, और नैन नक्श भी, वरना इसका बाप तो...7 इसे गुलाबी होंठ और उजले दाँत देखता हूँ तो इसकी माँ याद आ जाती है। वही रूप वही रंग।' बूढ़े ने तस्वीर की तरफ़ इशारा करते हुए बात को समाप्त किया। बूढ़े के इशारे पर दोनों युवक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी तस्वीर की तरफ देखने लगे। तस्वीर की तरफ देखते देखते युवक उठा और उस तस्वीर को पास से जाकर देखने लगा। उस तस्वीर की महिला को। बूढ़े ने धीरे से अपना हाथ दूसरे युवक के हाथ पर रख दिया। दूसरे युवक ने बूढ़े को देखा। बूढ़ा मुस्कुरा रहा था। उसकी आँखों में जुगनू जगर रहे थे। युवक कुछ देर तक वहीं खड़ा पास से उस तस्वीर को देखता रहा। फिर वापस आकर अपनी जगह पर बैठ गया।

'मोतिया पाट की साड़ी थी इसकी माँ। किनारों किनारों से झरती थी जब चलती थी तो। इसके बाप ने पहली बार..... । और पागल सा हो गया था इसका बाप। ये होती है औरत। तिस पर इसकी माँ थी भी पूरी औरत। सर से पाँव तक औरत ही औरत। इसका बाप जहाँ छूता वहीं से रिस जाती। जैसा ये ज़िद करता है वैसा ही इसका बाप भी करता था। क्या होगा ? क्यों होगा ? कैसे होगा। देखी जो नहीं थी औरत। मगर जब देखी तो.... ।' बूढ़ा फिर रुक गया।

'और फिर ये पैदा हो गया। औरत के आने के दस महीने बाद। औरत साल भर के लिये आई थी। अगर ये नहीं आता तो भी साल भर ही रुकती। बीच में छः महीने बाद उसका बाप आकर फिर से पैसा ले गया था। बाक़ी आधे का आधा। बीज इसके बाप का था इसलिये ये उसका बेटा है और कोख उस औरत की थी इसलिये वो इसकी माँ थी, बस। बस। मगर उसको तो जाना था। अब कहीं और, किसी और को पैदा करने। यही तो उसका काम था। उसका या शायद उसके बाप का। बिना रुके चलते जाना।' बूढ़ा समझ रहा था कि ये सब बातें युवक को कैसी लग रही होंगी लेकिन वो फिर भी बात को तीखा किये जा रहा था।

'मगर इससे उसे कुछ हो गया था। उस औरत को। इसकी माँ को। ये मेरा पोता था भी तो इतना सुंदर। आज जैसा लगता है उससे नौ गुना सुंदर था ये। मोह हो गया था इसकी माँ को। इसकी माँ का बाप, इसका नाना जब उसे लेने आया था तो रात को मेरे पास बैठकर बोला था कि पहली बार मोह कर रही है ये औरत। इससे पहले कभी कहीं नहीं किया। हर बार चुपचाप छोड़ कर चल देती है। लेकिन इस बार तो। जाने के नाम से ही कैसा कैसा मुँह बनाकर देख रही है। कहती है बस अब मुझे यहीं बस जाने दो, बहुत हो गया।' बूढ़ा फिर से चुप हो गया।

'फिर ?' दूसरे युवक ने पूछा।

'फिर क्या, जाना तो उसको था। हम नहीं चाहते तो भी जाना था। उसका बाप कौन छोड़ने वाला था।' बूढ़े ने फीके से स्वर में कहा।

'आप ने रोका नहीं ?' दूसरे युवक ने पूछा।

'रोका था मगर रोकने से होना क्या था। अधिकार तो था नहीं। एक साल के लिये लाये थे, सो हो चुका था। जिस काम के लिये लाये थे सो भी हो चुका था। अब किस मुँह से रोकते। उसके बाप से कहा भी था कि और कुछ ले लो और छोड़ दो इसको यहीं। मगर वो कैसे छोड़ देता। इसकी माँ से मैंने पूछा था तू रुकना नहीं चाहती क्या। तो ललछी आँखों से काट जाने वाली नज़रों से मुझे देखकर फूट पड़ी थी वो। सच कहा था उसके बाप ने, मोह हो गया था उसे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इससे, इसकी आँखों से मोह हो गया था उसे।' बूढ़े ने युवक की तरफ इशारा करके बात को ख़त्म किया।

'फिर ?' बहुत देर बाद युवक ने कोई सवाल किया।

'फिर क्या ? चली गई वो। अपने बाप के साथ। एक बार तुझे कलेजे से लगाकर हूक भरी और फिर पीठ करके चली गई। चली गई। चली गई हमेशा के लिये। ऐसी कि फिर कभी नहीं लौटी। न कभी पता चला न कोई ख़बर आई। पता भी नहीं कि ज़िंदा भी है कि.... । जाने कौन देस गई। एक जगह तो वैसे भी नहीं रुकती थी। रुकने देता भी कब था उसका बाप। ठौर कोई था नहीं। सो क्या ख़बर-बतर लेते और देते। इसका बाप तो पागल हो गया था उसके जाने के बाद। घर से ही नहीं निकला था बहुत दिनों तक। वो ऐसी कठ कलेजी निकली कि जाते समय तो पिघली मगर जाने के बाद फिर मुड़ के भी नहीं देखा। देखती भी कैसे, इसके जैसे तो जाने कितने...।' बात को ग़लत तरफ जाते देख कर बूढ़े ने बीच में ही छोड़ दिया। युवक एक बार फिर से उस तस्वीर की तरफ देखने लगा।

'इसको तो मैंने ही पाला। ये मेरे ही हिस्से आया था। न माँ के, न बाप के, मेरे हिस्से में। फिर इसके बाप के बाद मैं इसे लेकर यहाँ चला आया। वहाँ वैसे भी मन नहीं लगता था। खेती बाड़ी सब बटाईदार के भरोसे छोड़ी और आ गया इधर। ये क़स्बा भी गाँव जैसा ही था, शहर तो नाम का ही था। सो यहाँ मन लग गया। खेत कम तो हो गये थे लेकिन दो प्राणियों के गुज़ारे के लिये बहुत थे। ये मकान बहुत पहले का लिया हुआ था। किराये से उठा रखा था। आ गये तो रम गये। और कट भी गये। अब तो लगता है कि.....।' बूढ़ा एक बार फिर से ख़ामोश हो गया। ख़ामोशी के साथ दीवार से सिर भी टिका लिया उसने। आँखें बंद कर लीं। दोनों युवक भी उस चुप में बहने लगे। उनके प्रश्न भी लगता था कि ख़त्म हो गये थे। या शायद पूछने की उत्सुकता ख़त्म हो गयी थी। युवक ने दोनों हाथों की उँगलियों को एक दूसरे में गूँथा और उन पर माथे को टिका दिया।

'और तब से हम दोनों यहीं हैं, वो सब, वो किस तरह से ?' दूसरे युवक ने पूछा।

'ज़िंदगी काटने के लिये कुछ तो हो। कुछ तो हो ऐसा कि मेरे बाद भी इसका जीने में मन लगा रहे। जीने के लिये कोई कारण हो, कोई उद्देश्य हो। वरना तो। बस इसीलिये कहता हूँ कि एक बार, बस एक बार। बाक़ी तो तुम्हारे इन सबको लेकर मेरे मन में कुछ नहीं है। मगर इससे कुछ भी तो नहीं उपजता। परिवार को बढ़ाया जाता है तो उसके पीछे केवल वंश बढ़ाने का ही कारण नहीं होता। उसके पीछे अपने जीते रहने की वजहें बढ़ाना भी एक कारण होता है। अपने ज़िंदा रहने की वजहें बढ़ाना। वरना तो मतलब ही क्या है ज़िंदा रहने का। जैसे ज़िंदा हो, वैसे ही मर भी जाओ। किसी को क्या फर्क पड़ता है। मगर जब किसी को फर्क पड़ता हो तो ज़िंदा रहने का। जैसे ज़िंदा हो, वैसे ही मर भी जाओ। किसी को क्या फर्क पड़ता है। मगर जब किसी को फर्क पड़ता हो तो ज़िंदा रहना रहना पड़ता है। जैसे मैं हूँ, इसके कारण। अब और क्या है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जिसके लिये ज़िंदा हूँ।' बूढ़े ने बात को थोड़ा सा इमोशनल घुमाव देना शुरू कर दिया है। यहाँ आकर उसे वो बात कहनी है जो वो कहना चाह रहा है। वही बात जिसको लेकर युवक और बूढ़े में पिछले कई दिनों से बहस हो रही है।

'आता हूँ, ज़रा अंदर से।' कहता हुआ बूढ़ा पलंग से उतरने लगा। दूसरे युवक ने उठकर बूढ़े को थामने का प्रयास किया लेकिन बूढ़े ने हाथ के इशारे से उसे रोक दिया। धीरे-धीरे चलता हुआ बूढ़ा अंदर चला गया।

'मुझे तो लगता है कि उनका कहना सही है।' बूढ़े के जाने के बाद दूसरा युवक बोला। युवक ने कोई जवाब नहीं दिया। बस फिर उठकर दूसरे युवक की तरफ़ देखने लगा।

'मेरे ख़्याल से तुझे मान जाना चाहिये।' दूसरे युवक ने फिर कहा। युवक ने उस बात पर भी कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। बस उसी प्रकार बैठा रहा। दोनों के बीच में ख़ामोशी छा गई। कुछ देर बाद बूढ़े के आने की आहट आई। बूढ़ा धीरे-धीरे चलता हुआ वापस आकर अपनी जगह पर बैठ गया।

'आप जो कह रहे थे वो होगा कैसे?' दूसरे युवक ने पूछा।

'वैसे ही जैसे इसके बाप ने किया था। वैसे ही जैसे ये हुआ था। तरीक़ा तो वही है अब उसके अलावा और है ही क्या। अब ये ज़रूर है कि दाम और बढ़ गये हैं। लेकिन ज़रूरत भी कभी दाम देखती है। ज़रूरत है तो दाम है।' बूढ़ा समझ गया कि युवक सहमत है उसके साथ।

'यहीं?' दूसरे युवक ने पूछा।

'और कहाँ? यहीं तो। एक बार ये भी तो देखे कि मह-मह करती सोना माटी कैसी होती है। कैसी सुवास होती है उसमें। ये भी तो छूकर देखे उसे।' बूढ़ा कुछ उत्साह से बोला।

'कौन?' दूसरे युवक ने फिर पूछा।

'है कोई। गाँव का बटाईदार बता रहा था कि दूर कहीं कोई औरत है उसकी रिश्तेदारी में। अभी पिछले महीने उसका फोन आया था तो बता रहा था। मुझे तो लगता है कि उसने बस इसीलिये फोन किया था, फ़सल की बात तो बहाना थी। कहता था कि पैसा ज़्यादा लगेगा। गाँव की आधी खेती का बोल रहा था। मुझे भी लगा कि वैसे भी अब कौन जाता है वहाँ, जो है वो हम दो के लिये वैसे ही बहुत है। सो आधी चली भी जाये तो क्या। कम से कम....। पर ये मानता ही नहीं। आज कोई सूरत बन भी रही है। कल वो भी न हो। इधर आसपास के सौ पचास गाँवों में तो अब एक भी औरत नहीं है। ये तो भला हो उस बटाईदार का, नहीं तो मैं तो उम्मीद ही छोड़ बैठा था।' बूढ़ा अब उत्साह से भर गया है।

'कब?' दूसरे युवक ने मानो युवक की तरफ से ही पूछा।

'जब ये बोल दे। मगर जितनी जल्द हो जाये उतना अच्छा है। बटाईदार बता रहा था कि देर करने में देर हो जाएगी। फिर हो सकता है साल डेढ़ साल इन्तज़ार करना पड़ जाये। उतना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समय तो बहुत हो जायेगा। जल्दी हो जाये तो ठीक है। जब ये बोल दे। अभी हाँ कर दे तो कल ही गाँव जाकर बटाईदार से सब मामला तय कर आऊँ। मैं तो एक पैर पर खड़ा हूँ मानो। बस इसकी ही रस्ता देख रहा था। बात ही बात है। हो जायेगा तो हो ही जायेगा। मेरे भी मन की हो जायेगी। नहीं तो प्राण अटके ही रहेंगे। बस यही सोच कर कि इसका कुछ कर जाता।' बूढ़े को पता है कि लोहा गरम हो गया है, अब जितनी जल्दी जल्दी चोट की जाए उतना अच्छा है।

'तो कर लीजिये आप व्यवस्था। जैसा आपको ठीक लगे वैसा कर लीजिये। जब करना चाहें तब।' दूसरे युवक ने पहले युवक की ही तरफ से निर्णय भी सुना दिया। युवक इस पर भी कुछ नहीं बोला।

'सच....! अभी बात करता हूँ उससे। अब देर किस बात की, जब होना ही है तो जितनी जल्दी हो जाए। अभी बात करता हूँ उससे।' कहता हुआ बूढ़ा उठने लगा।

'अभी... ? रात के ढाई बज रहे हैं, सो रहा होगा वो। आप भी सो जाओ, बहुत रात हो गई है। सुबह बात कर लेना उससे। एक रात में कुछ नहीं बिगड़ने वाला। जो बात रात को होनी है वो ही सुबह हो जाएगी। आप भी थक गये हो सो जाओ।' दूसरे युवक ने समझाइश के अंदाज़ में कहा। सुनकर बूढ़ा वापस पलंग पर बैठ गया।

'चलो हम उधर चलते हैं, इनको सोने देते हैं। ज़्यादा जागेंगे तो तबीयत ख़राब हो जाएगी। चल, उठ।' दूसरे युवक ने खड़े होकर युवक की पीठ थपथपाते हुए कहा। युवक भी उठ कर खड़ा हो गया।

'नहीं, तुम दोनों यहीं सो जाओ, मैं उधर सो जाता हूँ। कैसे सोओगे उस छोटे से पलंग पर दोनों जने ? चलो आज यहीं सो जाओ।' बूढ़े ने पलंग से उठते हुए कहा।

'नहीं नहीं।' युवक ने हाथ के इशारे से मना किया।

'क्या नहीं नहीं, चलो सो जाओ चुपचाप। मैं जा रहा हूँ।' कहता हुआ बूढ़ा बीच के दरवाज़े की तरफ़ बढ़ गया। बूढ़े के जाने के बाद दोनों कुछ देर चुपचाप खड़े रहे। फिर दूसरे युवक ने कहा 'चल सोते हैं बहुत रात हो गई है।'

'हूँ।' युवक ने मानो नींद में ही कहा और बढ़कर लाइट का स्विच ऑफ कर दिया।

बूढ़ा बीच के दरवाज़े से होकर उस हिस्से में आ गया जो युवक का हिस्सा है, जिसमें बूढ़ा बरसों बाद आया है। बूढ़ा एक एक चीज़ को देख रहा है मानो युवक की ज़िंदगी को महसूस करने की कोशिश कर रहा है। उस एकांत को जो युवक ने इस हिस्से में जिया है। वही एकांत जो बूढ़े ने मकान के अपने वाले हिस्से में लिया है। एक ही मकान के दो हिस्सों में जिये गये दो एकांत। मगर युवक का एकांत ज़्यादा एकाकी है। बूढ़ा समय के एकांत को जी रहा है और युवक श्राप के एकांत को। कमरे के एक कोने में एक छोटा सा पलंग है। बूढ़े ने पलंग को देखकर ठंडी साँस छोड़ी और उस तरफ बढ़ गया। बिस्तर को छुआ तो उसे लगा कि युवक की देह अभी भी वहाँ है। चादर के साथ बिछी हुई। एक एक सलवट एक सवाल की तरह उस देह

© Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से लिपटी हुई है। बूढ़े ने झुककर बिस्तर को सूंघा, बिल्कुल युवक की ही तरह गंध है इस चादर में तो। बूढ़ा एक कोने में बैठ कर चादर को सहलाने लगा। अब बूढ़ा बाक़ायदा रो रहा था। रो रहा था बिना कोई आवाज़ किये। कब से रोना चाहता था वो। रोना चाहता था युवक के पास, इसी प्रकार बैठकर उसे सहलाते हुए। कब से चाहता था कि उस बीच के दरवाज़े को पार करके इधर आ जाए। बूढ़ा बहुत देर तक उसी तरह बेआवाज़ रोता रहा। फिर चादर को सहेजने लगा। एक एक सलवट को आहिस्ता से मिटा रहा है। जैसे सलवट न होकर घाव हों ये। घाव, जो करवट करवट बने हों। चादर को ठीक करके धीरे से लेट गया उस बिस्तर पर बूढ़ा। हाथों का सिरहाना बनाकर। आँसू नींद में बदलने लगे।

सुबह बूढ़े की नींद कुछ जल्दी ही खुल गई। रात को देर से सोने के बाद भी। एक तो बरसों बाद जगह बदल कर सोया था सो नींद नहीं आई। दूसरा सुबह बटाईदार से बात करने की हुलफुलाहट भी थी। धीरे से दरवाज़ा खोलकर इस तरफ आया तो देखा दोनों सो रहे हैं अभी तक। युवक को तो जल्दी उठने की आदत है। रात को देर से सोने के कारण नींद नहीं खुली है शायद। बूढ़ा चुपचाप अंदर चला गया। अंदर जाकर कुछ देर तक खटर पटर करता रहा। थोड़ी देर बाद लौटा तो उसके हाथ में एक प्लेट थी जिसमें टोस्ट रखे हुए थे। जब वो लौटा तो दूसरा युवक जागा हुआ पलंग पर बैठा था।

'अरे, मैंने जगा दिया तुमको।' बूढ़ा कुछ अपनत्व के स्वर में बोला।

'नहीं नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है, उठना तो था ही।' दोनों की आवाज़ें सुनकर युवक की नींद भी खुल गई।

'चलो मुँह धोकर नाश्ता कर लो। तब तक मैं बटाईदार से बात कर लेता हूँ, होगा तो आज ही चला जाऊँगा, देर करने से भी क्या मतलब।' हाथ की प्लेट को पलंग के पास रखे स्टूल पर जगह बना कर रख दिया बूढ़े।

'मैं भी चलूँ आपके साथ ?' दूसरे युवक ने पूछा। 'इस बहाने कुछ घूमना भी हो जायेगा और उस बटाईदार से कुछ ठहराव भी कर लूँगा। आपको तो सीधा समझ के ठग लेगा वो। अच्छी तरह से सारी बातें कर लेंगे उससे कि कब और क्या क्या होना है, और कब कब क्या क्या देना है। बाद में कोई लफड़ा नहीं हो।'

'चलो उसमें क्या है, मुझे भी साथ हो जायेगा, अब इस उमर में तो भागदौड़ से परेशानी होती है, तुम रहोगे तो मुझे बात करने में भी आसानी हो जायेगी। चलो मुँह हाथ धोकर नाश्ता कर लो। जब तक तुम नहाओगे तब तक खाना तैयार हो जायेगा। खाकर निकल पड़ेंगे।' बूढ़े ने अपनी सहमति प्रदान करते हुए कहा। बूढ़े के कहते ही दोनों युवक अंदर चले गये।

'क्या.... ?'

'कब.... ?'

'कैसे.... ?'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'पर अभी उस दिन तो अपनी बात हुई थी, तुमने कहा था.... ।'

'पर ये हुआ कैसे ?'

'अचानक ही ?'

'तुमने मुझे बताया भी नहीं।'

'पर बताना तो था न, मैं तो.... ।'

'और कोई ?'

'हाँ वो तो पता है।'

'फिर भी।'

दोनों युवक अंदर आँगन में नल पर मुँह हाथ धो रहे थे, जहाँ बूढ़े की ये आवाज़ पहुँच रही थी। दोनों जल्दी जल्दी मुँह पोंछते हुए कमरे में आये। उन्होंने देखा कि बूढ़ा पलंग पर सिर झुकाए बैठा है। हताश और टूटा हुआ।

'क्या हुआ ?' युवक ने घबरा कर पूछा। बूढ़े ने कोई जवाब नहीं दिया।

'बताइये न क्या हुआ ?' दूसरे युवक ने बूढ़े का कंधा हिलाते हुए पूछा। बूढ़े ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया। उसी प्रकार सिर झुकाए बैठा रहा। दोनों युवक बात को समझ नहीं पाने के कारण परेशानी में डूबे हुए थे कि आख़िर हो क्या गया है।

'बताइये तो सही क्या हुआ है ?' युवक ने आवाज़ को कोमल करते हुए पूछा। युवक के प्रश्न पर बूढ़े ने सिर उठाया, उसका चेहरा ज़र्द पड़ा हुआ था, निचला होंठ काँप रहा था और नाक के नथुने भी थर्रा रहे थे। युवक ने जब ये सब देखा तो और घबरा गया। बूढ़े के कंधे पर हाथ रखते हुए पलंग पर पास बैठ गया और पीठ पर हाथ फेरने लगा। 'बताइये क्या हुआ है ? इस तरह करने से क्या होगा।' युवक ने फिर पूछा। दूसरा युवक भी बूढ़े के उस ओर बैठ गया और बूढ़े के हाथों को हाथ में लेकर सहलाने लगा।

'क्या हुआ है, क्या बात हुई ? क्या कह रहा था वो ?' दूसरे युवक ने भी कोमल स्वर में पूछा। बूढ़े ने दूसरे युवक का हाथ अपने हाथ में ले लिया। और टूटती सी आवाज़ में बोला 'वो... ।'

'हाँ क्या वो ?' दूसरे युवक ने पूछा।

बूढ़े ने दूसरे युवक के हाथ पर कुछ दबाव बढ़ा दिया और उसी टूटे स्वर में बोला 'वो... । वो औरत भी पिछले हफ्ते मर गई।'

पीसी लैब, सम्राट काम्पलेक्स बेसमेंट
नए बस स्टैंड के सामने
सीहोर, म.प्र.-466001
मोबाइल: 09977855399 फो. 07562-405545

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ओ मेरी नदी...! कहानी

शेखर मल्लिक

साल के पुराने पेड़ों के लंबे तनों के आसपास फैली घनी छायाओं के बीच पत्तों से छन कर आती हुई धूप थी और उन्हीं के बीच कहीं झुरमुट में छुपी कोयल की तेज कूकण्ण्ण् पृष्ठभूमि से आती रेल की सीटी की धीरे.धीरे बढ़ती हुई आवाज... सामने कुछ ही फर्लांग पर बहती हुई लगभग सूखी स्वणरिखा.... चित्त उचाट हो गया है मन में यही है कि, जबकि इस समय नदी को देखने में एक इन्तहाई दर्द है, काश कि इस दर्द में साझीदार वे एक जोड़ी आँखें भी यहाँ और एक मजबूत आवाज बगल से सुनाई देने का भ्रम हुआ, बाबू, चलो... खाली इतने परेशान होने से क्या होगा कुछ जो अच्छा नहीं लग रहा उसे, अच्छा लगने लायक में बदल दो, पिछले कुछ वक्त में जो कुछ हो गुजरा है, उसके ख्याल लावे की मानिंद जेहन में उतरने लगे हैं। नब्ज़ों में खून गर्म हो उठता है, एक भटके हुए गुस्से को काबू में कर मैं सर को झटका देकर आगे बढ़ आया हूँ... पाट के किनारे ऊँचाई पर यह नाम मात्र के अब बंजर खेत बेढंगे से मेड जहाँ बैठकर कहीं-कहीं सुबह लोगों ने पाखाना किया था, उसके सूखे हुए सबूत बिखरे पड़े हैं। ढलान की ऊँचाई, उसी ऊँचाई से नदी को देख रहा मैं। जाती हुई दोपहर के सूर्य की तीखी किरणें नदी के बचे हुए पानी पर तेज कौंध पैदा कर रही हैं... इस नदी के किनारे निर्जनता में हवा के मर्मर को सुनते हुए, कभी उफनती नदी की लहरों का चिंघाड, कभी सरल-प्रवाहित की कल-कल सुनते हुए... मैंने दिन बिताए हैं। आदमी होने का सबक पाया है!

मेरे पाँव नदी की कमजोर, सिमटी, उथली धारा को काट कर उस पार पहुँच गये हैं और मैं नहर के बगल की आशा दी...। नदी अब मेरे सारे राज जानने लगी है ! वह सब भी जो मेरी माँ तक नहीं जानती...., पूरे उत्साह में कह दिया था उस दिन आशा दी को। यह उस दिन कुछ साल पहले की एक शाम थी, जब पहली बार आशा दी ने हँसते-हँसते मुझे कुरेदा था, कि मैं पिछले कई दिनों से हर शाम अकेले कहाँ गायब हो जाया करता हूँ कभी उनसे बताया तो नहीं! स्थानीय ताम्बा-कंपनी का पोंगा सायरन प्रवेश, छुट्टी या पाली बदलने की सूचना देने के लिए बजता है.. ठीक शाम साढ़े चार बजे वाले पोंगे के बाद, मैं साइकिल उठाये, तो कभी पैदल ही, भाग लेता कस्बे के पश्चिम की ओर.... आशा दी हँसी थी, जोर से... अच्छा बाबू, और क्या बातें करता है नदी से ? वो आपको कैसे बताऊँ, वह तो मेरे और नदी के बीच की आपसी बातें हैं !

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं झूठमूठ की दिखावटी अकड़ दिखाते कामगारों को नियत समय पर गेट पर आते-जाते हुए बोला था। आशा दी उसी तरह हँसती रहीं।

आशा दी, उनका पूरा नाम हुआ, आशारानी मंडल। पड़ोस के सोमेंदु मंडल, जिनके पास हम ट्यूशन पढ़ने जाते थे, उनकी इकलौती अनाथ भतीजी थी वह। पश्चिम बंगाल के किसी छोटे से कस्बे से आई थी। वहीं स्कूल कर रही थी। उन्हीं दिनों दीघा यात्रा के दौरान एक सड़क दुर्घटना में माँ-बाबा और एक मात्र छोटे भाई की मृत्यु के बाद यहाँ सोमेंदु सर के घर रहने लगी। और कोई अभिभावक नहीं था। यहीं के सरकारी स्कूल में पहले मैट्रिक, फिर बारहवीं पास कर उन दिनों स्थानीय महाविद्यालय में समाज-विज्ञान में स्नातक, खंड एक की छात्रा थी। पढ़ाई कई बार खंडित होती रही। कुछ पारिवारिक कारणों से। दूसरे, प्राथमिक शिक्षा बंगला माध्यम में हुए रहने से, हिंदी में कुछ समय तक अबोधगम्यता के कारण। जिस पर उन्होंने जल्दी ही विजय पा लिया पर, परिस्थितियों पर उनका सहज बस नहीं था। सोमेंदू सर सरकारी विद्यालय के शिक्षक अवश्य थे, मगर अत्यधिक दब्बू होने की वजह से कुछ ख़ास कर-जोड़ नहीं पाते थे, अपने बड़े परिवार के लिए, जिसमें दो बेटों, एक बेटी, पत्नी, विधवा बड़ी बहन, दो बेरोजगार छोटे भाई भी शामिल थे। यानि उन सबका पेट भी और मन भी....जो कभी भी पूरता नहीं था! और वहाँ भी वे सबसे दबते ही थे!

वरना आशा दी उन दिनों स्नातकोत्तर कक्षा में होती...! मगर उनमें पढ़ाई के लिए गज़ब का जज्बा था....खाना पका रही हो या सफाई कर रही, अपने पाठ्यक्रम का कोई टॉपिक या बिन्दु पर अपने आप से बड़बड़ाती हुई, कंठस्थ कर रही होतीं....। हम तो सोमेंदू सर से बारहवीं तक पढ़े फिर, मैंने इग्नू में कला स्नातक में दाखिला ले लिया....। दी की पढ़ाई भी चल रही। नदी में उस साल के ठीक पहले साल बाढ़ आई थी। स्वणरिखा में बाढ़ हमने कम ही देखी है... सिर्फ़ हरहराकर उफनती नदी देखी है, सावन-भादो-कार्तिक में। मगर उस साल आई थी बाढ़, किनारों पर पूरी उत्तेजना से धक्के मार कर हुंकारती हुई.... स्वणरिखा का ऐसा रौद्र रूप देखने को कहाँ मिलता है...!

मटमैले-गेरू, रंग के पानी में सफ़ेद फेन और विविध वनस्पत्तियों, जलकुम्भियों के अलावा चारपाई, कपड़े-हांड़ी, गथरी.... कई तरह की घरेलू सामग्रियाँ.... आदि भी डूबते-उतरते बहे चले जा रहे थे... किनारे पर बसे किसी गाँव को डुबो दिया था नदी ने... बाढ़ के रूप में नदी अपना शक्ति-प्रदर्शन करती है। यह उसके यौवन की उत्तेजना है... चिर-कुँवारी रजस्वला होती है। फिर सागर-पुरुष से मिलन के वह जुलाई-अगस्त का महीना था, उन्नीस सौ सत्तानब्बे! उसके बाद फिर ऐसा नहीं दिखा... और अब तो दस ही वर्षों बाद बारिश बिना सूख रही है यह... नदी जब उफान पर होती थी, पुराना जर्जर पुल समूचा और वह विशालकाय हाथी-पत्थर तक अधडूबा हो जाता था... खूब सारा फेनिल पानी किनारों पर थपेड़े खाता... जब बरसात के दिनों और बाद में भी, जब पानी से भरी-पूरी नदी मार किलकारी बहती... नए बने घाट की सीढियों पर मैं खतरे की हद तक, सबसे निचली पायदान पर खड़ा, अपने पैरों पर नदी की लहरों की थापें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महसूस करता... जबकि मुझे तैरना नहीं आता, सो वहाँ कदम फिसलने का मतलब तेज धार में गिरकर डूबना ही था! आशा दी यह सब नहीं जानती थीं, और तब तो वह यह भी नहीं जानती थीं कि, मेरे अंदर और मैं भी तो तब नहीं जानता था कि, दी, जो कि बाहर, दूसरे प्रांत से आई थी, के भीतर भी यह नदी कितनी... क्योंकि तब तक, आशा दी के साथ तभी नदी जाना हुआ था, जब कोई ख़ास दिन हो या मौका।

मसलन पिकनिक के लिए, छठ या मकर संक्रांति पर, या फिर सितम्बर से दिसंबर-जनवरी के खुशगवार महीनों में, जब पं. बंगाल के पर्यटकों की भरी-भरी बसें स्वणरिखा के पश्चिमी किनारे वाले पिकनिक पर आतीं। बच्चों ने पानी, पत्थर और रेत में खूब धमा-चौकड़ी की थी... पश्चिम पार वाले छोर पर जंगली-पहाड़ी नाला जो झरने के रूप में नदी में आ समाता... वहाँ मस्ती करते। धीरे-धीरे इन्हीं दिनों में स्वणरिखा हम दोनों के ही रेशे-रेशे में समाती गई होगी। नदी पर मैंने कुछ अनगढ़ सी भावुक कवितायें भी लिख डाली थीं! जो दी को तब दिखाई थीं, जब एक राष्ट्रीय अखबार के स्थानीय संस्करण में छपी थीं। तब दीदी भी गुनगुनाने लगतीं अपना बुना हुआ कोई गीत! भोरा नोदी, ऐई जोल... सारा जीवोन भेसे जाय रे... आमी देखी शुधु धार तोमारी, सोमोय कोथाय पेरिये जाय रे... समय बीत जाता है, लगातार बहती धारा की तरह... आशा दी तन्मयता से गाती।

बाद में अपने-अपने परिवार के साथ जाने पर भी हम बाकियों से अलग चले आते और अंग्रेजों के ज़माने के उस टूटे पुल पर बैठे हम सांझ को पार उतरते देखा करते। उसी भग्नावशेष पुल के करीब उगे एक छोटे से टीले पर चढ़ और वहाँ बैठ कर मैंने पिछली सहस्त्राब्दी के सूर्य को डूबते देखा था। वही स्वणरिखा इस साल सूखी पडी है, तो मन में हूक उठाती है। मेरा और पड़ोसी सोमेंदू सर का परिवार साथ में कई बार गया था। बंगाल से आया डॉक्टरों का दल... एक डॉ. पूछती है, स्वणरिखा में स्नान, कैसा विचार है! आज भी पश्चिम बंगालवासियों के लिए घाटशिला और स्वणरिखा, पयार्य हैं... यह नदी उन्हें सदा से आकर्षित करती आई है... दूसरा डॉ. कहता है, स्वणरिखा सूखी है, जल नहीं... तब स्थानीय प्रतिनिधि कहता है, कहीं कहीं पर गहराई, वहाँ पानी है, नहाया जा सकता है! इस बीच कहा गया है कि, सूखी है तो क्या, इसकी रेत में सोना मिलता है!

पिछले बरस बारिश नहीं के बराबर हुई, तो यह वर्षा-नदी हत् श्री हो गयी! पाटों के विस्तार के बीच उबड़-खाबड़ ज़मीन, पत्थरों, घास, जंगली झाड़ियों-वनस्पतियों, अनचीन्हें जलीय पौधों और शैवाल, रेत और कीचड़ से भरी हुई... यह तकलीफ़ देता नजारा था। एक कटु सांत्वना है कि, ठीक ही है कि दी अभी यह सब नहीं देख रही है। मगर मैं दी के बिना यह देख कर टूट रहा हूँ! मेरे पाँव नदी-पार वाले उस धीवर बस्ती की तरफ बढ़ रहे हैं... जहाँ, राजू धीवर नामक नए खून का लड़का, मेरा दोस्त बना है, पिछले दिनों... वह मेरी बात पर कहता है, आप ठीक कहते हैं भैया...हम लोगों को ही ना करना है। जैसे रंग दे बसंती में आमिर खान बोलता है कि, जिंदगी जीने के दो तरीके होते हैं... या तो जो हो रहा है उसे चुपचाप सहते जाओ या फिर

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जिम्मेदारी उठाओ और उसे बदल दो!... ऐसा ही बोलता है ना... सही है... जानते हैं, आप तो अभी हमको मिले हैं, और यह सब समझा रहे हैं। पहले यही फिल्म देखकर हम तो जोश से भर जाते थे। हमारा रोम-रोम जोश से खड़ा हो जाता भैया!

यह लड़का बहुत उत्साही है... हमें ऐसे ही लोगों की जरूरत है जो बिना किसी जोड़-घटाव, गुना-भाग के एकदम खालिस उत्साह से भरे हों... प्रदेश की राजधानी राँची के पास पिस्का-नागरी नामक गाँव से निसृत यह नदी छोटानागपुर पठार से लेकर बंगाल की खाड़ी तक के अपने सुदीर्घ विस्तार के बीच, आम जन, आदिवासियों की प्यास, उनके खेतों-मवेशियों की प्यास बुझाती, स्वर्णरिखा, यानि सोने की लकीर! सचमुच सोना देती... आज भी घाटशिला से बहरागोड़ा तक इसके किनारे बसे धीवर-बस्तियों की महिलायें काफ़ी मशक्कत और निपुणता के साथ इसकी रेत से चुनती हैं, फिर चालाक दलालों के हाथों ठगी जाती हैं... जो यहाँ इनसे इनका सोना कच्चा सोना बताकर कौड़ी के दाम मोल ले जाते हैं। और ये लोग हमेशा से दरिद्र के दरिद्र और उस पर सोनाचोरी का लांछन खाकर रह जाते हैं! वहीं का लड़का राजू धीवर... स्वर्णरिखा या सुवर्णरिखा... आह, कितना सुन्दर नाम! किसने रखा होगा! प्रौद्योगिकी की भारी कीमत चुका रही है... देश की बाकी नदियों की तरह इसकी भी धार घोंटी जा रही है... ताम्बा कंपनी के नाले का मुँह नदी में गिरता है, वहाँ का लाल तरल जहर पानी में घुल-मिलने जाता है, और आगे पूरा लाल कीचड़...! ओह आदमी कितना मूर्ख, कितना एहसान-फरामोश, कितना क्रूर हो चुका है.... दुःख से मेरा जिस्म हरारत कर उठा।

आशा दी की हर बात और उनकी फ़िक्र की गहराई मेरे भीतर अत्यंत पीड़ा के साथ है। आशा दी की ज्ञान की भूख का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता था कि, जब मैं सोमेंदु सर के पास कोई सबक कर रहा होता, तो वह दरवाजे की ओट से खड़ी सब सुन और कंठस्थ-मनस्थ कर रही होती! उनकी स्मरण और विश्लेषण की क्षमता गज़ब की थी, और मुझे उन पर सहज ही रश्क तो नहीं, पर खुद पर कोफ़्त जरूर होती... उनके मुकाबले उन्नीस ठहरने पर। वह कई बार मुझसे किसी भी पढ़ाये गये पाठ या विषय पर तर्क करके बड़ी आसानी से पराजित कर सकती थीं... इसलिए मैं अपना गृह कार्य करते हुए, कुछ भूल जाता तो उसी दम उनके पास भागता, मदद के लिए मुँह उठाये। आशा दी के प्रति एक आदर का भाव दिनों-दिन बढ़ता ही गया था उन दिनों अनायास ही। कोई भी सवाल जो मुझसे हल नहीं हो, तो आशा दी का मुँह जोहने लगता था... आशा दी ने मेरे लिए, यानि मेरे सवालों के सही-सटीक उत्तर देने के लिए ही कई सारी चीजें इधर-उधर से ढूँढ कर भी पढ़ी थीं... जैसे एक दिन मैंने गर्मियों के दिन सिमटी हुई नदी के बीच बड़े से पत्थर पर बैठकर उनसे पूछा था, आशा दी, यह नदी कहाँ से निकलती है, आशा दी संजीदा हो गयीं।

उस समय बस इतना कहा, सोमेन, जानी ना... किन्तु ठहरो मैं बताऊँगी तुमको। फिर मुझे तो यह प्रश्न भूल गया, आशा दी नहीं भूलीं! और शायद माह-डेढ़ माह बाद फिर एक इसी तरह की शाम को नदी की रेत पर टहलते हुए, वह शायद किसी अप्रैल या मई का कोई पहला सप्ताह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहा होगा... हम लोग हमारे पालतू खरगोश के शावकों के लिए पाट की हरियाली में से दूब घास चुनने गये थे... तीखी धूप अब ढल चुकी थी, शामें खासी लंबी हो चुकी थीं... आशा दी ने बताया, इस नदी का नाम स्वणरिखा या सुवणरिखा क्यों है मालूम... मैंने ना में मुंडी हिलाई तो दी बोली, इसलिए कि जहाँ से यह निकलती है, माने इसका उदगम है, राँची से कुछ दूर पन्द्रह किलोमीटर दक्षिण की तरफ, पिस्का-नागरी नाम के गाँव से... जहाँ कभी सोना निकाला जाता था... तो इसी कारण से इसको नाम मिला, स्वणरिखा, क्योंकि इसकी धारा में महीन स्वर्ण-कण मिलते हैं... कोई कहता है कि दलमा पहाड़ी, सोनापेट जैसी जगहों से अपरदन के कारण सोने के कण आ मिलते हैं, तो भूगर्भ-विज्ञानियों का मानना है कि तमाड की निचली धार में, पत्थरों से ये कण इसमें आ जाते हैं... आज भी यहाँ से बहरागोड़ा तक की धीवर औरतें काफ़ी मशक्कत से ये कण चुनती हैं... शुद्ध-साफ करती हैं... यह भी इनकी एक कला समझो... बरसों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी ये लोग करती आई। मैंने सामने देखा, जिधर सूर्य डूब रहा था, उसी तरफआशा दी ऊँगली दिखा रही थी, वह है धीवर बस्ती, तुई जानिश कि ना रे! मर्द जाल फेंकते हैं, मछलियाँ पकड़ते हैं, नाव चलाते हैं, और उनकी औरतें, लड़कियाँ बाकि धंधे। दी, क्या सचमुच सोना मिलता है..., मुझमें कौतुक जगा था। वह हँसी, नहीं रे बोका! उतना नहीं मिलता कुछेक कण...सप्ताह-पखवाड़े भर की मेहनत के बाद और फिर बिचौलियों के हाथों ठगी जाती हैं। मैं आश्चर्य से दी को देखा रहा था, आपको कहाँ से इतना मालूम हुआ दी। अरे, तुमने पूछा नहीं था उस दिन... ! तब मैं काकू से पूछी। उन्होंने बताया... फिर उनके साथ धीवर बस्ती भी गई, देखा सब। दी की यही ईमानदारी ने मुझमें उनके लिए आदर की एक पौध रोप दी थी उसी दिन... दी अपनी बात कहते जा रही थी, सोत्ती बोलवोए बाबू! तोमार ऐई प्रोश्नो दारा बेसी भालो लागलो ऐई नोदीर विषये जाना... बाबू, तुम्हारे सवाल के जरिये मुझे इस नदी के बारे में जानना अच्छा लगा!

आशा दी घर लौटकर भी उस शाम, जब हम गर्मी के दिनों में रात के खाने के बाद सोने से पहले घर के पास वाले पीपल के नीचे खटिया डालकर बैठते थे, मुझे देर तक स्वणरिखा की कहानी सुनाती रही, जाने कैसी पोटली से हासिल की थी उन्होंने यह सारी बातें... ! मानों उन्होंने जो कुछ जाना था, उसे मुझ तक पहुँचाना उनका दायित्व हो... या फिर नदी के बारे में बात करना उन्हें भला लग रहा। जानते हो सोमेन, नदी को भी माँ कह सकते हैं... जैसे यह धरती को माँ और आकाश को हमारी संस्कृति में पिता कहा जाता है, वैसे ही... ! स्वणरिखा बहुतों को पोसती है रे.. यह नदी को लेकर मेरी और आशा दी की पहली संजीदा साझी बातें थी, इसका अगला सिरा दूर तक खींचते जाना था... दी बता रही थीं, यह स्वणरिखा पिस्का-नागरी से निकलने के बाद राँची, सरायकेला-खरसावाँ और सिंहभूम जिलों से गुजरती है... तीन प्रांतों को अपनी धारा से बांधने वाली हुई, झारखण्ड, बंगाल और उड़ीसा... हमारे झारखण्ड में ही यही सबसे लंबी है... पश्चिम बंगाल के पश्चिम मिदनापुर जिले में तिरासी किलोमीटर और उड़ीसा के बालासोर में उनासी किलोमीटर लंबी है यह... जानता है, उड़ीसा के ही तलसारी नामक जगह पर यह बंगसागर में जा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मिलती है... यानि दी, यह तो बहुत लंबी नदी है!

हाँ रे, इसकी लम्बाई जानेगा चार सौ सत्तर किलोमीटर होगी...! और बताऊँ, यह पहाड़ी-बरसाती स्वणरिखा ऐसी नदी है, जो किसी की सहायक नदी नहीं बनती, इसकी बहुत सी सहायक नदियाँ हैं खरकाई, काँची... दी ने नदी के बारे में मेरी साधारण सी जिज्ञासा को इतने त्रिस्तार से सुलझाया था कि मैं स्वणरिखा के बारे में और जानने के लिए तैयार और उत्कंठित रहने लगा। जहाँ जिससे भी कोई बात हमें पता चलती, हम उसे कॉपी में लिख लेते और एक-दूसरे को बताते। उफ़, इस नदी से हमें सामान रूप से प्यार होने लगा था, और यह दिनों-दिन समय और उम्र के साथ गहरा होता जा रहा था! मैंने जाना था कि यह नदी वर्षा पर पूरी तरह निर्भर है... यानि जिस साल कम वर्षा होगी, नदी कृशकाय हो जायेगी... नदी का सूख जाना मेरे और दी के लिए अकल्पनीय था...! हम मनाते थे कि, हर साल खूब अच्छी बारिश हो! बारिश के दिनों में जब नदी का पाट चौड़ा हो जाता। हम नदी का पानी देखने जाते। और वह रौद्र रूप देखकर हुलसते... औरों की नहीं जानता, मगर उस भीड़ में मैं और दी, दो लोग तो अपनी खुशी बाँटते थे, आँखों और मुस्कराहट में!

हर बीतता क्षण भी इसकी धाराओं की तरह बहता हुआ इतिहास के महासागर में लीन हो जाता है। दी किसी प्रौढा की तरह कह देतीं। नदी सुन्दर थी...अक्टूबर से मई तक, और रौद्र होती सावन के महीने से दुर्गा पूजा के महीने तक! पुल पर से खड़े होकर देखो तो हर शाम इसके ऊपर आसमान का रंग बदला हुआ नजर आता है। दूर पहाड़ों के पीछे, चोटियों पर जहाँ प्राचीन सिद्धेश्वर शिव मंदिर है, के बगल में सूरज डूबता तो नजारा क्या खूब होता! उन्हीं दिनों, नदी और पर्यावरण में जादूगोड़ा के यूरेनियम खदान के जरिये बढ़ते रेडियोधर्मी प्रदूषण पर एक डॉक्यूमेंट्री दिखाई थी एक समाचार चैनल ने। यह भी देखा कि, जादूगोड़ा के यूरेनियम कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड द्वारा यूरेनियम खदानों से निसृत खतरनाक रेडियोधर्मी रासायनिक कचरा को वहाँ की ज़मीन और अंततः भूगर्भ जल में रिस कर, नदी में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से मिलकर पानी को विषाक्त बना रहा है।

जब ग्रेजुएशन कर चुकी आशा दी ने भारतीय मानवाधिकार संस्थान में मानवाधिकार के पत्राचार पाठ्यक्रम में दाखिला ले लिया था, अपने बूते पर... सोमेंदू सर बढ़ती उम्र हो जाने के कारण ट्युशन पढ़ाना छोड़ दिये थे उसी साल और उनके छात्रों को अब आशा दी पढ़ाने लगी थीं। अपनी पढ़ाई का खर्च स्वयं वहन करने की क्षमता अर्जित कर ली दी ने ! तो उसी डॉक्यूमेंट्री की याद दिलाते हुए बोली, सोमेन... मुझे इसी पर काम करना है। याद आया, दी ने डॉक्यूमेंट्री देखकर मुझसे समझाने के लहजे में कहा था, बाबू, प्रौद्योगिकी आगे विकास का द्वार तो पीछे विनाश का दरवाजा एक साथ खोलती है। यदि विवेक और जिम्मेदारी के साथ यह विकास करो तो ठीक, वर्ना यही विकास पलटवार करता है...। हालाँकि यह एक धीमी प्रतिक्रिया है, पर दूरगामी परिणाम अवश्यंभावी होते हैं। मुझे लगा अब दी अपनी उसी बात का छूटा सिरा वहीं से पकड़ रही थीं, इस नदी को बचाना चाहिए... आदमी थोड़े से स्वार्थ के लिए अंधा हो गया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जानते हो यूरेनियम का यह कारखाना सरकारी उपक्रम है, इस धातु से आयुध तैयार होता है, देश की सुरक्षा के लिए एक बेहद जरूरी संसाधन! मगर सिर्फ़ ध्वंस करने के लिए क्यों .... विज्ञान का उपयोग रचने के लिए होना चाहिए था, किन्तु लोगों ने जो सुन्दर, सजीव है, उसको मिटाने के लिए इसका उपयोग बेसी किया है! मुझे लगा दी भावुक हो गई थीं। लेकिन ठीक भी है! बिना भावुकता के जूनून आता नहीं... बिना भावुक हुए प्रतिबद्धता नहीं आती! फिर दी अपने कोर्स के परियोजना-कार्य के सिलसिले में जमशेदपुर में असित दा से मिली थीं, जो 1975-78 में स्वणरिखा पर चांडिल में बने डैम विरोधी आंदोलन में शामिल हुए थे....मुझे याद है, असित दा, बहुत धीमें बोलते थे... और याद है, उन्होंने सबसे पहले ही यह उल्टा सवाल हम से ही किया- वे बोलते गये, देखो, जो चीजें हैं। उनको थोड़ा समझने की जरूरत है, प्रकृति या प्राकृतिक संसाधन का दोहन करके ही तो हम जीते हैं, लेकिन हर चीज की एक सीमा है ! एक श्लीलता है ! चांडिल डैम का उद्देश्य.... यह आम आदमी के लिए नहीं हुआ है, जैसा कि कहा गया, असल बात, हुआ औद्योगिक जरूरतों की आपूर्ति के लिए! कौन किया ? इस प्रदेश ही नहीं, देश का सबसे बड़ा औद्योगिक घराना! पानी उसे चाहिए, लाखों गैलन... अपने कारखाने की भट्टियों को ठंडा करने के लिए, अपने बोयलर में भाप पैदा करने के लिए! पानी के ऊपर कब्ज़ा, संसाधन पर कब्जा... पूँजीपति वर्ग अपने लाभ के लिए हर उस चीज पर अपना कब्ज़ा जमा लेता है, जिससे वह लाभ कमा सके, अपना हित साध सके, उत्पादन पर नियंत्रण तो हमेशा से उसी के पास रहा है, अब प्राकृतिक रूप से जो उपलब्ध होता है, उस पर। मैंने देखा, दी उनकी बातें अपनी नोटबुक में टांपती हुई, सिर हिलाए जा रही थी, बीच-बीच में सिर उठाकर असित दा के चेहरे को देखती बाहर दोपहर की धूप थी... तभी असित दा का लड़का पसीना पोंछता हुआ, बाहर से बाल्टी में पानी ढोते हुए घर में घुसा, असित दा बोले, देख लो हमारी हालत... पीने के पानी के लिए.... आगे वह शायद बोल नहीं पाए, फिर बोले, बताओ पानी की कहाँ कमी है। थोड़ी दूर पर ही तो मुख्य शहर है, वहाँ ना तो बिजली, ना पानी का अकाल पड़ा है।

जबकि विडंबना देखो, हम यहाँ अभी भी बिजली के मामले में सोलहवीं सदी में जी रहे हैं, और पानी के लिए शायद आज से पचास साल बाद का समय, जब पेयजल का अकाल हो जायेगा! पानी तो प्राकृतिक है, इतना है ! फिर भी हमें नहीं मिल रहा... उस पर भी कॉर्पोरेट का कब्ज़ा हो गया है! पानी भी आम आदमी की पहुँच से दूर। स्वणरिखा पर शाम बदस्तूर ढल रही है... आसमान का रंग बदल रहा है.... मैं धीवर बस्ती के करीब पहुँचा दी फिर से अपने प्रोजेक्ट के काम से चांडिल डैम के विस्थापितों के बीच गई हुई थीं। वहाँ से उनका फोन आया था, सोमेन, मालूम है, मैं कल शिवराम महतो से मिली हूँ! बहुत कुछ उन्होंने बताया है, पूरी तस्वीर मेरी आँख के सामने घूम रही है, जानता है! आकर बताती हूँ। शिवराम जो इस डैम विस्थापितों के लिए लड़ी जाने वाली असरदार पैमाने की लड़ाई नायक रहे थे, और सत्ता और व्यवस्था की प्रताड़ना के चलते विक्षिप्त भी हुए थे..., दवा-दारू के बाद और दोस्तों की बदौलत अभी कुछ ठीक थे। और उसी पुराने आंदोलन की अपने साथियों द्वारा बचाई हुई लौ को फिर से थामने

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लायक हो सके थे। दी ने उनके जरिये जो तस्वीर देखी थी, वह उन्होंने आकर मुझे भी दिखा दी... पहाड़ू महतो उन चार मरने वालों में से एक था, जो उस जोयदा के जुलूस में शामिल थे, और जिनको गिराने के लिए प्रशासन की ओर से पुख्ता इंतजाम किया गया था उस दिन... जब जुलूस थाने के करीब से गुजरा, एक आरक्षी अधिकारी का हाथ हवा में उठा थाए और उँगलियों के इशारे से बताया गया। चार आदमियों को गिराना तय था, ताकि सर उठाने वालों में भय का संचार कर उन्हें हतोत्साहित किया जाय...!

जितने का इशारा हुआ था, गिरे उतने ही! गोली पुलिस ने चलाई थी... और आंदोलन का अगुआ गुनाधर महतो कोलकाता फरार हो गया था...! जबकि इस समय आंदोलन को और तेज करने की जरूरत थी। क्योंकि भीतरघात किया था उसी ने। बुजुर्वाओं से जा मिला था, और आंदोलन टूट गया। डैम वहीं बना... हजारों लोग डूब के विस्तार में अपना सत्तर-अस्सी बीघे पैतृक जमीन खोकर भटकने को मजबूर हो गये। सारे सही कागजातों के बावजूद! पहाड़ू महतो जैसों के आश्रितों का क्या हुआ, अंदाजा भर लगाया जा सकता है! शिवराम महतो तिलमिला उठे थे, पुराने घाव को कुरेदने से। इसी का डर था दी को। मगर फिर संभले तो बोलने लगे, पानी तुमरे हमरे लिए नहीं है। पानी है टाटा कंपनी के लिए, पानी है जिंदल के प्लांट के लिए... पहाड़ू मरा, और तीन मरे, क्या हुआ... बना लिया डैम, गरीब का खून और हड्डी सान के... साला हरामी गुनाधर, नेता बना था उही ने तोड़ा आंदोलन को गद्दार! चांदी का थाली मिला तो उनका कुत्ता बन गया, खूब चाटने को मिला होगा! लड़ाई में अपने साथियों को खोने की पीड़ा डबडबा आई थी शिवराम की आँखों में फिर बाद के दिनों में चांडिल चौक से डैम तक जब एक बड़ा विरोध जुलूस निकला था, कहीं उसकी खबर नहीं आई मीडिया में उसे दबा दिया गया!

प्रशासन ने मीडिया को खरीद लिया था। शिवराम महतो ने तर्जनी उठाकर कहा, लड़ाई में हमने कुर्बानी दी, हारे भी, मगर यह लड़ाई अभी भी खत्म नहीं हुई है, धीमी जरूर हुई, मगर अभी भी जारी है... सोमेन, उस डूब वाले क्षेत्र में किसी को कुछ तो नहीं मिला... मगर वह ज़मीन इतनी उपजाऊ है, लेकिन वह सिंचाई के लिए, पानी के लिए कोई व्यवस्था नहीं, योजना नहीं... ना विधायक कोष से, ना सरकार की नजरों में... लोग इतने मेहनती हैं, मगर क्या करें आम आदमी के लिए कुछ नहीं है... आशा दी ने कमरे की बत्ती जला दी थी। इसका मतलब दी, यह डैम आम आदमी के लिए बना ही नहीं, यह उनकी अपनी योजना के मुताबिक बनाया गया, अपने हितों के लिए... आम आदमी के सरोकारों से उन्हें क्या मतलब होता! यही उनका असली मकसद था। नदी को नाथ दिया अपने फायदे के लिए! मैं बेचैन हो उठा था, और मेरी जगह कोई भी होता, तो वह भी ऐसा ही महसूस करता।

आशा दी कलम से कागज पर यूँ ही डॉट्स बनाती रही, जैसे कुछ क्षण के लिए अपनी भावनाओं को नियंत्रण में कर रही हो और जानता है, लौटते समय मैंने एक जगह क्या देखा बालू के ठेकेदारों के छः-सात कोप्लिंग लगातार चौबीसों घंटे बालू उठा रहे हैं, पानी से छानकर भी! नदी की तलहटी तक कोंच कर! और ढुलाई वाले ट्रक आ-जा सकें, इसके लिए पत्थर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बिछाकर रास्ता बना दिया गया है... नदी के बीच... नदी कहाँ है, मालूम नहीं पड़ता! ऐसा लगता है, सपाट पथरीली जमीन है कोई! नदी का दम घोंट दिया है... उस रात देर तक छत ताकता मैं लेटा रहा, नींद बहुत देर बाद आई थी मुझे लगता है आशा दी भी ठीक से सो नहीं पाईं। और फिर एक दिन, हम अनायास एक दहला देने वाली सच्चाई से रु-ब-रु हो रहे थे, जिसके बारे में अब तक कुछ सिर्फ़ संचार माध्यमों में देखा-पढ़ा-सुना था। स्वर्णरेखा झारखण्ड के सर्वाधिक उन्नत अयस्क उत्पादन वाले भण्डार-क्षेत्रों से होकर अपना रास्ता तय करती है। इनमें से एक है जादूगोड़ा... जनवरी के उस दिन हम, दी के छात्रों का दल लेकर नरवा पहाड़ पिकनिक गये थे, रास्ते में भाटिन गाँव पड़ा। सोमेंदु सर का कोई पुराना छात्र वहीं का था, और दी को उससे एक किताब वापस लेनी थी सोमेंदु सर की। हम छात्रों को आगे बढ़ने को कह कर गाँव में घुसे... इस तरह के गाँव अब शायद कम ही रह गये हैं। किसी अवशेष की तरह। मिट्टी से लिपी-पुती स्वच्छ दीवारें, आँगन... चमकती कत्थई खपरैल और फूस की छतें, मडैया और दीवारों पर ख़ूबसूरत रंगोलियाँ, भित्तिचित्र! पेड़ों के सूखे पत्ते बिखरे हुए... जिन्हें बुहार रही थी एक स्त्री। यहीं रजुआ मुंडा मिला, एक पैर से घिसट कर, लगभग रेंगते हुए चलता पास आया था।

आँखें विकृत और होंठ चौड़े-मोटे, एक तरफ झुका हुआ सर। उसके बाबा ने, जो शायद हमें मीडियाकर्मी समझ रहे थे, बताया, हे बेटी, आमार घोरेर बाच्चा रोए आर ऐई ग्रामीण बा पासेर सोब ग्रामे, सोकोल जायगाये ऐई दोशा! आमदेर बाच्चा रोए युरेनियेम विष रेडियोधर्मी जहर खाये पोंगु होए गेछे! एदेर कौनो इलाज नेई... आर आमादेर खोमोता ओ नेय जे ऐरा के कोथाय निए जाय आरोग्य कोराबो बेटी, हमारे परिवार के बच्चे, और इस गाँव और आसपास के गाँवों में, सब जगह यही स्थिति है। हमारे बच्चे यूरेनियम के जहर से विकलांग हो चुके हैं, इनका कोई इलाज नहीं, या हमारी इतनी शक्ति नहीं कि इनको कहीं बाहर ले जाकर स्वस्थ करा सकें। उनका हाथ माथे पर अनायास ही नहीं जाता, आमरा त चाय जे एरा मोरे जाक... मोरे जाय तोबे मुक्ति पाबे...! हम तो चाहते हैं कि ये मर जांय.. मर गये तो ही छुटकारा पाएँगे! एक बाप अपने ही बच्चों के मरने की कामना कर रहा था, या एक लाचार मनुष्य कष्ट भोगते हुए अपने सहजीवियों की मुक्ति के लिए इतना ही कर पा रहा था!

यूरेनियम कम्पनी यूरेनियम संसाधित कर रेडियोधर्मी कचरा जिस लापरवाही से बहा रही थी, जमीन में गाड़ रही थी, वह विभिन्न स्रोतों या भूगर्भ जलस्तर में मिल कर आख़िरकार स्वर्णरेखा में ही जा रहा था... नदी ही नहीं, यहाँ की हवा तक में जहर था। एक पूरी नदी जहरीली हो रही है। जमीन, जल और जमीन, सब कुछ रेडियोधर्मी जहर बुझा हो रहा था। तमाम विरोधों, डोक्युमेंट्री फिल्मों के बावजूद कंपनी प्रबंधन सिर्फ़ टालने और खंडन करने को ही तैयार बैठा था। कंपनी तो स्थिति जानती है। मगर जो लोग तो यहीं के हैं कहाँ जायेंगे, क्या ऐसे परहेज कर सकेंगे, जैसे कम्पनी के अधिकारी स्थानीय बाजार की सब्जियाँ और मछलियाँ नहीं खाते! जबकि आम कर्मचारी भी रेडियोरेक्टीविटी से कैंसरग्रस्त हो रहे हैं। और मामले जब गंभीर हो जाते तो कम्पनी उन्हें वेल्लोर भेजती... जबकि टाटा मेन हॉस्पिटल में कई सालों तक ऐसे मरीजों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के मामले को सिर्फ़ टीबी की शिकायत है कहकर दिखाया जाता रहा था। मगर रेफर किया जाता कैंसर अस्पताल! असलियत को दबाया गया। कम्पनी मैनेजमेंट के साथ स्थानीय प्रशासन भी जानबूझकर सच्चाई छुपाने और लोगों को गुमराह करने में शामिल रहा था... सैकड़ों-हजारों लोग कैंसर, टीबी, नपुंसकता, असाध्य विकलांगता, अवरुद्ध शारीरिक-मानसिक विकास गर्भपात, भ्रूण-विकृतियों का शिकार.... भाटिन, मेचुआ, नरवा-पहाड़, चाटीगोचा, केरुआडूंगरी... कई गाँव चपेट में... आशा दी के चेहरे पर मैंने उस समय एक साथ ही बेचैनी, गुस्सा, आश्चर्य, निराशा और दृढ़ता के भाव देखे। वह क्या सोच रही थीं, यह पूछना सरासर अनैतिक होता!

हम सोमेंदू सर के छात्र से किताब लेकर लौटे तो थे, पर पिकनिक की मन:स्थिति नहीं बन पायी फिर दी और मेरी। बच्चे तो मस्ती करते रहे और दी पूरे समय नदी की ओर मुँह किये रही। यह अचानक हुआ कि, नदी जिंदा रूह बन गई थी, एक जीती-जगती औरत! और यह औरत हू-ब-हू एक माँ की तरह करुणा से भरपूर, मगर स्वयं कारुणिक नज़र आ रही थी... मैं अवाक् था कि, ऐसा कैसे हो सकता है! मगर ऐसा ही... इस सपने में मैं था, और आशा दी थीं। पता नहीं एक ही सपने में दो लोग कैसे एक ही तरह से शामिल थे! दी ने अगली सुबह बताया था कि, पिछली रात उन्होंने भी एकदम यही सपना देखा था! तो सपने में नदी एक श्रीहीन मगर वात्सल्यमयी स्त्री की तरह से सामने खड़ी थी। उसके सफ़ेद आँचल पर फेन और जलकुम्भियाँ झूल रहीं थीं। उसके चेहरे पर एक अजीब सा भाव था, ना वह मुस्कुरा रही थी, ना उदास थी! शायद इन दोनों के बीच का भाव वहाँ था।

मैं दी का हाथ पकड़े विस्मय से उसे देख रहा था। लेकिन क्योंकि सारा पानी दूधिया... मटमैला होते-होते, काला होता जा रहा था! कि उस स्त्री के होंठ हिल रहे थे, मगर हम उसके वे शब्द सुन नहीं पा रहे थे... मैं दी का मुँह देखता, दी मेरा... हम रोमांच से भर उठे। फिर उस स्त्री ने, जो नदी थी, जो इंसानी रूप में तब्दील होकर कुछ कहना चाह रही थी, जो इस साझे सपने में बिल्कुल सच्ची थी, जिसने श्रीविहीन सादे कपडे पहन रखे थे, जिसकी कोई आवाज़ हमें साफ़ नहीं सुनाई पड़ रही थी, एकाएक चीखकर सिर्फ़ कराहा, ,आह! नोंक सी हमारे अंदर पैवस्त होती गई थी... हम सिहर से उठे थे!.... क्या नदी हमें शर्मिंदा नहीं कर रही थी! हम कायर बन रहे हैं... हम लापरवाह क्यों हैं... हमारी जाति इतनी बेशर्म और लालची ही है... हम सपने में भी एक सच के सामने खड़े थे, जो बेतरतीब, भीषण, कटु लेकिन फिर भी सच। और यह कराह बहुत तीखी थी। दी मेरा हाथ पकड़े उसकी ओर बढ़ी थी, लेकिन वह स्त्री फिर से पिघलती हुई पानी में बदलती जा रही थी... उसके पीछे सूर्य डूब रहा था, उसके बीचों-बीच की बड़ी सी वह चट्टान जोरों से हिलकोरे लेने लगी थी... सारे दृश्य व्यतिक्रम में एक दुसरे से गडमड्ड होने लगे थे। और वह पानी में बदल कर बह गई... पता नहीं उस कृशकाय को धरती ही सोख लेगी, क्या वह सागर तक पहुँच पाई पायेगी...

लेकिन इस पानी का रंग पहचानना मुश्किल था ! यह कैसा रंग था, ना मैं, ना दी इसके बारे में कुछ कह पा रहे थे। यह ना तो खून की तरह गाढ़ा लाल, ना गेरू की तरह मटमैला, ना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कत्थई काला! यह कोई अनचीन्हा रंग था... फिर धीरे-धीरे वह धारा सिकुड़ने लगी और इस सपने के भीतर स्वर्णरिखा पूरी तरह सुखकर लुप्त हो चुकी थी, हमारी आँखों के आगे! एक पूरी कि पूरी नदी देश के मानचित्र से गायब हो चुकी थी... अत्याधुनिक उपकरणों और उपग्रह से हासिल किये गये चित्रों से, भूगर्भ शस्त्रियों की तमाम मेहनत के बावजूद नदी का कोई चिन्ह नहीं मिल रहा था। सपना यहीं खत्म हुआ था, यह इसलिए याद है कि तभी दी के यहाँ से सोमेंदू सर की छोटी बेटी तनु आकर कह रही थी, सोमेन दा, दीदी आपना के ताडा-ताडी डेकेच्छे, एक्खुनी...! दीदी ने आपको जल्दी बुलाया है, अभी! फिर ... मैं सकते में था! और दी से कहा तो, वह चुपचाप सुन ली... उनके चेहरे में ऐसा कुछ नहीं उभरा कि मैं जान पाता कि उन्हें भी मेरी तरह कोई आश्चर्य हुआ है... फिर आशा दी कमरे में जाकर अपनी पढ़ाई वाली मेज पर बैठ गई और चुपचाप कुछ लिखने लगी। मैं वापस घर आकर नित्यकर्मों में व्यस्त हो गया। एक बुरे सपने का जैसा डर होता है, जो जागने के बाद भी पीछा करता है, कुछ देर... वैसा ही एक डर मेरे मन में बड़ी देर तक बना रहा और दिल धुक-धुक करता स्वर्णरिखा के पुल से मैं नीचे देख रहा था। जनवरी की शाम थी। हवा खुश्क और ठण्डी। नीचे कहीं-कहीं पानी था, बहने के बावजूद रुके रहने का भ्रम देता और छिटका-छिटका सा... बीच में सूखी रेतए कीचड़, पत्थर...ताम्बा कम्पनी का बिखरा हुआ कचरा भी! और ऊपर आसमान में, आती हुई पूर्णिमा का पूरा होने जा रहा चाँद!

ठहरे हुए पानी के किसी टुकड़े में चाँद का पूरा अक्स दिख रहा था... क्या इस खूबसूरती कि कोई दूसरी मिसाल है कहीं ? जो स्वर्णरिखा पर यह नज़ारा नहीं देखा तो क्या देखा! पूछे कोई बंगाल के पर्यटकों से, कैसे चहक उठेंगे! कहेंगे, भालो, की दारूण छोबि !पुराने पुल पर देखा था, कोलकाता से आया चित्रकारों का दल... ट्राइपोड लगाकर स्वर्णरिखा के पश्चिमांत खड़े पहाड़, नदी की छल-छल धारा, डूबते सूर्य की आभा.... हर दृश्य को कूची से कैनवास पर उभार रहे थे वे! कितनी तल्लीनता, समर्पण से... हाँ पर उन कैनवासों से अधिक अमिट चित्र तो इस मन पर खुदे हैं! आज इन पर प्रकृति की हर एक तंतु को संभाल रखना क्या हमारा फ़र्ज़ हमारी जरूरत नहीं है, सोमेन धरती पर अब तक के सर्वश्रेष्ठ मेधा वाले जीव होने के नाते यह हमारी जिम्मेदारी है- दी कह रही थीं, नदी को बचाना होगा। यह हमें ही करना है, यदि हमने कुछ बिगाड़ा है तो, हमें ही उसे ठीक करना होगा...! इधर भी पिछले कुछ समय से रेत माफियाओं की गतिविधियां जोर पर थीं। अख़बारों में आने के बाद से प्रशासन चौकस हुआ था जरूर, मगर सांठ-गाँठ की परम्परा वाले इस देश में यह चौकसी कितने दिन चलती! लगातार दिन-रात, रेत उठाने वाले ट्रक, ट्रालियाँ... और ट्रेक्टर पर नदी से बालू उठाया जा रहा था। नदी में जगह-जगह रिसते घाव की तरह गंदले पानी के घेरे बनते जा रहे थे... गैर-कानूनी होने पर भी यह बदस्तूर जारी था... दी ने फैसला कर लिया था कि वह इस बार अपने प्रोजेक्ट कार्य के अलावा जमीनी तौर पर कुछ करेगी... दी ने प्रदेश के मुख्यमंत्री और देश के पर्यावरण मंत्री को लिखा था।

सूचना के अधिकार के तहत पूछ लिया कि, स्वर्णरिखा के प्रदूषण के संबंध में क्या कोई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सरकारी तौर पर कदम उठाया गया है यदि हाँ तो कब और उसका अब तक का ब्यौरा, रेत उठाने की परमिट कितनों को निर्गत हुई है, और इसकी सीमा क्या है... नदी परियोजना से संबंधित दस्तावेजों और आंकड़ों की प्रतियाँ उपलब्ध कराने की अर्जी भी दे दी... और दी को कहते सुना, सोमेन, मेधा पाटकर कर सकती हैं, सुन्दरलाल बहुगुणा कर सकते हैं, तो हम और तुम क्यों नहीं। अपने घर को बचाना हो तो बाहर वाले का मुँह नहीं ताक सकते! इस धरती को बचाने के लिए किसी दूसरे ग्रह से तो कोई नहीं आएगा, करना हमें ही है बाबू... दी उस रात देर से घर लौटी थी और वहाँ से आ रही आवाजों से साफ़ हो रहा था कि सोमेंदू सर के परिवार को उनका यह बागियाना रुझान जरा भी नहीं सुहा रहा है। बीते कुछ दिनों से दी की बातों से भी लग रहा था, कि उन पर अब दवाब डाला जा रहा है कि शादी करो और हमें मुक्ति दो... अगली सुबह दी ने बताया कि उन्होंने जो पत्र लिखे थे उसका त्वरित असर यह हुआ है कि, अब स्थानीय प्रशासन से यहाँ नदी के संबंध में सारी गतिविधियों की रिपोर्ट मांगी जा रही है। रेत माफियाओं ने प्रखंड विकास पदाधिकारी और दंडाधिकारी को जितने पर खरीदा है, उसकी वफ़ादारी तो वे लोग चुकायेंगे। पुलिस ने उन्हें यह पूछताछ के लिए ओपी बुलाया था कि, उनका ऐसा पत्र लिखने का आशय क्या है ! वह किस संगठन से जुड़ी हैं। क्या वह किसी राजनैतिक पार्टी से हैं, या विपक्षी पार्टी की हितैषी हैं, जो इस तरह का दुष्प्रचार कर प्रशासन और स्थानीय विधायक को बेइज्जत करना चाहती हैं...!

दी के नक्सलवादी रुझान या उनके चरित्र एवं पृष्ठभूमि की बाबत उलटे-पुलटे सवाल किये गये। दी मूलतः पश्चिम बंगाल की हैं, यह जानकर, उन्होंने इस कोण से कुरेदा कि क्या कभी उनका या उनके किसी सम्बन्धी का संबंध नक्सलवाड़ी या लालगढ़ से रहा है। उन्हें थाने के बड़ा बाबू ने धमकी वाले पैंतरे से कहा था, ऐ लड़की, छिनाल लोग जैसा बाहरी-भीतरी नहिये कर, अभी नहीं बुझा रहा है तो बहुतो तरीके है। आगे से पेपरबाजी-फेफरबाजी नयियो करेगी... नहीं तो... आशा दी ने जीवन में पहली बार ऐसे जलील माहौल में पूरे कपड़े होने के बाबजूद उन घूरती बारह-सोलह आँखों की बीच अपने को नंगा पाया था। ऐसा लोकतंत्र में होना स्वाभाविक ही था, कि जो सही बात करे उसे हर तरह से तोड़ कर अपनी लीक में ले आओ, नहीं आये तो, बहुतो तरीके है। इनके पास...! आशा दी के साथ मैं भी जान रहा था कि अब आगे कदम बढ़ाना चुनौती है। इन दिनों की अखवारों में रिपोर्ट ही ऐसी थी कि जिस प्रदेश का पुलिस कप्तान युवती की देह से बरसों खेलता रहा, उसने जब आवाज उठाई तो उसे ही माफिया डॉन बताकर गिरफ्तार कर लिया गया था, हाल ही में... बगल के प्रदेश में एक अधेड़ महिला ने राज्य के एक मंत्री को उसी के घर घुसकर दिन-दहाड़े मार डाला था, और उसका आरोप था कि यह मंत्री उसकी देह से खेल चुकने के बाद अब उसकी बेटी की देह पर आँख लगा रहा था!...

यहाँ बड़े-बड़े देह-खोर भरे पड़े हैं... हर जगह... दी की चिंता होने लगी मुझे... लेकिन पता नहीं क्या था, शायद नदी के प्रति मोह या सोमेंदू सर के परिवार के सदस्यों के ताने या पुलिस अधिकारी की चुनौती... दी ने अगले ही दिन अखबार के स्थानीय पत्रकार को बयान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिया और तब उनके चेहरे पर आत्मविश्वास की वही तेज कौंध फिर से उभरी थी, जो उस रात के पहले हमेशा थी वहाँ... उन्होंने योजना बनानी शुरू की कि, किस तरह से लोगों में जल और नदी संरक्षण के बाबत जागरूकता लाएगी... मैं जान रहा था कि कागज पर योजना बनाने से कहीं ज्यादा कठिन है, जमीन पर लड़ाई लड़ना! धूल-मिट्टी में चमड़ी का छिलना, घाव बर्दाश्त करना... धूप खाना... खासकर ओपी वाली घटना के बाद साफ़ था कि, उन लोगों का समूचा गठबन्धन हमारे खिलाफ़ खड़ा हो जायेगा। मगर दी तो तय कर चुकी थीं! वह कहती थी, यदि गंगा को बचाने को संगठन है, तो हम क्यों नहीं ऐसा बना सकते। इस तरह उसी रात जमशेदपुर के दोस्तों-कॉमरेड अविनाश कुमार, इप्टा वाली असीमा, गुरमीत कौर और चांडिल में शिवराम आदि से उन्होंने बात की थी, स्वर्णरिखा संरक्षण समिति नाम से एक गैर सरकारी संगठन बना, उसका मसौदा तैयार किया गया... दी साइबर कैफे में जाकर ग्रीनपीस वालों को एक ई-मेल कर आयीं एक जुलूस स्टेशन चौक से नदी तक निकालने की योजना बनायीं गई नदी किनारे, धीवर बस्ती में एक सभा होगी, इससे पहले घाटशिला के सड़क चौराहों दु स्टेशन चौक, अम्बेडकर चौक, कंपनी गेट- पर नुक्कड़ नाटक खेले जाने थे।

दी ने उत्साहित होकर बताया, सोमेन, मुझसे जितना हो सकेगा करूँगी तुई सोंगे थाकबी... मैं उत्साह के चरम पर था, जरूर दी, आप यह पूछ भी रही हैं! दी ने परचा लिखकर मुझे उसकी छायाप्रतियाँ बनवाने दौड़ा दिया। पर्चे में इन कार्यक्रमों की सूचना थी, जिन्हें सार्वजनिक स्थानों पर चिपकाना और बाँटना था...मैं सड़क पर जेरोक्स की दूकान की तरफ निकला और पीछे दी वह गीत गुनगुना रही थी, गाँव छोडब नाहीं जंगल छोडब नाहीं... जमुना सूखी, नर्मदा सूखी, सूखी सुवर्णरिखा। गंगा बनी गंदी नाली, कृष्णा काली रेखा। माटी छोडब... पिछली बीच दोपहर से ही तो टाउनशिप की हवा में कुछ सड़ांध सी फैलती महसूस होने लगी थी... यह अप्रत्याशित शायद नहीं ही था। आशा दी के यहाँ से तेज बकझक की आवाजें बाहर सड़क से होती हुई हमारे घर तक पहुँच रही थीं। दी ने फैसला कर लिया था, और उस फैसले का विरोध बहुत सारे आधार पर हो रहा था। तुझे इसलिए हम लाए थे रांड कि तू एक दिन हमीं लोगों का जीवन खतरा में डाले! हैं रांड, अपना घर का सबको खा गई, ऐहाँ सर्वनाश करने को तुली है... बड़ी भाभी की जलती हुई आवाज़ भी थी, जोदी लीडरी कोरार आच्छे तोबे, घरे थिके। आशा दी गुस्से में शाम की लोकल से जमशेदपुर में अपनी सहपाठिन गुरमीत कौर के यहाँ चली गई तनु से कहला भेजा था, सोमेन, आमी कालके एके बारे आस्बो आमार थाकले एखाने एदेर ओसुबिधा होबे कोथा बुझे राख... तुई एखाने हुशियार थाकवी एरा किच्छुओ कोरते पारे... कारो बिश्सास नेई! मैं अब कल एक ही बार आउंगा। मेरे यहाँ रहने से इन्हें असुविधा होती है। बात समझ लो यहाँ सावधान रहना ये लोग कुछ भी कर सकते हैं, किसी का भरोसा नहीं है।

यानि आशा दी को यह संकेत मिल गया था कि यहाँ उन्हें और मुझे कुछ कर-करा दिया जा सकता था मैं उनसे उस दोपहर जाकर मिल भी नहीं पाया था... चाहता बहुत था कि कम से कम सोमेंदु सर को तो समझा सकूँ... वे इतने समझदार हो कर भी चुप क्यों बैठे हैं... दी क्या

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपने लिए कुछ करने जा रही है मगर चाहकर भी वहाँ नहीं जा सका। सुबह ही माँ ने बताया था कि, पड़ोस में बहुत दिनों से हल्ला है कि, मैं आशा दी को सिर्फ़ मुँह से दीदी मानता हूँ, मन से कुछ और! दोनों जने क्या-क्या करते रहते हैं... इतने निर्लज्ज कि घर के बड़े-बूढ़ों का भान-मान भी नहीं रखते!

अज्ञेय की शेखर एक जीवनी पढ़ने के बाद मैं ऐसी बातों को तवज्जो नहीं दे पा रहा था! दी से कहा तो वह बोली थी, आमी बुझते पारी... किन्तु सोमेन, यदि कुछ चीजों के बिना भी हमारा उद्देश्य अपने रास्ते चल सकता है, और कामयाब हो सकता है, तब हम दूसरों के मुँह भरने को बात क्यों दें। और मेरा मोबाइल जब छीन कर मुझे घर में कैद कर दिया गया, उससे कुछ ही मिनट पहले आशा दी का फोन आया था जमशेदपुर से कि, कॉमरेड अविनाश कुमार ने इप्टा वालों से बात करके सब अंतिम रूप दे दिया दिया है। बस कल सुबह वहाँ से सब चलेंगे घाटशिला... काल केर सोकाल होबे! कल की सुबह होगी! बस यही दी से अंतिम बात थी और इसके थोड़ी देर बाद छुपते हुए तनु आकर खिड़की से फुसफुसाते हुए गिडगिडाई थी, दादा, दी को कल यहाँ आने मत देना... सोमेन दा तुम्हीं रोक सकते हो उन्हें... तनु की बेचैनी मुझपर पर भी तारी हो गई थी, लोग घर आये थे, फोन भी आ रहे हैं... दादा-बऊदी भैया-भावज भी डर कर उन्हीं की तरफ हो गये हैं, और बाबा की बात भी कोई नहीं सुन रहा... मगर इसी के बाद मैं घर में नजरबंद हो गया... मेरे घरवालों को मेरी फ़िक्र का दौरा पड़ गया था... मोबाइल भी ले लिया गया। मैं बंद खिड़की-दरवाजे के कमरे में कैद हो गया! रात बढ़ने के साथ मेरी हालत खराब हो रही थी, रुआंसा हो गया था मैं। आशा दी को रोकना चाहता था मैं, हर कीमत पर जान रही तो लड़ाई लड़ेंगे! मगर मैं कमरे में बिलबिलाने, गुहारने और चीखने के अलावा कुछ भी नहीं कर पाया... रात गुजर गई रात बीत गई थी, मगर मेरे लिए चार दिन बाद सूरज देखना हुआ!

साल भर से ऊपर होने को आया... यह शाम अकेले इस उजाड किनारे पर डूबते सूरज को यहाँ सिर्फ़ मैं देख रहा हूँ... हर तरफ डूबती साँझ का धुँधलका है। आशा दी ढाई महीने अस्पताल में और अब तक घर में अबस पड़ी हैं। ना कुछ बोल पाती हैं, ना लिख पाती हैं बस सुनती हैं और समझती भी हैं या नहीं, क्या जाने... कभी-कभी सिर्फ़ मेरे साथ कमरे में अकेले रहने पर मेरी बात पर कभी-कभी सिर हिला देती हैं, तो लगता है, वह सबकुछ सुन और समझ रही हैं! मगर फिर उनकी दशा देख लगता है, मुझे भ्रम ही हुआ शायद वे पूरी तरह ठीक हो जायें, मगर इसके वास्ते महंगे ईलाज की और इच्छाशक्ति की दरकार है। पहली चीज, जानता हूँ, सोमेंदू सर का परिवार ना चाहेगा, ना करेगा! और दूसरी चीज खुद दी के ही हाथ में है उन्हीं के पास, उन्हीं के भीतर ही तो है! एक शायद उम्मीद को पुख्ता किये हुए है। मालूम है, दी अगर ठीक हो गई तो वह नदी के लिए अपनी लड़ाई को उसी टूटे हुए सिरे से फिर... सूरज जहाँ डूबता है, वहाँ पहाड़ के ऊपर का आसमान गहरे लाल रंग से पुत गया है! उस दिन क्या हुआ था, वह अखबार की रपटों के अलावे जो कॉमरेड अविनाश ने बयान किया था, यह था... सुबह की लोकल से आशा, मैं, नवनीत और हमरे साथी स्टेशन से उतरकर वहीं राजीव चौक पर ओ मेरी नदी नुक्कड़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाटक खेलने लगे थे... लोग जमा होने लगे थे। आशा खुद माइक पर हिंदी और बंगला में गा रही थी और लोगों से सीधे मुखातिब हो रही थी... लोग पहले तो सिर्फ़ तमाशाई मजमे की तरह जुटे रहे, फिर उनमें से कुछ लोग भी हमारे साथ गाने लगे... तालियाँ बजने लगे।

आशा का जोश बढ़ गया था... वह नारे देने लगी... हमने स्थानीय प्रशासन को हमारे कार्यक्रमों खबर दे दी थी... लेकिन अनुमति की प्रतीक्षा नहीं की थी, ना वह मिलने वाली थी और ना ही उससे कोई फर्क पड़ने वाला था। आशा ने तय कर लिया था कि उसी दिन सारे तय कार्यक्रम होंगे। थोड़ी देर में पुलिस की वैन आ गई थी, जो कुछ देर तो खामोश तमाशा देखती हुई लगी, मगर फिर भीड़ में एकाएक धक्का-मुक्की होने लगी और पुलिस की लाठियां चलने लगी, हमें नहीं मालूम की कहाँ से शुरुआत हुई, क्योंकि हमलोग सब अपने नाटक में लगे थे... लेकिन इतना मालूम है कि यह सब पूर्व नियोजित था। यह तुम भी समझते हो जानबूझकर पब्लिक को पहले भडकाया-हडकाया गया। फिर लाठी चार्ज का ढोंग किया गया... मुझे याद है, एक ढेला या ऐसा कोई बड़ा सा पत्थर आशा के सिर में आ के लगा था और वह सिर पकड़ कर बैठ गई थी... मैंने देखा खून उसके माथे से होता हुआ नाक की बगल से बहने लगा था... लोग बदहवास भागने लगे... हमारी पूरी टीम भी उस भीड़ में कुचल गई थी। हम चिल्ला रहे थे, मगर कोई किसी की मदद नहीं कर पा रहा था... जब दस-पन्द्रह मिनट के बाद पुलिस ने तथाकथित रूप से हालत कंट्रोल कर लिया तो, आशा भीड़ के बीच बेहोश पड़ी हुई थी। माथे की चोट से खून बहुत बह चुका था तब तक, और बदन के बाकी हिस्सों से भी खून बह रहा था। कपड़े धूल और खून में सन कर गंदले हो चुके थे... उसके दुपट्टे पर सैकड़ों चप्पलों की छाप पड़ी थीं... वही तो टारगेट थी!

मैं अब धीवर बस्ती में आ चुका हूँ... अब उस दोस्त का मकान ढूँढना है! कॉमरेड अविनाश कहते हैं, लड़ने के लिए संगठन बनाना जरूरी है, संगठन के लिए आदमी के बीच जाना जरूरी है... मैं आदमी के बीच जाना चाहता हूँ... दी के सिरहाने बैठकर कल शाम को कॉमरेड अविनाश की यह बात सुनाई थी, कि लड़ाई को शुरू करना भी आसान नहीं होता, मगर लड़ाई को जारी रखना इससे भी मुश्किल होता है! असली लड़ाई का एक पहलू यह भी है दी... मैंने कहकर उनकी ओर देखा था, दी की पलकें झपकी थीं, यानि दी अपने अंगों पर नियंत्रण फिर से पा रही है...! अरे, उनकी चेतना अभी मरी नहीं! मेरे होंठो पर भी हल्की सी मुस्कान उभर आई थी... मेरा दोस्त अपने घर के बाहर ही एक पीपल के नीचे खड़ा है... मुझे देख उसके मुँह पर मुस्कान आ गई है... और मेरी जबां पर आ रहा है, साथी... हमारे कन्धों पर एक विरासत को बचाने की बड़ी जिम्मेदारी है!...

द्वारा- बी.डी.एस.एल महिला महाविद्यालय,
काशिदा मुख्य मार्ग, घाटशिला, पूर्वी सिंहभूम-832303
झारखण्ड
मो. 09852715924

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''फिर कैसे बात की जाती है? आप जैसे पूछ रहे हैं मैं वैसे जवाब दे रहा हूँ।'' संतोष भी उखड़ गया अब।

''अच्छा!!'' साव सर मन ही मन में सोचे, एक टुच्चे टेम्परारी चपरासी की ये हिमाकत !हमारी बिल्ली हमीं से म्याऊँ ?

चक्रवर्ती मैडम सर से बोलीं, ''सर, आप इसके मुँह मत लगो।''

साव सर संतोष से बोले,''तुम निकलो यार यहाँ से! मुझको तुमसे कोई बात नहीं करनी!''

संतोष भी साव सर को गुस्से से देखता बाहर निकल आया। उससे और अधिक सहन नहीं हुआ था। साली रहे तो रहे नहीं तो छूट जाय ये नौकरी! वैसे भी कौन-सा मजा आ रहा है इसमें?

स्टॉफ एकदम हैरान था-ये कौन -सा संतोष है? वह संतोष, जो हर काम के लिए 'यस सर' के सिवा दूसरा कुछ नहीं बोलता,आज क्या हो गया? उसने इससे पहले कभी भी और किसी से भी इस तेवर में बात नहीं की थी। बड़बड़ाने लगे साव सर।..'साला आज दिन में ही पी-पा के आ गया है लगता है! है बारह सौ रूपट्टी का टेम्परारी चपरासी,लेकिन तेवर तो देखो साले के !हम रेग्युलर लोगों से उलझ रहा है! आखिर है तो सेड्यूल कास्ट का! जात कितना भी छुपाओ, आखिर दिख ही जाती है। प्राचार्य को कहते हैं इस पर जरूर एक्शन ले। निकाल बाहर करो साले को!''

''दिसीज टू मच !ऐसे बात की जाती है टीचरों से ? बद्‌तमीज कहीं का!'' मैडम बोलीं।

''आप प्रिसिपल सर से फोन करो, सर। कम्पलेन करो इसकी। बहुत बढ़-चढ़ के बोल रहा है!''

''आप फोन करो सर। अब्भी के अब्भी!''

और संतोष जब एक हाथ से ट्राइसिकल का पैडल घुमाते अपने घर के रास्ते पर था,उसकी मोबाइल पे प्राचार्य का फोन आ गया,बहुत डाँटते हुए कि काम करना है तो ठीक तरह से करो,ऐसी बद्‌तमीजी नहीं चलेगी। संतोष ने अपने गुस्से के बावजूद इस समय प्राचार्य से माफी मांग ली। कहा सर, अभी अस्पताल से आया था। माँ की तबियत दो दिन से खराब है। इसलिए परेशानी में कुछ ऊँच-नीच हो गया। सर माफकरेंगे। मैं साव सर से भी माफी मांग लूँगा।

...संतोष का मुंडा दरअसल पिछले हफ्ते से खिसका हुआ है,वो भी प्रिसिपल की वजह से! ठीक उसी दिन से जब 'शाला विकास समिति' की बैठक हुई थी,जिसमें गाँव की सरपंच रेशमी नेताम,उप सरपंच गोपाल देशलहरे,मिडिल स्कूल की हेड मिस्ट्रेस काम्बले मैडम और पंचगण आए थे। संतोष पिछले डेढ़ साल से स्कूल में मानसेवी भृत्य के रूप में काम कर रहा है। 1200 रू. महीने पगार पर। वह इस बार अपनी तनख्वाह मीटिंग में बात रखकर बढ़वाना चाहता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

था। उसके वेतन का निर्धारण मुख्य रूप से प्रिंसिपल के ही जिम्मे है,जो सभा की सहमति से बढ़ा सकते हैं। हालांकि उसकी नियुक्ति शाला विकास समिति के अनुमोदन से ही हुई है। ग्राम पंचायत के बाकी सदस्य तो बस अनुमोदन करते हैं। वैसे भी उन्हें स्कूल के मामले से कोई खास लेना-देना नहीं है। बस नाम की समिति है। यों भी सरपंच के करने,देखने और खाने के पचीसों काम पड़े हैं। भला ऐसे बेकार के मामले में उनकी क्यों दिलचस्पी होगी ? और फिर,सरपंच का सारा काम तो उसका पति जोहन करता है। पत्नी तो खाली दस्तखत-मास्टर है। इन सबके बीच यह बात हुई थी। उसने मीटिंग में अपना वेतन थोड़ा-सा बढ़ाने के लिए प्राचार्य को एक हस्तलिखित आवेदन अपनी बेटी दीप्ति के हाथ भिजवाया था..क्योंकि इस समय वह स्कूल के बच्चों की कापियों पर प्राचार्य की सील लगाने में व्यस्त था।

मीटिंग उस समय शुरू ही हुई थी। जैसा कि संतोष को उसके मित्र कृष्णा -जो गाँव का एक पंच है-ने उसे बाद में बताया था।

''ये क्या है ?'' प्राचार्य बड़ी हैरानी से उस एक पन्ने के कागज को देखा था।

'' पापा ह दे हे। बड़े सर ला दे देबे कहिके।''स्कूल ड्रेस पहनी उसकी सांवली बेटी इतना ही बोल सकी थी।

''सर,ये संतोष की बेटी है,पाँचवीं में पढ़ती है।'' काम्बले मैडम ने प्राचार्य को बताया था। बेटी उसका एप्लीकेशन देकर अपनी कक्षा में चली गई थी।

प्राचार्य महोदय आवेदन को पहले मन ही मन में पढ़े थे। फिर हँसने लगे थे, जैसे उसमें कोई बहुत मजेदार बात लिखी हो ! फिर सबको बताया था,''देखो भई, हमारे स्कूल के चपरासी संतोष साहब का लेटर...। लिखता है...।'' वह अपनी हँसी रोक नहीं पा रहे थे। इस हँसी में उनकी थुलथुल देह हिल रही थी।

''ऐसा क्या लिखा है, सर ?'' साव सर ने पूछा था।

'' लो यार, तुम्हीं पढो !'' प्रिंसिपल ने संतोष की चिट्ठी बगल में बैठे साव सर को दे दी थी।

अब सबके चेहरे पर कौतुक भरी मुस्कान थी,ऐसा क्या लिख दिया है छठवीं-सातवीं पढ़े संतोष ने ? जरूर कोई बेवकूफी वाली देहाती बात! तभी साहब इतना हँस रहे हैं!

''सुनिये!'', अब साव सर ऊँची आवाज में उसे ऐसे पढ़ने लगे, जैसे कोई बहुत ही मजेदार चुटकुला हो।

'माननीय महोदय,मैं पिछले अप्रैल से इस विद्यालय में मानसेवी रूप मे 1200 रू. महीने वेतन पर भृत्य का काम कर रहा हूँ। पिछले एक साल से मेरा वेतन यही है। लेकिन आप देख रहे हैं इधर दिनोंदिन महंगााई आसमान छू रही है। मेरे परिवार में माँ को मिलाकर कुल छह सदस्य हैं। मुझको दिये जा रहे वेतन में अब गुजारा बहुत मुश्किल हो गया है। इसलिए महानुभाव

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से निवेदन है कि मेरा वेतन कुछ बढ़ाने की अपार कृपा करेंगे।''

पढने के बाद साव सर के होठों में एक दबी-दबी अश्लील-सी मुस्कुराहट उभर आई थी। बोले थे,''अब तुम्हारे परिवार में छै मेम्बर हैं इसके लिए क्या हम लोग जिम्मेदार हैं?''

इस पर हँस पड़े थे कुछ लोग।

फिर .प्राचार्य बोले थे,''और महंगाई बढ़ रही है तो इसके लिए क्या हम लोग जिम्मेदार हैं? जाओ सरकार को लिखो..प्रधानमंत्री को लिखो। हम लोग क्या करेंगे अगर महंगाई बढ़ रही है तो?''

उन सबके सामने साहब ने उसकी जो फ़ज़ीहत की थी,उसे वह कभी नहीं भूल सकता।

...संतोष को पता है प्रिंसिपल का वेतन लगभग 45000 रु. महीना है। और फिर शाला में करीब 300 बच्चे पढ़ते हैं। सबसे शाला विकास का शुल्क 200 रूपया लिया जाता है। जिसमें से शाला के विकास के नाम पर खर्च करने का अधिकार प्राचार्य को है। वह समिति के अनुमोदन से ,खर्च करता है। यानी कुल 60000रू। इसमें से मेरे लिए 13000रू0 है। गर्मी में चूंकि स्कूल बंद रहते है ,ज्यादा काम नहीं होता,

इसलिए गर्मी के उन दो महीनों के उसे 500रूपए दिए जाते हैं शेष 47000रूपए प्राचार्य खर्च करते हैं, स्कूल के लिए। और कितने कमीशन लेकर खर्च किए जाते हैं यह भी वह जानता है!

तो सभा हँस रही थी। उसके वेतन बढ़ाने के नाम पर।

प्राचार्य बोले थे,''पिछले साल ही तो उसका वेतन सौ रूपया बढ़ाया था,...अब क्या हर महीने बढ़ाऊँ?''

साव सर ने अपनी तिरछी मुसकान मुस्कुराके कहा था, ''सर,कल को तो वो छठवाँ वेतनमान देने की बात कहेगा। आप देंगे ?''

''मैं नहीं बढ़ाने वाला उसकी तनखा। अब क्या हर महीने बढ़ाता रहूँगा। देख भाई, तेरे को जमता है तो कर,नही तो ज्जा! अरे यहाँ कितने ही मिल जाएंगे! शहर में कितने ही स्कूल मास्टर 500-600 में पढ़ा रहे हैं। इसको तो फिर भी हम 1200 दे रहे हैं। क्यों सरपंच महोदया, मैं ठीक कह रहा हूँ ना?' अपनी बात के समर्थन के लिए उन्होंने नाक की नोक पर खिसक आए चश्मे के ऊपर से अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से सरपंच को देखा था।

सरपंच महोदया ने हमेशा की तरह मुस्कुराकर सहमति में अपना पल्लू ढंका सिर हिलाया था।

प्राचार्य का कहना जारी था,''मैं अपने स्कूल का कोई नुकसान नहीं होने दूँगा। संतोष को तो अभी स्कूल की चौकीदारी भी करनी है। देखो, बगल के गाँव अरमरी के स्कूल में पिछले महीने चोरी हो गई। स्कूल में क्या मिलता है?...अधिक से अधिक पंखे,ट्यूबलाइट..या खेलकूद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के सामान! इन साले चोरों का कोई ठिकाना नहीं! मालूम है,जगतरा में चोर पंद्रह अगस्त के ही दिन झंडे वाली रॉड काट कर ले गए...झंडे सहित! इतनी हिम्मत बढ़ गई है! इसलिए हमने सोचा है,संतोष अब रात में चौकीदारी भी करेगा। अब स्कूल के शिक्षकों को तो मैं नहीं बोल सकता रात को चौकीदारी करने को। जो अपने पास उपलब्ध है,उसी से काम चलाना पड़ेगा।क्यों,निषाद जी, मैं ठीक कह रहा हूँ?'' प्राचार्य ने इस बार गाँव के पंच रामेश्वर निषाद से पूछा था।

बुजुर्ग निषाद ने इस पर कहा था,''पर इस बारे में आप एक बार संतोष से पूछ लीजिए,सर।...वो आपको तनखा बढ़ाने को कह रहा है...और आप उसकी ड्यूटी बढ़ा रहे हैं?''

''मगर अपने पास कोई ऑप्शन नहीं है। उसको काम करना होगा तो चौकीदारी करनी पड़ेगी...नहीं तो जा भैया,छुट्टी करा। हम किसी दूसरे को रख लेंगे। बहुत बेरोजगारी है इस देश में। एक खोजोगे दस मिलेंगे,वो भी इससे कम रेट में।...फिर रात को स्कूल में सोना ऐसा कौन-सा भारी काम है? उसको रात भर टॉर्च लेकर घूमते थोडी रहना है? जैसे घर में सोता है,वैसे यहीं सो जाए!..मानलो अगर वो नहीं कहता है तो किसी दूसरे को नियुक्त कर लेंगे!और चार-पाँच सौ में तो गाँव का कोई भी बूढ़ा या अधेड़ राजी हो जाएगा! भला काम ही क्या है?''

जब मीटिंग के बाद प्राचार्य ने संतोष के लिए चौकीदारी भी करने का आदेश निकाला तो वह बिफर गया-''मैं नहीं कर सकता सर दोनों काम! आप किसी और को रख लो। दिन को भी काम और रात को चौकीदारी? ये मुझसे नहीं होगा!''

प्राचार्य ने फिर अपना तर्क रखा था,''अरे यार, तुमसे रात को कौन रोज-रोज चौकीदारी करने को कहता है? वो तो बस नाम का रहेगा। चौकीदारी का मतलब तुमसे रात भर जगवा के कोई चौकीदारी थोड़ी करवा रहे हैं। हफ्ते में दो-एक दिन यहाँ सो जाया करना ताकि लोगों को लगे,हाँ, यहाँ रात को कोई सोता है।''

''अगर कुछ हो गया कल को तो किसकी जवाबदारी होगी?फँसूंगा तो मैं ही न!''

''तुम्हारे ऊपर इल्जाम थोड़ी आने देंगे! अगर चोरी हो गया तो हम तो बैठे हैं न जिम्मेदारी लेने के लिए। सरकार पहले अपने नियमित कर्मचारी को पूछेगी कि प्राइवेट कर्मचारी को? तू उसके लिए बेफिक्र रह।'' प्राचार्य ने फिर उसे समझाने और उसके हमदर्द होने के अंदाज से कहा,''...देख ले भई, तू इतने दिनों से हमारे यहाँ काम कर रहा है इसलिए तेरे को इतना पूछ रहे हैं, नही तो काम करने वालों की कोई कमी है क्या! तू सोच ले तेरे को क्या करना है।''

संतोष चिढ़ गया, नहीं सर, मेरे को नहीं करना है। उसके दिमाग में इस समय वही बात खटक रही थी, हवा में लहराता उसका आवेदन...और बीच सभा उसकी खिल्ली उड़ाता प्राचार्य...। गाँव में कोई भी बात तुरंत फैल जाती है, इस बात को वह बहुत अच्छे से जानता है। उसने सोच लिया कि इतने अपमान के बाद काम नहीं करना है। वेतन बढ़ाने की वाजिब मांग करने पर उल्टे काम का बोझ बढ़ा दिया। साफ है इनको काम कराना नहीं है। रख ले जिसको भी रखना है। वह बाहर निकल गया।उसके दिमाग में इस समय कई बातें थीं। एक तो ये कि ये सरकारी

Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर्मचारी,जिनका काम वह पिछले एक-डेढ़ साल से देख रहा हैं,भला कितना काम करते हैं? अपने दो-तीन पीरियड को तो ठीक से लेते नहीं लेकिन पेमेंट मिलता है तीस हजार-चालीस हजार! ऐसा कौन-सा अनोखा काम कर देते हैं ये? प्राचार्य खुद साला दिन भर कुर्सी तोड़ते बैठा रहता है। चार लाइन का जवाब भी तो अपने मन से नहीं लिख सकता! ऐसा आदमी पैंतालिस हजार पा रहा है! और वह सुबह से लेकर रात तक खटनेवाला सिर्फ1200! सरकारी कर्मचारी होने का मतलब एकदम सुख-सुविधा और आराम। इसमें कोई खलल नही! फिर अपना काम भी कौन सी ईमानदारी का कर रहे हैं ये? स्कूल को मिलने वाले हजारों के फंड में इसका गड़बड़-घोटाला क्या बाकी लोग नहीं जानते? रुपये लेकर कितने ही बच्चों का बेड़ा पार लगाया जाता है। और इसी साल सरपंच के बेटे का केस? साला पूरा डब्बा लड़का सेकंड डिविजन से पास हो गया! क्यों? क्योंकि सरपंच ने एक दिन पूरे स्टाफको मुर्गा खिलाया था, दारू पिलाया था। हम नहीं जानते क्या इनकी असलियत? चुप रहता हूँ। अपनी रोजी-रोटी चलते रहे करके।...उसने सोचा, साला सब जगे ऐसी ही लूट है! उधर सांसद-विधायक अपना वेतन-भत्ता साल के साल दुगुना कर रहे हैं। इस पर कोई कुछ नहीं बोलता ?मरना तो हम गरीबों का है!

संतोष का मन खिन्न हो गया। छोड़ देगा ये नौकरी। मगर करेगा क्या? सोचा कहीं कुछ भी कर लूंगा। पर इतने कम पेमेंट में काम नहीं करूँगा! ऐसी महंगाई के जमाने में आखिर ये होता कितना है?

सोचने को तो सोच लिया था उसने।

...मगर घर का खर्चा?

... बच्चों की पढ़ाई-लिखाई?

..इन बुनियादी सवालों के सामने वह हार गया। फिर उसने स्वीकार कर लिया था कि मान-अपमान हम जैसे लोगों के लिए नहीं है। सोच लिया कि ठीक है रात को स्कूल में सो जाया करेगा...।

इधर वह स्कूल में नियमपूर्वक सोने भी लगा था,मगर आज फिर यह बात हो गई!

अपने घर के आगे बने चौरा में बैठा है संतोष। घर के आगे चौक है जिसके एक किनारे बरगद के नीचे कुछ लौंडे ताश खेलते बैठे हैं। हमेशा की तरह। गाँव का भी साला अजब हाल है! लगता है जैसे सदियों से यहाँ के अधिकांश लोग ऐसे ही निठल्ले बैठे हैं...किसी के दरवाजे पर,तो किसी के आँगन में,या नही तो किसी चबूतरे में। कभी-भी दुर्गा चौक से निकलो तो हर बार यही नजारा- पंद्रह-बीस लोगों का झुंड मक्खियों जैसे झूमे रहते हैं,दिन-रात पासे के खेल में लगे। देखने वाले बढ़ते ही हैं,कम नहीं होते,बल्कि खेलने वाले को और जोश दिलाते रहते हैं- हाँ-हाँ,दुआ! हाँ दुआ! या,शिव मंदिर के पीपलवाले चबूतरे पर ताश खेलते जमे रहते हैं,क्या बूढ़े क्या जवान! और इनकी देखा-देखी स्कूल पढ़ने वाले लड़के भी! यही तो! मैं इसी सब से तो निकलने के लिए स्कूल की नौकरी की है! वरना दिन भर इन लोगों के साथ रहकर तो अपनी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बुद्धि भी साली भ्रष्ट हो जाए!..स्कूल में उसे अपना काम अच्छा लगता है...समय पर स्कूल खोलना...,झाड़-बुहार,घंटी बजाना,ऑफिस का काम करना,रजिस्टर या फाइल यहाँसे वहाँ ले जाना...और सबसे बढ़कर बच्चों के हँसी-खुशी का माहौल,जो उसे पहले गाँव की गलियों में बेकार भटकने से कभी नहीं मिलता था! पर स्कूल में भी आजकल कहाँ चैन मिल रहा है ?उल्टे रात की ड्यूटी पकड़ा दिया साले प्रिंसिपल ने!

संतोष को आज शाम सही में कुछ समझ नहीं आ रहा था। घर में दीप्ति,पायल और अनुराग'-उसके बच्चे- टीवी देख रहे थे।टीवी,जिसमें कोई दूसरी ही दुनिया होती है,बहुत चमकीली,बहुत वैभवशाली और बहुत रंगीन और बहुत खुशहाल, जिससे हमारा दूर-दूर तक कोई लेना-देना नहीं होता..ये एकदम स्वस्थ,भरे-पूरे,खाते-पीते मस्ती करते युवाओं और बच्चों की दुनिया होती है,जिसे देखकर उनकी तरह से ही हो जाने की लालसा जागती है और ऐसा कभी भी न हो पाने के कारण एक स्थायो कुंठा से भर जाते हैं हम। ब्लैक एंड व्हाइट टीवी, जो उसके पिछले काम 'सट्टापट्टी लिखने' के दिनों की कमाई की है, जो साला इधर हर चौथे-पांचवे महीने बिगड़ जाता है,कभी इसके चित्र ऐसे लहराने लगते हैं मानो टीवी ने भांग खा लिया हो!कभी साला फटे बाँस के समान जोर-जोर से ऐसे आवाज करने लगता है मानो बकरे को हलाल किया जा रहा हो! फिर जिसे टाऊइसिकल में लाद कर पास के गाँव के टीवी-मेकेनिक की दुकान में ले जाना पड़ता है।...उसे अभी टीवी का यह शोर बिल्कुल नहीं सुहा रहा था जिसमें कोई मातारानी का भक्त गला फाड़कर भजन गा रहा था।उसके यहाँ ही क्यों, आसपास सबके घरों में अभी इसी का शोर था। संतोष इस घड़ी इस शोर-शराबे से कहीं दूर रहना चाहता था। वह पैदल-पैदल नाले की तरफनिकल आया।

कुछ आगे बस्ती समाप्त होने के बाद खेतों का सिलसिला शुरू हो जाता है। अभी धान की खूब हरी फसल घुटने-घुटने तक है। पानी इस साल अच्छा गिरा है। देखते ही देखते भादो निकल जाएगा, फिर कुंवार बीतते-बीतते फसल तैयार होने को आ जाएगी...।

...संतोष को आज भी इस बात पर जी कचोटता है कि गाँव में रहते हुए भी वह भूमिहीन है। बाप साले ने अपने दारू के चक्कर में तीन एकड़ की जो खेती थी,पी-पाके के बरबाद कर दिया! अपनी औलादों के लिए कुछ नहीं बचाया हरामखोर ने!बड़ा भाई रायपुर में ट्रक-ड्राइवरी कर रहा है,तीज-त्यौहार में घर आ गया तो आ गया। दूसरों को खेती के काम में लगे देखकर हर साल उसका कलेजा दुखता है। हर बार मन से आह निकलती है कि काश! अपना भी कहीं एक-दो एकड़ खेत होता! अपनी दारू के चलते सब औने-पौने भाव में बेच के मर गया डोकरा! अब हम लोग बिल्कुल खाली हाथ है। तीन बच्चों की परवरिश की जिम्मेदारी सर पर है।

"अरे इधर कहाँ चपरासी साहब ?"नाले के मोड़ पर सामने से आ रहा अंजोरी पूछता है। गमछा-बनियान पहने वह साइकिल के कैरियर में हरियर घास काटकर ला रहा है नाले पार के मैदान से। गट्ठर में रस्सी से तेज धार का हंसिया फंसा हुआ है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संतोष उसकी बात का बुरा नहीं मानता। गाँव-घर का संगवारी है। और जब से वह स्कूल में चपरासीगिरी कर रहा है,गाँव के अपने लोग मजाक में यही कहते हैं-चपरासी साहब!

''अइसने घूमे बर निकले हों।'' वह अंजोरी को मुस्कुराकर टालू जवाब देकर खिसकाता है। अब अपनी समस्या वह किससे बाँटे!दो दिन पहले वह सरपंचिन के घर उसे फटकारकर आया था,कि मैं तुम्हारे ही गाँव का बेरोजगार और अपंग आदमी हूँ,तुमको मेरा पक्ष लेना चाहिये तो उल्टा प्रिंसिपल का साथ देती हो!सरपंचिन क्या कहती ?हौ-हौ करके किसी पुतली के समान अपना सिर डुलाती उसकी बात सुन ली, और भूल गई!

जाने क्यों, उसे इस समय किसी से भी बात करने की इच्छा नहीं। लगता है बस चुपचाप कहीं बैठे रहो। वह एकांत खोज रहा था कि अपनी समस्या के बारे में कुछ सोच सके। आज की घटना के बाद तो उसने सोच लिया है,स्कूल का काम छोड़ देगा, लेकिन अमृत-अपनी पत्नी-से क्या कहेगा ?

सांझ धीरे-धीरे उतर रही है। संतोष नाले पर बने पुल पर भी नहीं बैठा। इधर आते-जाते लोग कुछ न कुछ बात करेंगे-यही वो अभी नहीं चाहता था। वह नाले के पार की पगडंडी में बजरी पर चलता हुआ कुछ आगे के महुए के पेड़ के नीचे बैठ गया। उसके काले मोटे तने पर अपनी पीठ टिकाए। सूरज इस बीच क्षितिज के नीचे उतर चुका था, लेकिन आसमान में अभी भी उसकी सुनहली आभा बची थी, कुछ तेज होकर,कि डूबने से पहले मानो अपनी सारी शक्ति झोंकते हुए। सामने के नाले के बाढ़ का मटमैला जल अब सांवला हो चला था। अंधेरा अब इधर गहराने लगा था,और वातावरण में एक खामोशी छा गई थी। अभी केवल नाले के बहाव का शोर है। बैठे-बैठे संतोष का एक मन तो रोने-राने को हो रहा था कि जिंदगी बीत गई इतनी, पर कभी ठीक से सुख नहीं पाया। हर हमेशा तकलीफ, झंझट परेशानी!इसलिए उसके मन में हमेशा उन लोगों के प्रति एक डाह होता है,जो सुखी, तंदुरूस्त और हँसते-खेलते नजर आते हैं..जैसे टीवी के विज्ञापन के लोग। सच में कितनी अलग है इन लोगों की दुनिया हम लोगों की तुलना में! जहाँ रुपया है, सुविधा है आराम है..।

उसने मूल बात पर फिर विचार करना शुरू किया-अब आगे क्या किया जाए! आस-पास की कंपनी या फैक्ट्रीवाले उसे काम देंगे नहीं,उसकी विकलांगता के चलते। जहाँ गाँव के कितने ही लोग जाते हैं। फिर यहाँ से दस-बारह किलोमीटर दूर भी है! शहर में मानलो किसी दुकान में जाता है तो भी बीस किलोमीटर दूर आने-जाने का कष्ट। गाँव में बाहरी छोर पर हीरा सेठ की सब्जी बाड़ी है। गाँव की कुछ महिलाएं वहाँ काम करने जाती हैं। कुछ साल पहले संतोष ने अमृत को भी वहाँ काम करने भेजा था। पर कुछ ही दिनों बाद उसने जाना बंद कर दिया...बाड़ी के मालिक की नजर उसको ठीक नहीं लगी थी। अड़ गई मैं किसी दूसरी जगह निंदाई-कोड़ाई कर लूंगी पर वहाँ नहीं जाऊँगी! गाँव के लोग जानते हैं, सेठ और उसके बेटे हरामी हैं. इसके बावजूद लोग जा ही रहे हैं। उसने तब से भेजना ही बंद कर दिया। अमृत अब

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE 2025 Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मनरेगा या ऐसे ही किसी काम में भले चली जाती है,लेकिन बाड़ी नहीं। ठीक भी है। जानते-बूझते मक्खी नहीं निगली जाती। कुछ और जुगाड़ जमाना पड़ेगा।

और क्या ?

और क्या ?

...वही ? जिसे उसने छोड़ दिया है स्कूल के काम के पहले। जानबूझकर। क्योंकि इसके चलते उसकी आदतें एकदम बिगड़ गई थीं! यारी-दोस्ती निठल्ले,आवारा, जुआरियों, सटोरियों पियक्कड़ों और अपराधी किस्म के लोगों से बढ़ गई थी। घर भी जैसे एक अड्डा बन गया था। खासकर सामने वाली खोली। कमाई थी इसलिए ढक्कन लगभग रोज ही खुलती थी, कभी-भी, दिन हो के रात। घर-आँगन की हवा में दारू की बदबू बसी-सी रहती थी। बड़ी मुश्किल से वह संग-साथ छोड़ पाया। संतोष को फिलहाल वही रास्ता दिख रहा है, परभू के अड्डे में बैठने का काम। सट्टापट्टी लिखने का काम! काम में रिस्क है, पर कमाई भी है। इसी कमाई ने ही तो उसे बिगाड़ दिया था। उसने सुधरने के लिए स्कूल के काम को पकड़ा। परभू तो उसको आज भी बुलाता है। उसका कारोबार अच्छा जम गया है। थाने से उसकी सेटिंग है। थोड़ी-बहुत दिखाने की मारपीट और धर-पकड़ के अलावा और कोई खतरा नहीं।

कुछ नहीं मिलेगा तो फिर से उसी लाइन को पकड़ लूँगा। देखा जाएगा जो होगा। जब साली दुनिया ही भले नहीं रहने देना चाहती तो यही सही! उसने आखिरकार खीझकर सोचा था।

...पर अमृत नहीं मानेगी। उसके लिए तो यही चपरासीगिरी ही ठीक है। भले ही इसमें रुपया नही है,घर का सुख-चैन तो है, और साफ-सुथरे काम होने का गाँव में सम्मान तो है!..देखते हैं...।

...घर पहुँचा तो रात के आठ बजे से भी अधिक का समय हो चुका था। इस समय तक गाँव थोड़ी थकन और आराम की मुद्रा में आ जाता है। लोग खाने-पीने और सोने की तैयारी में लग जाते हैं,खाली चौक-वौक में नयी उमर के छोकरों को छोड़कर। उन्हें मोबाइल में गाना सुनना और लड़कियों से बतियाना जो होता है देर रात तक..।

जाते ही पत्नी ने पूछा,''कहाँ चल दे रहेस ? कब से लइका मन से तोला खोजवावत रहेंव। मुबाइल ला घलो घर में भुला गे रहे!''

उसने थोड़े आश्चर्य से पत्नी को देखा,-''क्यों ? क्या हो गया ?''

अब पत्नी ने जरा कोमल स्वर में बताया,''सुनो न...बड़ा गड़बड़ हो गे। बिलासपुर वाले जीजाजी खतम होगे। अभी उहाँ ले फोन आए रिहिस।''

''अरे ? कब ?'' संतोष को जीजाजी के पिछले कुछ दिनों से बीमार होने की जानकारी थी। पर, इस तरह अचानक... ? वह इस समय अब वो सारी बातें भूल गया जिसको लेकर पिछले दो घंटे से नाले के पास बैठा था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'' अभी एकाध घंटा पहले।'' बेटी दीप्ति ने बतायां।

...मतलब उसे जाना होगा। अमृत को भी ले जाना होगा। सुबह पाँच बीस को दुर्ग से छूटने वाली पैसेंजर से। तब कहीं वो दस-ग्यारह बजे तक वहाँ पहुँच पाएंगे। उसने अपने बड़े भाई को भी खबर कर दी।

वह बिलासपुर जाने की तैयारी में लग गया। स्कूल का ध्यान आया तो उसने पड़ोस के पढ़नेवाले लड़के यशवंत को जाकर बता दिया कि स्कूल में बता देना ऐसा-ऐसा हुआ है, और बिलासपुर गया है करके।

गाँव में रमेसर की टाटा मैजिक किराये से चलती है। रात को ही उसे सुबह चलने के लिए बोल दिया। वे सुबह चार बजे ही घर से निकल गए थे।

उन्हें लौटने में पाँच दिन लग गए। वहाँ दीदी की हालत ऐसी थी, और भांजों ने भी कहा कि इधर सम्हालने वाला कोई नहीं है मामा, पगबंधी तक रूक जाओ... i वह रुक गया था। बगैर कुछ सोचे।

छठवें दिन जब वह काम पर लौटा तो उस दोपहर प्राचार्य का मुँह गुस्से से एकदम लाल था, और फूला हुआ, फूट पड़ने को आतुर, ''कहाँ चले जाते हो यार बिना बताये ? पाँच दिन से तुम्हारी कोई सूचना नहीं है। ऐसी नौकरी की जाती है ? यहाँ सारा काम अटका पड़ा है।'' संतोष ने बताया कि वह स्कूल के दसवीं पढ़ने वाले लड़के यशवंत को आपको बता देने के लिए बोलकर गया था।आपको यकीन नहीं आता तो पूछवा लो।

''कौन लड़का है बुलाओ तो।''

संतोष उसे बुलाने जा रहा था तो उसको रोक दिया,कहा कि मैं बुलवाता हूँ। उन्हें शक था कि ये साला जरूर उस लड़के को पट्टी पढ़ा देगा! प्राचार्य ने खुद नवमी कक्षा के एक लड़के को भेजकर दसवीं पढ़ने वाले यशवंत को बुलवाया।

लड़का थोड़ा डरते हुए आ खड़ा हुआ था।

प्राचार्य ने खुद पूछा,असलियत जानने के लिए, ''देख बेटा, सच-सच बताना नहीं तो सोच लेना... ! संतोष ने तुमको कुछ स्कूल में बताने के लिए कहा था ?''

''जी सर।''

''क्या कहा था ?''

''बोला था,..मेरे जीजाजी का देहांत हो गया है तो मैं बिलासपुर जा रहा हूँ। तुम सर को बता देना।''

'' अबे, तो तुमने मुझको क्यों नहीं बताया ?'' प्राचार्य किसी वकील की तरह जिरह करने लगे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''सर, आप दूसरे दिन नहीं आए थे, तो मैंने कुर्रे सर को बता दिया था।''

''अच्छा! पर कुर्रे सर ने तो मुझको कुछ नहीं बताया। बुलाओ कुर्रे सर को।''

माहौल गरम देखकर स्कूल के कुछ शिक्षक भी वहीं आ गए थे। उनमें से ही किसी ने बताया,''सर, कुर्रे सर क्लास ले रहे हैं।''

''अरे बुलाओ यार अभी। क्लास-व्लास तो होती रहेगी! पहले इसका निपटारा जरूरी हैं!

किसी ने कुर्रे सर को खबर कर दी, वह भकुआए से आ खड़े हुए।

बातचीत की कमान प्राचार्य ने ही सम्हाल रखी थी। उनकी नजर में यह बहुत सीरियस मैटर था। संतोष के झूठ बोलकर छुट्टी लेने की पोल वह सबके सामने उजागर करना चाहते थे, ताकि दूसरे कर्मचारी भी उनसे झूठ बोलकर छुट्टी लेने की हिम्मत न कर सकें!

''क्यों, कुर्रे जी,इस लड़के ने आपको संतोष के छुट्टी लने के सम्बंध में कुछ बताया था?''

कुर्रे सर को तब सहसा ध्यान आया, ''ओहो! सॉरी सर, मैं तो आपको बताना ही भूल गया था। इस लड़के ने मुझको बताया था कि संतोष का जीजा खतम हो गया है और वो दो-चार दिन के लिए बिलासपुर जा रहा है करके। आयम सॉरी सर, इस लड़के ने मुझे चार-पाँच दिन पहले बता दिया था।''

प्राचार्य अब कुर्रे सर के ऊपर झल्लाए, ''यार कुर्रे! आप भी गजब हो! आप पहले बता दिये होते तो इत्ती बात नहीं हुई होती !ठीक है,आप क्लास में जाइये ..और आगे के लिए ध्यान रखिए..!''

''ओ. के. सर...सॉरी सर...।''

सब लोग चले गए। वह फिर संतोष के ऊपर गरम हो गए,'तुमको हमको बताना चाहिये...मेरा नम्बर है तुम्हारे पास।''

''मैंने सोचा सर, आपको खबर मिल गई होगी,इसीलिए... '' फिर कुछ देर रूककर संतोष ने अपने वेतन की चर्चा छेड़ी,''...सर, आज दस तारीख हो गई है...मेरा पेमेंट... ?''

प्राचार्य महोदय अपनी आरामदेह रिवाल्विंग कुर्सी में झूलते हुए बोले,''...हुम्म! इस महीने तुम्हारा पांच दिन एबसेंट है...इसलिए पांच दिन का तुम्हारा वेतन कटेगा!''

क्या बोलता संतोष? चुपचाप अजीब भाव से देखता रहा... कुछ समझ पाने, कुछ न समझ पाने के भाव से।

''ये लो!'' बहुत अहसान के भाव से प्राचार्य की मोटी हथेली उसकी ओर बढ़ी,जिसमें पाँच सौ के दो नोट थे। संतोष ने चुपचाप रख लिए, और सिर झुकाए बाहर आ गया। उसके मन में चल रहा था कि इतने दिनों में मैंने कभी भी बेकार की छुट्टी नहीं ली, और ऐसे दुख का काम

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पड़ने पर भी पेमेंट काट दी! चाहते तो छोड़ सकते थे..इनका क्या नुकसान हो जाता? पर ...। और इस कदर अविश्वास! और इतनी पुलिसिया पूछताछ मानो मैंने उनको धोखा दिया हो!दिन-दहाड़े लूट लिया हो!

...संतोष ने स्कूल का काम छोड दिया है! पंद्रह-बीस दिन हो चुके उसे छोड़े। लोग उसे फिर अक्सर बाजार चौक में परभू साहू के पानठेले के आसपास पाते हैं...कभी सामने गड़े लकड़ी के पटिए पर, या कभी ठेले के बगलवाली अंधेरी-सी कच्ची खोली के अंदर,जहाँ कहने को दो कैरमबोर्ड हैं,जिनके ऊपर बल्ब का तेज प्रकाश गिरता रहता हैं। गाँव के सब लोग जानते हैं,इसकी आड़ में यहाँ जुआ खिलाया जाता है, दारू की अवैध बिक्री होती है, सट्टा लिखा जाता है..।

स्कूल का स्टॉफ एक दिन ऐसे ही उसके बारे में बतिया रहा था।

एक ने कहा,''अपने को मालूम था,साला फिर से वही सब करने लगेगा।''

प्राचार्य बोले,''अरे,बिगड़ी आदत थोड़ी सुधरती है इतनी जल्दी! यहाँ भी था तो कुछ न कुछ गायब होता रहता था...कभी बल्ब,तो कभी कैंची,कभी घड़ी का सेल तो कभी मोमबत्ती..। मुझको लगता है साला वोई टापता रहा होगा!''

''तो उसके सिवा और कौन होगा, सर? हम क्या करेंगे ऐसी सड़ी चीजों का?''

साव सर बोले,''सर, कुत्ते की पूँछ को कितने भी साल पोंगरी में रखो, रहेगी आखिर टेढ़ी की टेढी!''

मैडम लोगों को यह बात बहुत मजेदार लगी, और इस पर वे बेतहाशा हँस पड़ी थीं।

41, मुखर्जी नगर, सिकोलाभाठा
दुर्ग (छ. ग.)
मो0 9827993920

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हवा ने रुख बदल लिया है

सुषमा मुनीन्द्र

दफ्तर से घर लौटे बसंत का मूड एक ठेकेदार से बहस विवाद हो जाने से खराब हो चुका था, ख्याति ने नियमित प्रपंच शुरू कर कसर पूरी कर दी-

'जानते हो आज शरद ने क्या किया-----।'

'सुस्ताने दो ख्याति। यह नहीं होता आदमी दिन भर का थका मांदा आये तो पानी को पूछ लो।'

बसंत के स्वर में विवाद की झुंझलाहट थी।

'पानी चाहिये तो थोड़ा तरीके से कहो न।'

खुद कोई बात कभी तरीके से नहीं कहती लेकिन कहती है तरीके से कहो।

ख्याति तुनक कर रसोई में चली गई। तब बंसत ने वहीं कालीन में बैठ कर पंजा लड़ा रहे पुत्र अगाध और भाई शरद को देखा। शरद हकला कर बोल रहा था। अगाद औड़ जोड़ से .... औड़ जोड़ से...... ।'

हां चाचा, और जोर से ...। अगाध ने दोहराया।

'मुझे नहीं हड़ा सकते। लो मैं हाड़ जाता हूं ----- ठीक----।'

शरद ने पकड ढीली कर अपना हाथ गिरा कर अगाध को जीत जाने दिया।

अगाध ने बसंत को देखा 'पापा मैंने चाचा को हरा दिया।'

इस पर शरद कंधे उचका कर कीक मार कर जोर से हंसा 'दादा, मैं हाड़ गया।'

बसंत ने शरद को निहारा 'अगली बार तुम जीतोगे।'

'मैं छोटे से नहीं जीतता।' शरद गर्दन टेढी कर बसंत को इस तरह देखने लगा मानो वीरता का काम किया है।

बसंत शरद को निहारता रहा। यानि इसे खुद के बड़े और अगाध के छोटे होने का बोध है। बोध है छोटे से जीत जाना वीरता नहीं होती। पर बोध नहीं है अगाध सचमुच जीता है। शरद को खुश करने के लिए ही उसने प्रदर्शित नहीं होने दिया। वह चाचा की उदारता से नहीं अपने शक्ति बल से जीता है। बोला-

'देखिये पापा, चाचा हार गये फिर भी हंस रहे है।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शरद ने दोहराया 'मैं छोटों से नहीं जीतता।'

शरद के साधारण चेहरे में ठहरी अजब मासूमियत जल्दी जल्दी झपकती छोटी छोटी आंखे भाल पर छितराये छोटे-छोटे बेतरतीब केश। ठीक उसकी बेतरतीब जिंदगी की तरह। ख्याति को इस नि:सहाय से कितनी अड़चन है। यह व्यवधान, अड़चन, समस्या, जिम्मेदारी, जो भी है इससे निबाह वैसा कठिन नहीं है जैसा ख्याति ने बना दिया है। शरद बहुत त्रुटि करता है लेकिन उसमें त्रुटियों को समझने स्वीकारने की क्षमता नहीं है। ख्याति शरद को लेकर जो त्रुटियां करती है उन्हें त्रुटि मानने को तत्पर नहीं है।

'अगाध तुम और आस्था, चाचा का ध्यान रखा करो।' कह कर बसंत ने आंखे मूंद ली। और सोफे में उढ़क गया।

अगाध ने जवाब में यह प्रश्न किया 'मम्मी कहती हैं चाचा को मेंटल हास्पिटल भेज देंगी। पापा, चाचा वहां कैसे रहेंगे।'

बसंत जानता है शरद के भविष्य में कितने अनिश्चय हैं। अगाध की बात सुन वह सुस्त हो गया। यही शरद अम्मा की आंखों का तारा था। ख्याति की आंखों में किरकिरी की तरह चुभ रहा है। कैसे दिन आ गये।

बसंत ने दोहरा दिया अगाध तुम और आस्था चाचा का ध्यान रखो। चाचा यही रहेंगे हमारे साथ। यह अगाध के लिये आश्वस्ति है। जबकि शरद को नहीं मालूम स्थिति गंभीर है। जबकि बसंत आज ख्याति से स्पष्ट बात कर लेना चाहता है। बोला।

'अगाध तुम चाचा के साथ लॉन में जाओं और झूला झूलो।'

'मजा आयेगा।' शरद को झूला झूलना खास पसंद है।

ख्याति पानी, चाय ओर बिस्कुट ले आई।

बसंत ने स्पष्ट कहा 'ख्याति, अगाध कहता है तुम शरद को मेन्टल, हॉस्पिटल भेजना चाहती हो। बच्चों से ऐसी बातें क्यों करती हो?'

ख्याति हड़बड़ा गई। यह बात वह खुद थोड़ा माहौल बना कर बसंत से कहने वाली थी। अगाध ने बता ही दिया है तो बात आज ही कर ली जाये।

'जीना हराम होता जा रहा है, इसलिये ऐसी बातें करती हूँ। शरद की बेवकूफियों से मैं तमाम दिन परेशान रहती हूँ। तुम दफ्तर चले जाते हो। तुम्हें शरद के लिये कुछ मेहनत नहीं करनी पड़ती इसलिये तुम्हें फर्क नहीं पड़ता। मुझे पड़ता है।'

'तुम उसकी लाचारी को समझो तो फर्क नहीं पड़ेगा। लेकिन वही नफरत और गुस्सा। शरद तुम्हारी नफरत और गुस्से को समझता है इसीलिये तुमसे दूर-दूर रहता है।'

'दिन भर सिर पर नाच कर तकलीफ देता है लेकिन तुम कहते हो दूर रहता है।'

'उसे भगवान ने इतनी तकलीफ दे दी है, वह क्या किसी को तकलीफ़ देगा।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'तकलीफ़ देता है।'

'तकलीफ़ जो भी है शरद की नहीं तुम्हारी बनाई हुई है। ख्याति बहुत सी तकलीफ़ों, परेशानियों को हम खुद बनाते और बढ़ाते हैं। हमारी परिस्थिति दूसरों से भिन्न ज़रूर है पर शरद जैसा भी है उसका हमारे अलावा दूसरा कोई नहीं है। तुम नौकरों के सामने जितना गुस्सा दिखाती हो सच कहूँ बड़ा अश्लील लगता है। इस तरह तुम माहौल खराब करती हो, अपनी गरिमा भी। अम्मा की तरह धीरज के साथ काम करो तो चीजें आसान हो जायेंगी।'

'अम्मा जैसा धीरज दिखाने का मेरे पास समय नहीं है। उनके पास एक ही काम था। शरद। मेरे पास इतने काम होते हैं। मैं बेवकूफियों के लिये समय नहीं निकाल सकती।'

'पर टफी (कुत्ता) के लिये निकाल सकती हो। उसे पुचकार सकती हो। शरद क्या कुत्ते से बदतर है?'

ख्याति, ग्रामीण मूल के बसंत को कैसे समझाये तंदुरुस्त कुत्ते घर की शोभा होते हैं।

'टफी बेवकूफियां नहीं करता। मुझे लोगों के सामने शर्मिन्दा नहीं होना पड़ता।'

'शरद के कारण होना पड़ता है। ऐसा सोचना दरअसल तुम्हारी बेवकूफी है। तुम शरद के प्रति सहानुभूति रखो, तुम्हें सराहना मिलेगी।'

'इस पागल के कारण जिंदगी तबाह हो गई। सराहना नहीं चाहिये मुझे। सब लोग मेरी किस्मत को तब बड़ा सराह रहे थे कि इतने भले लोग मिले हैं। दहेज की माँग नहीं की। दहेज किस मुँह से माँगते? दहेज लाने वाली लड़की इस पागल को एक दिन न सहन करती।'

बसंत ने तड़प कर ख्याति को देखा। शरद को यह बार-बार पागल कह रही है। तब कोई उसे अधपागल या पागल कह देता था अम्मा तमतमा जाती थीं- शरद दूसरों से कुछ अलग है पर पागल नहीं है। तुम लोग इससे प्रेम न रखो पर इस तरह सताते क्यों हो?

'तुम सहन कर रही हो ख्याति? हमने इसलिये दहेज नहीं माँगा कि शरद की जिम्मेदारी तुम्हें सौंपेगे? तुम ऐसा सोचती हो तो सचमुच बेवकूफ हो। शरद की जिम्मेदारी कौन सम्भालेगा यह बात तब न अम्मा के जेहन में थी न मेरे। शरद को लेकर हम लोगों ने इतना कभी नहीं सोचा जैसा तुम अब सोचने पर मजबूर कर रही हो। मैं और अम्मा इसे इस तरह स्वीकार कर चुके थे कि यह हमें समस्या या अड़चन या जिम्मेदारी कभी नहीं लगा। पागल तो लगा ही नहीं।'

'नहीं लगा यही अड़चन है। पागल को पागल कहूँ, पागलखाने भेजना चाहूँ तो मैं बुरी। ठीक है बुरी सही।'

'पर मैं ऐसा बुरा नहीं हो सकता कि शरद को मेन्टल हॉस्पिटल भेज दूंगा। वह पागल नहीं है।' बसंत ने प्याली जोर से मेज पर पटकी और उठ गया।

अब यही होने लगा है। बात इसी तरह खत्म कर दी जाती है किसी भी बिन्दु पर। शुरू हो जाती है किसी भी बिन्दु से। जब तक शरद है इस बात को खत्म नहीं होना है। बसंत एकाएक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उठ गया तो ख्याति को लगा इस मंदबुद्धि शरद के कारण वह उपेक्षित की जा रही है। यानि इस घर में उसे तभी जगह मिल सकती है जब वह शरद की ड्यूटी बजाती रहे। नहीं सोचा था जीवन में इस तरह अभाव, असंतोष, अपूर्णता भर जायेगी। घर में एक छत्र राज करेगी जैसा बड़ा अरमान लेकर वह इस घर में दाखिल हुई थी। उसकी माँ तब हर आने वाले से बयान करने लगती थीं-

'ख्याति, किस्मत वाली है। बसंत पी.डब्ल्यू.डी. में इंजीनियर है। छोटा भाई शरद अधपागल है। पिता नहीं है। माँ हैं। तीन प्राणियों का छोटा परिवार। दान-दहेज की माँग नहीं। गाँव में तीस एकड़ जमीन है। गाँव, बिल्कुल शहर से लगा है तो शहर ही समझो। शहर में अच्छा मकान बनवा लिये हैं। बसंत को खूब ऊपरी आमदनी होती होगी।---- अधपगले का तो काज-बियाह होगा नहीं। राज-पाट ख्याति का------।'

दिवास्वप्नों को लेकर ख्याति पति गृह आई। शरद विवाह के मायने नहीं जानता था पर उसे बड़े भाई के विवाह की बहुत खुशी थी। हाथ-पैर चारों दिशाओं में झटकाते हुये खूब नाचा। अम्मा, उसे ख्याति के पास लाई 'शरद देखो, भाभी----।'

'भाबीऽऽ---।' शरद का अस्पष्ट स्वर।

ख्याति तब दिवास्वप्नों से लबालब थी। करुणा से शरद को देखती रही-बसंत की तरह विकसित कद काठी लेकिन मानसिक मंदता से पीड़ित। भगवान तुमने इसे ऐसा क्यों बनाया?

अम्मा अक्सर कहने लगीं 'ख्याति तुम शरद की कभी उपेक्षा न करना वरना मेरी हिम्मत टूट जायेगी।'

'अम्मा, मैं आपके धीरज को देख कर हैरान होती हूँ। आप ब्रश में पेस्ट लगाकर किस तरह शरद के पीछे घूमती हैं कि शरद ब्रश कर ले।'

'ख्याति भगवान समस्या देता है तो साहस भी देता है।'

'हाँ, अम्मा। मैं आपकी भावनाओं को समझती हूँ। हम सब मिलकर शरद का ध्यान रखेंगे।'

आश्वासन पाकर अम्मा ख्याति की गुलाम बनकर रहीं कि वह शरद से लगाव विकसित करेगी। ख्याति ने शरद से लगाव विकसित नहीं किया तो उससे परहेज भी नहीं करती थी। दरअसल एक घर में दो दुनिया थीं। एक में अम्मा और शरद, दूसरे में बसंत और ख्याति। दोनों दुनिया में आपसी सामजन्य था। फर्क तब आया जब एक रात अम्मा ने सदा के लिये आँखें मूँद लीं। साँस छोड़ती अम्मा की आँखों में याचना थी-शरद नादान है इसका ध्यान रखना।

बहुत बड़े फर्क के साथ अब जिंदगी सामने थी। अम्मा की दुनिया का प्राणी, ख्याति की दुनिया में घुसपैठ करने लगा। यही वक्त था जब ख्याति ने शरद को जुदा भाव से देखा- शरद सचमुच एक बड़ी जिम्मेदारी है। इस जिम्मेदारी को तब तक ढोना होगा जब तक यह जिंदा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहेगा। अम्मा, शरद के साथ पूरा दिन लगी रहती थीं लेकिन ख्याति के भाव और अर्थ अलग थे।

'शरद लो ब्रश पकड़ो। लो दाँत साफ करो।' ख्याति टूथ ब्रश में पेस्ट लगाकर शरद को पकड़ाने लगती।

'अम्मा को बुलाओ----।' शरद ब्रश न पकड़ता।

वह टूथ ब्रश लिये कुछ देर शरद के पीछे घूमती फिर रसोई में आ जाती। शरद बिना ब्रश किये ब्रेड के बड़े टुकड़े मुँह में भरने लगता। बसंत समझाता 'शरद, शरद बिना दाँत साफ किये खाना बुरी बात है।----- और ब्रेड ऐसे नहीं खाते।---- लो ठसका लग गया न-- जाओ कुल्ला करो---- ख्याति इसे पानी पिलाओ।'

'अम्मा को बुलाओ।' शरद के आँसू बह निकले।

'अम्मा को बुलायेंगे, यदि तुम हमारा कहना सुनोगे।'

'अम्मा को बुलाओ।' शरद कीक मार कर रोने लगा।

'ख्याति, शरद को सम्भालो। मुझे वक्त पर दफ्तर पहुंचना है।' अब ख्याति अगाध और आस्था को स्कूल के लिये तैयार करे कि इस हट्टे-कट्टे को पानी पिलाये, कुल्ला करवाये?

यहीं से ख्याति के विरोध शुरू हुये।

'शरद कोई भी काम करने में इतना समय लगाता है। एक घण्टा पीछे लगे रहकर इसे ब्रश करने के लिये प्रेरित करना पड़ता है। बाप रे। सब अम्मा की गलती। इसे कुछ नहीं सिखाया।'

बसंत बोला 'जो अम्मा ने नहीं सिखाया, तुम सिखा दो।'

'चाहूँ तब भी नहीं सिखा सकती। बचपन में सिखाया जाता तो सीख लेता। अम्मा ने इसे इतना जिद्दी बना दिया है कि यह कुछ नहीं सीखेगा।'

'ख्याति, अम्मा ने शरद के साथ बहुत मेहनत की है। अब तो यह काफी सम्भल गया है तब लुंज-पुंज पड़ा रहता था।'

'अम्मा ने मेहनत की होगी पर सही तरीके से उपचार नहीं कराया। मानसिक रूप से अक्षम बच्चों के लिये स्कूल होते हैं, अस्पताल होते हैं। वहाँ प्रशिक्षण दिलाया जाता तो इसके व्यवहार में अच्छा सुधार हो सकता था। इसकी जिंदगी आसान हो जाती। हमारी भी।'

'ख्याति, अम्मा के पास सीमित साधन थे। मैं नहीं जानता तब ऐसे स्कूल और अस्पताल थे या नहीं। रहे भी होंगे तो हमें ऐसे किसी स्कूल या अस्पताल की जानकारी नहीं थी। हम दोनों भाई छोटे थे तब पिताजी नहीं रहे। अम्मा से अकेले जो सकता था करती थीं। उन्होंने पूरा ध्यान मेरी पढ़ाई और शरद की केयर में लगाये रखा। शरद के कारण वे कहीं आती-जाती नहीं थीं। कोई उसे पागल कहता था, कोई अजूबा, कोई मसखरा। कोई इसकी नकल करता, कोई चिढ़ाता, कोई नाचने के लिये उकसाता और यह जोकरों की तरह झूम-झूम कर नाचने लगता।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह नाचता, बच्चे इसे परेशान करते। अम्मा दुःखी हो जाती थीं। दिन-रात इसके साथ लगी रहती थीं कि कोई इसे परेशान न करे। और सुनो, जितना हो सकता था वे इसे डॉक्टर को दिखाती थीं। तभी यह चीजों को थोड़ा बहुत समझने लगा है। सख्ती न कर हो सकता है अम्मा ने शरद का कुछ नुकसान किया हो पर वे माँ थीं। एक माँ की तरह सोचती थीं। शरद तुमसे वही प्रेम और भरोसा चाहता है जो अम्मा से उसे मिलता था।'

'अम्मा का ले-देकर एक ही मिशन था-शरद। मुझे अगाध और आस्था को पूरा वक्त देना होता है। उनकी पढ़ाई में मदद करनी पड़ती है। फिर बोझ को कोई कब तक ढोये ? शरद ऐसी बेवकूफियाँ करता है कि अगाध और आस्था पर बुरा असर पड़ता है।'

बोझ।

जिसके अक्षम होने का अम्मा ने कभी अफसोस नहीं किया वह ख्याति के लिये बोझ के समान है। शरद की क्रियाओं, चेष्टाओं, गतिविधियों को देखकर अम्मा मोद मग्न हो जाती थीं। ख्याति को खतरा नजर आ रहा है कि अगाध और आस्था पर बुरा असर पड़ता है। वह अगाध और आस्था को शरद से दूर रखती है लेकिन शरद उनसे दूर नहीं रह पाता। उसे बच्चों की संगत अच्छी लगती है। ख्याति, अगाध और आस्था को पढ़ा रही थी। शरद दोनों हाथों में खिलौना पिस्तौल लिये कमरे में आ धमका। शरद को बंदूकें बहुत पसंद हैं। वह बंदूक को मर्दानगी की निशानी मानता है। पिस्तौल को खोलते, बंद करते, नली में ताक-झाँक करते वह देर तक व्यस्त रह सकता है। शरद ने अगाध की कनपटी पर पिस्तौल लगा दी 'खबड़दाड़--- हिलना मत----।'

'नहीं हिलूँगा चाचा।' अगाध ने डरने का अभिनय किया।

'आस्था तुम बी न हिलना---।' दूसरी पिस्तौल आस्था की कनपटी पर।

'चाचा, मुझे मत मारना।' आस्था ने भी डरने का अभिनय किया। ख्याति की त्वचा में चुनचुनाहट होने लगी। बच्चे इस पागल को इतना महत्व क्यों देते हैं ?

'शरद जाओ यहाँ से। देखते नहीं हो ये पढ़ रहे हैं ?'

'भाबी, गोली चला दूँगा।'

'मार डालो हम सबको। तुम बेवकूफ हो।'

'माँ, चाचा बेवकूफ नहीं हैं।' अगाध ने विरोध किया।

'चाचा के ठेकेदार न बनो। अच्छा।'

ख्याति इसी तरह नियंत्रण खोने लगी है।

'अगाद को डाँटती हो। भाबी तुम गंदी।'

शरद, ख्याति की नफरत और गुस्से को समझने लगा है।

'इस पागल की हिम्मत तो देखो, मुझे गंदी कहता है।'

CC-0-Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE 2025-

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'माँ, प्लीज----।' आस्था ने ख्याति को रोकना चाहा।

'आस्था, बहुत चमची न बनो। पढ़ो। इस बेवकूफ का कुछ होना नहीं है। यह तुम लोगों का समय खराब करता है।'

शरद और उसकी बेवकूफियाँ।

बेवकूफियाँ और शरद।

अभी टफी की पूँछ खींच रहा है-----अगाध की नोट बुक फाड़कर नाव बनाने की असफल कोशिश कर रहा है----आस्था की प्रेस की हुई यूनिफार्म से मुंह पोंछ रहा है----- बसंत अपने कमरे में सो रहा है और यह उसकी कनपटी पर पिस्टतौल लगा रहा है, मार डालूँगा----। बसंत का कोट पहन कर दर्पण में छवि निहार रहा है---- कितने इंतजार के बाद अंगूर की बेल में अंगूर का पहला गुच्छा लगा और यह कच्चा तोड़ लाया- देखो अंगूड़---। हद तो अब हुई। इमरती को अपने मुँह में दबा कर टफी को उकसाने लगा कि वह मुँह से इमरती झपटे और खाये। टफी झपटा और इमरती खाने की तत्परता में शरद का ओंठ चबा डाला। शरद का कीक मार कर रोना, टफी का भोंकना। ख्याति की दोपहर की नींद में जबर्दस्त व्यवधान पड़ा। वह जब तक आती अगाध और आस्था, शरद के पास आ चुके थे। अगाध, टफी को पकड़ रहा था, आस्था, शरद के घाव को देख कर रो रही थी। ख्याति चीखी-

'हरामखोर, कुत्ते से कटवाने का इतना ही शौक है तो बताता, मैं कटवा देती। टफी तुझे अच्छी तरह काट ले और छुटकारा मिले----।'

'माँ, चाचा को दर्द हो रहा है।' आस्था रोते हुये बोली।

'चाचा की चमची।' ख्याति का भरपूर वार आस्था की पीठ पर हुआ। 'जा इस पागल को डॉक्टर के पास ले जा। इंजेक्शन लगवा।'

बच्चों ने ख्याति को बेरहम होते देखा था पर यह अब तक का सबसे वीभत्स रूप था।

'माँ, तुम टफी को ले जाओ यहाँ से। मैं चाचा को सम्भालता हूँ।'

अगाध, शरद के रक्त रंजित फूले हुये अधरों को समीप से देखने लगा। ख्याति चीखी-

'अगाध दूर हटो। वहाँ जर्म्स होंगे। इसे मरने दो।'

माहौल बहुत बिगड़ गया। आस्था ने घबराकर बसंत को फोन कॉल किया। तुरंत आया बसंत इतना विमूढ़ अब तक नहीं हुआ था। शरद ने बसंत को घाव दिखाया-

'दादा, मैं टफी को इमड़ती खिला ड़हा था देखो मुझे काटा।'

ख्याति ने मानो उकसा दिया 'सुन लो अपने मुँह में इमरती दबा कर टफी को खिला रहा था। कहते हो पागल को पागल न कहूँ।'

यह पहली बार हुआ जब बसंत ने शरद को जी भर कर पीटा 'क्यों नहीं जीने देता? मर जा तो ठीक----।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बच्चे, शरद का बचाव करते रहे। शरद मार से बचने के लिये बच्चों की आड़ लेता रहा। ख्याति के लिये मानो यह मौका था शरद को पागलखाने भेजने का।

'फिर कहती हूँ इसे पागलखाने भेज दो वरना घर में कुछ घट जायेगा। इसके रहते हम लोग कुछ अच्छा नहीं सोच पाते।'

बसंत की पकड़ ढीली पड़ गई। शरद छूट कर एक ओर बैठ गया। बसंत ख्याति की ओर पलटा 'तुम न अच्छा सोचती हो न किसी को सोचने देती हो। क्या माँगता है यह तुमसे ? खाना, कपड़ा, थोड़ा सा अपनापन ही न।'

बसंत की आवाज रोष और खीझ से फट पड़ी थी।

'खाना, कपड़ा मुफ्त में नहीं----।'

और यह भी पहली बार हुआ जब बसंत ने पूरी ताकत से ख्याति को धुना।

यह हद थी।

यहाँ पर आकर सब कुछ शेष हो जाता है।

लम्बी थी रात और बसंत का दिल भरा हुआ था। उसे अम्मा की आँखों में ठहरी याचना याद आयी। शरद का बेहद डरा हुआ कातर चेहरा याद आया। बच्चों की बेबसी याद आई। अम्मा के जमाने में यही शरद नवाब की तरह रहता था। बसंत की नकल करता था। बसंत ऐसे ब्रश कर रहा है तो वह भी करेगा। बसंत पढ़ रहा है तो वह भी पढ़ेगा। पुस्तक उल्टी पकड़ी है तो क्या हुआ ? दूध पी लेगा कि बसंत पी रहा है। बसंत साहब बन गया है तो उसका कोट पहन कर शरद भी साहब बनेगा।

'दादा, मैं कइसा लग ड़हा हूँ ?'

'शरद तुम कोट पहन कर साहब लग रहे हो।'

शरद आल्हाद में कीक मार कर हँसने लगता।

अम्मा मोद मग्न हो जातीं 'देखो, देखो शरद कितना खुश है।'

ओह----। अम्मा की अरज से, शरद की मासूमियत से छूट पाना आसान नहीं है। शरद न होता तो जिंदगी सचमुच आसान होती पर अपनी जिंदगी को आसान बनाने के लिये इस मासूम से छुटकारा पाना कितना कृतघ्न काम होगा। कुछ चीजें जिंदगी में इस तरह शामिल हो जाती हैं जिनके साथ निभाना भले ही सरल न हो पर न निभाना कठिन होता है। जिंदगी इतनी व्यक्तिगत नहीं होती कि उसमें उस भाई को शामिल न किया जा सके जो मानसिक मंदता से पीड़ित है। पर यह रोज-रोज का ताण्डव। रोज-रोज की मौत। रोज नयी आशंकायें, नये संघर्ष, यातनायें-----।

शरद के लिये कुछ व्यवस्था करनी होगी।

'ख्याति, मैंने शरद की व्यवस्था कर दी है। एक एन.जी.ओ. चित्रकूट में बहुत बड़ा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आश्रम चला रहा है। आरोग्यधाम। आश्रम में कई संकाय हैं। निर्धन बेसहारा को शिक्षा, चिकित्सा, प्रश्रय, रोजगार का प्रशिक्षण दिया जाता है। मानसिक और शारीरिक रूप से अक्षम व्यक्तियों को शरण दी जाती है। मैंने शरद के लिये बात की है।'

ख्याति के खाते का यह अच्छा दिन था 'शरद अपने जैसों के साथ रह कर अच्छा महसूस करेगा। शुल्क क्या देना होगा ?'

'निःशुल्क व्यवस्था है। संस्था को शासकीय-अशासकीय अनुदान मिलता है। लेकिन मेरी कुछ जिम्मेदारी बनती है। मानसिक रूप से मंद ही सही पर शरद आधे का हकदार है। उसके हिस्से का मकान और खेत बेचना चाहता हूँ। जो पैसा मिलेगा संस्था को दान कर दूँगा। शरद की देखभाल अच्छी होगी।'

'आधा हिस्सा----तुम पागल----।'

'अभी तक नहीं हुआ है। ख्याति यह जो तुम कहती हो शरद मुफ्त में खाता है तो वह अपने हिस्से का खाता है। बल्कि अपने हिस्से का बहुत छोटा सा भाग खाता है। खेती-बाड़ी का हिसाब, मकान का किराया हम लेते हैं। यानि हम उसका हिस्सा डकार रहे हैं। वह स्वस्थ होता तो आज उसका परिवार होता। सम्भव है अब तक प्रापर्टी बँट चुकी होती। अब उसका हिस्सा उसे देकर मैं उसकी व्यवस्था कर देता हूँ। शरद चित्रकूट जायेगा। अच्छा खरीददार मिलते ही खेत और मकान बेंच कर पैसा संस्था को दान कर दूँगा।'

'तुम पागल----इस तरह जायदाद बेंचना बेवकूफी है।'।

'बेवकूफी ही सही। शरद शान्ति से रहेगा। तुम भी।'

ख्याति को रात भर नींद नहीं आई। गाँव के खेत अस्सी हजार रुपये सालाना में एक पटेल को दे रखे हैं। गृह जिले के मकान का सालाना किराया एक लाख बीस हजार मिलता है। खेत और मकान बिकता है तो नियमित रूप से मिलने वाली रकम से हाथ धोना पड़ेगा। यह बहुत बड़ा घाटा है। घाटा बचाओ तो शरद से छुटकारा नहीं। अनिश्चय और असमंजस। लाभ और हानि। शान्ति और अशान्ति----। तय करना होगा। कर लिया। शरद को चित्रकूट रवाना किया जाये। सम्पत्ति अभी बिकी नहीं है। कोई जतन कर बसंत को समझा लेगी और सम्पत्ति बचा लेगी।

शरद को भेजा जा रहा है।

शरद विशेष सज-धज के साथ तैयार है। ड्राइवर उसका आवश्यक सामान जीप में रख रहा है। ख्याति ने इस क्षण का बहुत इंतजार किया है। जब यह समय आ गया है उसका साहस नहीं हो रहा है बसंत या शरद से आँखें मिला ले। अपने शयन कक्ष में चुप-चाप सिर झुकाये बैठी है। अगाध और आस्था भीतर-बाहर हो रहे हैं। कभी बसंत को कहते हैं चाचा को न ले जायें कभी ख्याति को कहते हैं चाचा को न जाने दे। शरद खुश है क्योंकि वह नहीं जानता स्कूल भेजने के बहाने उसे घर से निकाला जा रहा है। पर बच्चे जानते हैं चाचा को स्कूल नहीं बल्कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आश्रम भेज कर बेदखल किया जा रहा है। चाचा को इस तरह जाते देख बच्चे रो रहे हैं। शरद से बच्चों का रोना नहीं देखा गया।

'दादा इन्हें बी ले चलो। मेड़े इस्कूल में पड़ेंगे।'

'ये नहीं जायेंगे।'

'बेचाड़े ड़ो रहे हैं।'

'ये नहीं जायेंगे।'

'पापा, चाचा को नहीं भेजिये। चाचा वहाँ कैसे रहेंगे ?'

अगाध यह बात पता नहीं कितने बार दोहरा चुका है।

बसंत जड़वत है।

'मैं माँ से कहती हूँ।' भरी आँखें लिये आस्था ख्याति के पास पहुंची।

पीछे-पीछे अगाध।

'माँ, चाचा को मत भेजो। मैं और अगाध चाचा को सम्भालेंगे। तुम्हें कुछ नहीं करना पड़ेगा।'

ख्याति जड़वत है।

अगाध अन्तिम प्रयास कर लेना चाहता है 'माँ मैं कभी पागल हो जाऊँ तो तुम मुझे भी घर से निकाल दोगी ?'

'पागल हो क्या ?' ख्याति को यही सूझा।

'अगाद------ मैं जा ड़हा हूँ------।' कहता हुआ शरद वहाँ चला आया 'अड़े तुम दोनों ड़ो रहे हो। दादा, इन्हें बी ले चलो।'

शरद के पीछे चले आये बसंत ने दोहराया 'ये नहीं जायेंगे।'

तब शरद ने थोड़ा गौरव से भरकर ख्याति को सुनाया 'भाबी, तुम मुझे पागलखाने जाने को कहती थी। दादा मुझे इस्कूल ले जा ड़हे हैं। मैं पढ़ूँगा। साहब बनूँगा। जीप में बैठूंगा। औड़ तुमसे मिलने नहीं आऊँगा।'

आस्था, शरद के कंधे से लग गई 'चाचा मुझसे मिलने ?'

नहीं। भाबी नाड़ाज होती हैं।।

'चलो शरद।' बसंत अब देर नहीं करेगा।

'पापा, चाचा वहाँ नहीं रहेंगे----।'

'माँ, रोको न----। चाचा चले गये तो मैं तुमसे बात नहीं करूँगा।'

बच्चों की अन्तिम अरज।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'शरद चलो। भगवान के दर्शन करो। देर हो रही है।' बसंत शयन कक्ष से निकल गया।

शरद चल दिया 'भाबी----कब्बी नहीं आऊँगा----।'

ख्याति की आत्मा में सिंहरन हुई–क्या इसे प्रकृति संज्ञान दे रही है यह निष्कासन है ? या कभी नहीं आऊँगा कह कर रोक लिये जाने की उम्मीद कर रहा है ?

दोनों बच्चे शरद के साथ पूजा घर में चले गये। अकेली ख्याति। क्या करे ? जड़वत बैठी रहना चाहती है पर विदा के क्षण सचमुच करुण होते हैं। पत्थर दिल भी थोड़ा दरक जाता है। बहुत झिझक है लेकिन पूजा घर के दरवाजे तक पहुंच ही गई। बसंत भगवान के समक्ष हाथ जोड़कर बुदबुदा रहा है 'शरद की रक्षा करना----। अम्मा मैं शरद का ध्यान नहीं रख सकता----।'

भगवान की तस्वीर और पास में रखी अम्मा की तस्वीर।

तस्वीर को देखकर बसंत हिलक कर रोया।

ख्याति जड़वत। बसंत तो तब नहीं रोया था जब अम्मा ने साथ छोड़ा था। कितने तूफान आये पर ऐसा दीन अब तक न हुआ था। ख्याति की नजर अम्मा की तस्वीर पर गई। अन्तिम याचना आँखों में अब भी ठहरी हुई है–शरद नादान है, इसका ध्यान रखना। तब उसने बच्चों को देखा–रोये तो पहले भी हैं पर आज इनके रोने में दीनता और अभाव दिखता है। देखा शरद को–इतना सताया इसने, लेकिन आज बहुत मासूम लग रहा है। याद आया बसंत का विश्वास–ख्याति तुम्हारे आ जाने से यह घर बहुत सुन्दर हो गया है।

आज यह सुन्दर घर दरकने को है।

याद आई माँ की सीख–ख्याति घर में शान्ति चाहिये तो शरद को अपनापन दो। बसंत तुम्हारे लिये मिट्टी मोल बिक जायेगा।

शरद के जाने से बच्चों और बसंत की जो दशा है, कहाँ रहेगी शान्ति ?

अब तो होगा आक्रोश और घृणा और घुटन।

उफान अपनी हद छूकर बैठने को है या आघात के बाद सम्भलने की स्थिति यही होती है। ख्याति को लगने लगा कुछ गलत हो रहा है।

अनैतिक----- बल्कि अमानवीय-----। अचरज पर ख्याति ने कहा–

'शरद न जाये तो-----।'

बसंत ने अनसुना किया। यह कोई मानवीय बात कर ही नहीं सकती।

'रोको शरद को। नहीं जानती थी इसका जाना दर्द देगा-----।'

ख्याति की ग्लानि पर बसंत को भरोसा नहीं।

'------ बुरा लग रहा है। तुम्हारी यह दशा------बच्चे------शरद तुम नहीं

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जाओगे-----।'

दादा तो ले जा रहे हैं। बैरिन भाभी नहीं जाने देती। शरद ठमक गया 'जाऊँगा।'

अभी नहीं तो कभी नहीं। अगाध स्फूर्त हो गया।

'चाचा, हम लोग बाद में चलेंगे।'

'जाऊँगा। इस्कूल। अब्बी (अभी)।'

'ओ.के.। पापा पैसे दीजिये। मैं और आस्था, चाचा को स्कूल दिखा लाते हैं। और चाकलेट खरीदेंगे।'

बच्चे प्रसन्न हो गये।

बसंत पैसे नहीं देता।

'पैसे दे दो----- मैं देती हूँ।' ख्याति, आल्मारी से पैसे निकाल लाई 'शरद, पैसे तुम पकड़ो। तुम बड़े हो न।'

ख्याति का स्वर इतना बदला हुआ था कि स्वाभाविक जान पड़ता था।

पैसे पाकर शरद प्रसन्न हो गया। 'चलो, चलो। मजा आयेगा।'

अगाध और आस्था के साथ शरद जीप में जा बैठा। बसंत सुस्त होकर दीवार की टेक ले धसक गया। ख्याति का उसके समीप बैठने का साहस न हुआ सो एक दूरी लेकर अपनी जगह पर खड़ी रही-

'दिल से कह रही हूँ, शरद का जाना किस तरह होगा जब जाने लगा तब समझ में आया----- सोच कर कह रही हूँ शरद जाता है तो आत्म ग्लानि मुझे जीने नहीं देगी। शरद के साथ रहना कठित है पर मैं पूरी कोशिश करूँगी चीजें आसान हो जायें-----। मुझे गुनाहगार की तरह मत देखो।----- नहीं मुझे सम्पत्ति नहीं बचानी लेकिन बच्चे मुझे नफरत से देखें, मैं तुम्हारा विश्वास खो दूँ यह नही सहा जायेगा----। और जब अगाध ने कहा माँ यदि मैं पागल हो जाऊँ तो क्या तुम मुझे घर से निकाल दोगी -----तब मुझे अम्मा की भावनायें समझ में आ गईं। बच्चा स्वस्थ हो, न हो पर माँ के लिये बच्चा बहुत जरूरी होता है।---- मुझ पर भरोसा करो-----।'

बसंत इतनी जल्दी भरोसा तो नहीं कर सकता फिर भी वह शान्ति महसूस करने का वक्त था। कुछ इस तरह मानो मौसम विभाग ने चक्रवात आने की आशंका व्यक्त की थी पर अब हवा ने अचानक रुख बदल लिया है।

द्वारा श्री एम.के. मिश्र
एडवोकेट, लक्ष्मी मार्केट
रीवा रोड, सतना (म.प्र.) 485001
मो. 9179513555

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जन्मदाता

कुन्दनसिंह परिहार

गायत्री को उनके आने की जानकारी थी। बीच बीच में फोन आते रहते थे-कभी हरिद्वार से, कभी वृंदावन से, कभी बनारस से। ज़्यादा पूछताछ नहीं करते थे। बस 'आनन्द तो है न ?' बच्चों से बात कर लेते थे। अचानक ही कभी प्रकट हो जाते थे। एक दो दिन रुकते, फिर डेरा समेट कर बढ़ जाते। गायत्री भी उन्हें रुकने के लिए नहीं कहती थी। जैसे आना, वैसे ही जाना। मन में कोई उद्वेग नहीं होता।

इस बार तीन दिन पहले फोन आया था कि गायत्री के शहर में विशाल यज्ञ है। कुछ बड़े सन्त आयेंगे। वे खुद भी एक हफ्ते वहां रहेंगे। यह निश्चित नहीं कि गायत्री के पास कितना रहेंगे, लेकिन कम से कम एक दो दिन ज़रूर रहेंगे। गायत्री के पति समर ने बातया था कि गोल बाजार में बड़ा सा शामियाना लग गया है और यज्ञशाला का निर्माण हो रहा है। शायद उसी में आयेंगे। शहर में दो तीन जगह आयोजन के बैनर भी दिखायी पड़े थे।

कभी दामाद यानी समर फोन उठा ले तो उसी से बात कर लेते हैं। कहते हैं, 'गृहस्थी में आदमी सारी उम्र कोल्हू का बैल बना रहती है। आँखों पर माया की पट्टी और गोल गोल चक्कर। ऐसे ही उम्र चुक जाती है और हाथ कुछ नहीं आता। निवृत्ति में ही सच्चा सुख है। बिना खोये कुछ नहीं मिलता। सांसारिक सुख तो मृगतृष्णा है।'

उसे समझाते हैं कि संसार को तन से भले ही न छोड़ा जाये लेकिन मन से तो छोड़ा ही जा सकता है। हर गृहस्थ को निर्लिप्त होकर अपना कर्म करना चाहिए। काम करें लेकिन आसक्ति रहित होकर, कीचड़ में कमल की तरह।

समर थोड़ी देर उनकी बात सुनता है, फिर फोन गायत्री को पकड़ा देता है, कहता है, 'ये सब बातें आज की ज़िंदगी में कहाँ संभव हैं ? अपने काम में पूरी तरह 'इन्वाल्व' हुए बिना कैसे रहा जा सकता है ?'

गायत्री जवाब देती है, 'उनकी बातें सुनते जाओ। जिन्दगी तो अपने हिसाब से ही चलेगी।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस बार वे नियत दिन पर आ गये। सबेरे-सबेरे ऑटो आकर रुका और दरवाजे की घंटी बजी। गायत्री ने बाहर आकर देखा तो एक दस बारह साल का साधु वेषधारी बालक दरवाजे के बाहर सकुचता सा खड़ा मिला। सामने आटो के भीतर वे बैठे थे। उनका नियम है कि जब तक घर का व्यक्ति प्रवेश करने के लिए प्रार्थना न करे, वे सवारी से नहीं उतरते। गायत्री की प्रार्थना पर वे आटो से उतरे। वे ही गेरूआ वस्त्र, लंबे केश और दाढ़ी। केश लगभग पूर्णतया श्वेत। चेहरे पर खूब प्रफल्लता और निश्चिंतता। साथ के बालक का सिर मुंडित है। समर ने ऑटो का भुगतान कर दिया।

उनके लिए पहले से ही एक कमरा खाली कर दिया था। पूरा कमरा धो कर एक तरफ उनके लिए पूजा- स्थान बना दिया गया था। भीतर आकर वे तकिये के सहारे उठंग कर गायत्री के हाल-चाल लेने लगे। फिर दोनों बच्चों को बुलाकर उनके सिर पर स्नेह से हाथ फेरा, थैले में से मिठाई और मेवा निकालकर दोनों को दिया। बच्चे जानते हैं कि वे नानाजी हैं।

उनके साथ आये बालक का नाम अमृतानंद है। अपने भविष्य के लिए ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से उनका शिष्य बन गया है। उनके साथ ही सब जगह जाता है। साधु- वेष के बावजूद उसका स्वभाव सामान्य बालक का ही है। टीवी पर रोचक कार्यक्रम देखकर आंखे जम जाती हैं, अगल-बगल बच्चों को खेलते देख उसके हाथ- पांव भी सिहरने लगते हैं। लेकिन उसकी एक आंख हमेशा गुरूजी पर रहती है। गुरूजी दोपहर को नींद में हों तो घर के बच्चों के साथ मज़े में खेल कूद लेता है।

लेकिन पिता के आने से गायत्री के मन में कोई विशेष खुशी या उत्साह नहीं होता। लंबे अंतरालों पर उनके आने के बावजूद ठंडक जैसी बनी रहती है। उनकी उपस्थिति अनुपस्थिति से उसे कोई फर्क नहीं पड़ता, न ही कोई लहर उठती है। सब कुछ पूर्ववत चलता रहता है। दोनों बहनों, गीता और गौरी को उनके आने की खबर ज़रूर दे देती है।

गायत्री के बेडरूम में पुराना फोटो टंगा है- माता पिता और चारों भाई बहन। तब गायत्री नौ दस साल की रही होगी। दोनों बहनें उससे छोटी हैं। विशू तब तीन चार साल का रहा होगा। पिता के माथे पर लाल बिंदी है। चित्र में मां का चेहरा देखते उसका गला भर आता है।

उसे याद आता है सबेरे वे चारों दो दो मां के आजू बाजू लेटे रहते थीं। मां उन्हें दुलारती, पुराणों की कथाएं सुनाती रहती। उस वक्त उनके चेहरे पर ऐसा अलौकिक आनन्द दमकता जैसे सारी सृष्टि उनकी बांहों में सिमट गयी हो। गायत्री को वैसा सुख फिर जीवन में नहीं मिला।

पिताजी सरकारी दफ्तार में मुलाजिम थे, लेकिन वे जीवन भर लापरवाह और गैर जिम्मेदार ही रहे। घर से निकलने पर कब लौटेंगे ठिकाना नहीं। जेब में पैसे और हाथ में थैला लेकर सामान लेने निकलते और कहीं गप- गोष्ठी में दो तीन घंटे गुज़ारकर वैसे ही खाली थैला हिलाते वापस आ जाते। उनके आचरण से घर में क्या दिक्कत होती है, इसे लेकर वे ज़्यादा परेशान नहीं होते थे। कभी किसी साहित्यिक या धार्मिक महफिल में जम जाते तो सारी रात वहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गुज़र जाती। मां सारी रात या तो करवटें बदलती रहती या कमरे में उद्विग्न टहलती रहती। उन पर क्या गुज़रती थी यह पिता महसूस नहीं कर पाते थीं। बच्चों को स्कूल के लिए समय से उठाने से लेकर उनकी फीस समय से जमा करवाने तक की सारी फिक्र मां को ही करनी पड़ती थी। पिता के ऐसे रवैये के कारण मां के लिए कहीं आना जाना मुश्किल रहता था। वे घर में ही बंध कर रह गयी थीं।

फिर मां के सिर में भारीपन और दर्द रहने लगा था। पिता ने पहले टाला- टूली की, फिर डाक्टर को दिखाया, डाक्टर ने जांच पड़ताल के बाद कहा, 'ब्लड प्रेशर बढ़ गया है' । रोज़ एक गोली खानी पड़ेगी। गोली कभी बंद नहीं करना है। लेकिन पिता गोली लाना भूल जाते। वैसे भी उन्हें एलोपैथी में भरोसा नहीं था। कहते, 'ये एलोपैथी की दवाएं जितनी ठीक करती हैं उतना शरीर में जहर इकट्ठा करती हैं। अपनी देसी सिस्टम ठीक होता है।' नतीजतन मां हफ्तों बिना दवा के रह जातीं।

फिर वह मनहूस दिन आया जब रोज़ सबेरे पांच बजे उठने वाली माँ सोती ही रह गयीं। अफरा तफरी में पास के अस्पताल ले जाने पर पता चला कि रक्तचाप बढ़ने के कारण मस्तिष्क में रक्तस्त्राव हो गया। मां फिर होश में नहीं आयीं। उनके चेहरे पर चारों बच्चों की उम्मीद भरी निगाहें चिपकी थीं, लेकिन उन्होंने दूसरे दिन दोपहर सबसे नाता तोड़ लिया।

पिता उस दिन से गुमसुम हो गये। मां के सारे कृत्य तो उन्होंने किये लेकिन वे जैसे गहरे सोच- विचार में डूब गये। बच्चों से भी संवाद न के बराबर हो गया। बच्चे सांत्वना के लिए पिता की ओर देखते थे लेकिन पिता कुछ अपनी ही उधेड़बुन में लगे हुए थे। ऐसा लगता था वे सब चीजों के प्रति तटस्थ, उदासीन हो गये थे।

मां की तेरही के दिन उन्होंने अचानक विस्फोट कर दिया। घर में जुटे रिश्तेदारों के बीच उन्होंने दोनों हाथ उठाकर घोषणा कर दी, 'मैं अब सन्यास ले रहा हूं। मेरे पास यह मकान है, दफ्तर में प्राविडेंट फंड का पैसा है। कोई चाहे तो इन सब चीजों को ले ले और इन बच्चों की जिम्मेदारी संभाल ले। मेरी तरफ से सब खतम।'

संबंधियों ने इसे उनकी अचानक आयी विपत्ति और दुख का परिणाम माना। उन्हें समझाया बुझाया, मासूम बच्चों के मुंहॅ तरफ देखने को कहा। जैसे तैसे उन्हें शान्त कराया गया।

लेकिन इसके दो दिन बाद ही वे बच्चों को सोता छोड़ अचानक गायब हो गये। घर में कोहराम मच गया। पिता से छोटे दो भाई थे, दोनों शहर में ही थे। खबर मिली तो दोनों दौड़े आये। बच्चों को समझाया बुझाया। बड़े चाचा चारों बच्चों को अपने घर ले गये। उनके अपने तीन बच्चे थे- दो बेटे और एक बेटी। अब कुल मिलाकर सात हो गये। बड़े चाचा की जनरल गुड्स की दुकान थी। ठीक-ठाक चलती थी।

पिता गायब हुए तो चार साल तक गुम ही रहे। बड़े चाचा ने उनके मकान को किराये पर चढ़ा दिया और अपनी बांहे कुछ और लंबी करके बच्चों को उनमें समेट लिया। गायत्री उनकी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सबसे बड़ी बेटी हो गयी। महत्वपूर्ण कामों में उसकी सलाह ली जाने लगी। उनके लिए वे चारों सन्तानें उनके अपने बेटी- बेटे थे। बड़े चाचा खुद जो भी परेशानी महसूस करते हों, उन्होंने घर में बच्चों को कभी उसकी भनक नहीं लगने दी। कैसी भी चिन्ता हो, वे बच्चों के सामने निश्चित और प्रसन्न बने रहते। सब बच्चों को सरकारी स्कूल में पढ़ाया और हैसियत के मुताबिक सब की शादी की। समाज को उनके परिवार में घटी घटना का पता था इसलिए समाज के लोगों ने उनके साथ काफी उदारता बरती।

चार साल बाद गायत्री के पिता अचानक साधु वेष में पकट हुए। आये तो ऐसे जैसे कुछ हुआ ही नहीं। बच्चों के लिए अब वे एक अजूबा थे। बुलाने पर ही वे पास आते थे। उन्होंने 'सब ठीक है' के छोटे से प्रश्न में सब को समेट कर अपना फर्ज पूरा कर लिया। ज्यादा कुछ पूछना नहीं।पहले जैसे ही बेफिक्र। भाइयों ने उनका हाल चाल पूछा तो जवाब मिला, आनन्द ही आनन्द है। सही मार्ग मिल गया। जन्म सुधर गया। दो दिन रहकर वे फिर अंतर्ध्यान हो गये। फिर ऐसे ही उनका आना जाना होने लगा। सब धीरे धीरे उनके आने जाने के प्रति तटस्थ हो गये।

बेटियों की शादी के बाद वे वहां भी गाहेबगाहे पहुंचने लगे। बस, एकाएक पहुंच जाते और फिर एक दो दिन रूक कर अचानक ही पोटली उठाकर चल देते। शुरू में दामादों को उन्हें समझने और उनके साथ 'एडजस्ट' करने में दिक्कत हुई, फिर वे आदी हो गये।

इस बार गायत्री के घर आने से पहले उन्होंने दोनों भाइयों को खबर दे दी थी। कि वहां आकर मिलें। सन्तों के प्रवचन सुनने का लाभ भी मिल जायेगा। गायत्री को वे बता चुके थे कि अपने अखाड़े में अब उनकी पोजीशन बहुत ऊपर है, बस बड़े महन्तजी के बाद उन्हीं को समझो।

कालोनी के लोग उन्हें जानने लगे थे। उनका साधु वेष वैसे ही लोगों को आकर्षित करता था। लोग जान गये थे कि वे मिस्टर त्रिवेदी के ससुर हैं। अब उनके आने पर दो चार लोग श्रद्धाभाव से उनके पास आ बैठते थे।

दोनों चाचा बड़े भैया के निर्देश पर पहुंच गये। बड़ी चाची भी पहुंची। सोचा इसी बहाने गायत्री से भेंट हो जायेगी। जेठजी के जाने के बाद से वे ही गायत्री आऔर उसके भाई बहनों की मां रही, और उन्होंने अपने ऊपर आयी जिम्मेदारी को खूब निभाया भी। कभी भी जेठजी के बच्चों को अन्तर महसूस नहीं होने दिया। जीवन की यह कठिन परीक्षा पति-पत्नी दोनों ने खूब अच्छे अंकों से पास की। इसीलिए गायत्री पिता के आने से ज़्यादा खुश बड़े चाचा और चाची के आने से हुई।

शाम को सभी लोग प्रवचन सुनने गये। मंच पर प्रवचनकर्ताओं के साथ गायन मंडली भी विराजमान थी। प्रवचन के बीच में प्रवचनकर्ता गायन शुरू कर देते और संगीत-मंडली वाद्ययंत्रों के साथ उन्हें सहयोग देने में लग जाती। गायत्री, दोनों चाचा ओर चाची देर तक प्रवचन सुनते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहे। पिता पहले ही वहां पहुंच गये थे लेकिन वे कहीं अन्यत्र व्यस्त थे।

प्रवचन-स्थल के बाहर अनेक दुकानें सजी थीं जिनमें मालाएं, शंख, पूजा-पात्र, हवन-सामग्री, धार्मिक पुस्तकें, देवियों-देवताओं के चित्र उपलब्ध थे।

रात को पिता आ गये। दोनों भाइयों से बात करते रहे, किन्तु उनकी रुचि पारिवारिक और सामाजिक मसलों में नहीं थी। मित्रों, रिश्तेदारों की सामान्य जानकारी लेकर वे अपने अनुभव सुनाने में लग गये। कहां रहे, कहां घूमे, किन-किन सन्तों की संगत की, यह सब बताते रहे। पारिवारिक और सामाजिक प्रसंग उठते ही उनका ध्यान भटकने लगता। उस दुनिया में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी।

दूसरे दिन सबेरे स्नान-पूजा से निवृत्त होकर वे जल्दी तैयार हो गये। बोले, 'आज से यज्ञ शुरू होगा। पति-पत्नी ज़ोड़े से यज्ञ के लिए बैठेंगे। मुझे वहां प्रबंध देखना होगा। अब दिन भर वहीं रहना पड़ेगा। आगे का जैसा कार्यक्रम होगा, बताऊँगा।'

वे निस्पृह भाव से चले गये। बेटी या भाइयों को छोड़ने का कोई दुख उनके चेहरे पर दिखायी नहीं पड़ा। घर छोड़कर जाने के बाद वे जितनी बार भी गायत्री के पास लौटे, उन्होंने कभी अपने कदम पर पश्चाताप ज़ाहिर नहीं किया, न ही कभी उस प्रसंग को उठाया। जैसे जो उन्होंने किया, सब सामान्य और उचित था।

उनके जाने के बाद बड़े चाचा भावुक हो गये। हाथ जोड़कर बोले, 'बड़े भाग्यशाली हैं। सही रास्ता मिल गया, लोक- परलोक सुधर गया। एक हम जैसे लोग हैं जो जिन्दगी भर मिट्टी गोड़ते रह गये। खाली हाथ आये, खाली हाथ चले जायेंगे।'

गायत्री पिता द्वारा खाली किये गये कमरे में सामान जमाने में व्यस्त थी। बड़े चाचा की बात सुनकर रुककर बोली, 'चाचाजी, अफसोस मत करिए। आपके मिट्टी गोड़ने से हम चार प्राणियों की जिन्दगी मिट्टी होने से बच गयीं, वर्ना हमारे तो दोनों लोक बिगड़ने वाले थे। भरोसा रखिए, जिस दिन आपके कर्मों का हिसाब होगा, आप नुकसान में नहीं रहेंगे।'

59, नव-आदर्श कॉलोनी, गढ़ा रोड
जबलपुर-482002
मो. 9926660392

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मूल फ्रेंच से सीधे हिन्दी में अनुवादः अरुप रश्मि चक्रवर्ती

कैदखाना

ज्याँ पॉल सार्त्र

उन्होंने हमें एक बहुत बड़े हॉल में धकेल दिया। इतनी तेज रोशनी हमारी आंखें बर्दाश्त नहीं कर पा रही थीं, झपकने लगी। कमरे के एक कोने में हमें एक मेज दिखाई दी, जिसके पीछे चार लोग खड़े थे, वे सब सरकारी आदमी प्रतीत हो रहे थे, वे कुछ कागजात आदि देख रहे थे। सारे कैदियों को नीचे एकत्र किया गया था, हमें उन तक पहुंचने के लिए एक कमरे को पार करना था। उनमें से बहुतों को मैं जानता था पर कुछ अनजाने थे। हमारे सामने जो लोग खड़े थे उनमें से दो गोरे थे और अन्य दो गोल सिर वाले आपस में मिलते-जुलते थे। वे फ्रेंच प्रतीत हो रहे थे। उनमें से छोटा वाला बार-बार अपनी पतलून खींच रहा था, वह काफी परेशान था। यह सब तीन घंटे तक चला। मैं बेहद थक गया था। दिमाग खाली था। शीघ्र ही मुझे सब कुछ सहज लगने लगा। कमरा काफी गर्म था।

पिछले चौबीस घंटे से हम लगातार कांप रहे थे। संतरी एक के बाद एक कैदियों को मेज के समक्ष लाते रहे ओर वे चार अधिकारी उनसे नाम व व्यवसाय पूछ रहे थे, वे लोग एक प्रश्न पर अधिक देर तक ठहर नहीं रहे थे, बल्कि बिना उत्तर की अपेक्षा किए प्रश्न पूछते जा रहे थे। मसलन-

– तुमने शस्त्रागार को ध्वंस करने में भाग लिया ?

– तुम नौ की सुबह कहाँ थे, और क्या कर रहे थे ?वे उत्तर को ना ही सुन रहे थे,ना ही ध्यान दे रहे थे। एक क्षण के लिए वे चुप हो गए और ठीक सामने उन पर एक नज़र डाली और फिर लिखना शुरू कर दिया। उन्होंने टॉम से पूछा- क्या यह सही है कि उसने अंतर्राष्ट्रीय ब्रिगेड

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के साथ काम किया। टॉम इसके प्रत्युत्तर में कुछ कह न सका। क्योंकि उसके पास अभी भी अंदर जेब में कुछ कागज थे। जुऑन से उन्होंने कुछ नहीं पूछा, लेकिन उसने अपना नाम बताया और उसके बाद वे देर तक लिखते रहे।

–वे 'जोंस' है जो हमारे भाई है वे 'एनॉरकिस्त' है– जुऑन ने कहा और आप अच्छी तरह जानते हैं कि वे अब यहां नही है। मैं उनके किसी संगठन में शामिल नहीं हूँ। मैंने कभी राजनीति नहीं की– उन्होंने उत्तर नहीं दिया। जुऑन फिर बोला– मैंने कुछ नहीं किया, मैं दूसरों के लिए कीमत चुकाना नहीं चाहता। उसके होंठ कांप रहे थे। एक सिपाही ने उसे चुप करने को कहा और वहां ले गया। अब मेरी बारी थी– क्या तुम पॉब्लो इबेता हो ? मैंने कहा हां। उस आदमी ने अपने कागज– पत्रों को देखते हुए पूछा–रॉमन ग्रीस कहां है ?– मैं नहीं जानता। क्या तुमने छह से उन्नीस तक उसे अपने घर में रखा था– नहीं।

कुछ क्षण तक वे कागज में कुछ लिखते रहे फिर सिपाही ने मुझे जाने दिया। दो सिपाहियों के बीच बरामदे में टॉम और जुऑन इंतजार कर रहे थे। हम चल दिए। टॉम ने एक सिपाही से पूछा– अब क्या यह महज पूछताछ थी या निर्णय ? यह निर्णय था– सिपाही ने कहा। वे अब हम लोगों के साथ क्या करेंगें ?– यह तुम्हें तुम्हारी कोठरी में बता दिया जाएगा–पुलिस के सिपाही ने शुष्कता से उत्तर दिया। दरअसल में वह कमरा जिसे कोठरी की तरह प्रयुक्त किया जा रहा था, अस्पताल का एक कमरा था। सर्द हवा के कारण वहां भयानक ठंड थी। रात भर हम कांपते रहे। सुबह भी रात जैसी ही थी।

अगले पांच दिन हमें एक पादरी के घर के तहखाने में बिताने होंगे। वह एक मध्ययुगीन इमारत है। इमारत की सेहत भी वैसी ही है जैसे कैदियों के हालात। उन्हें अपने गंतव्य स्थान का कुछ पता नहीं। मैं तहखाने के बारे में चिन्तित नहीं था, और ना ही मुझे ठंड लग रही थी। पर वहां मैं अकेला रहूंगा यही बात परेशान कर रही थी। उस कोठरी में मेरे साथी थे। जुऑन, जिसने शायद ही कभी बातचीत की हो, क्योंकि इस समय कुछ बोलने के लिए, कहने के लिए उसकी उम्र कम थी। वह बेहद डरा हुआ भी था। टॉम एक अच्छा वक्ता था और उसे अच्छी स्पेनिश आती थी। वहां एक बेंच थी औरभूसे से भरे चार गद्दे थे। वे जब हमें दुबारा लेने आए तो हम उस एकांत में चुप प्रतीक्षारत थे। कुछ देर बाद टॉम बोला– हमारे नाम फाइल में दर्ज हो गए हैं। मैंने कहा– मैं भी यही समझता हूं पर वे हमारे साथ अभी कुछ नहीं करेंगे– वे उस तक पहुंच नहीं सकेंगे। टॉम ने कहा– वह एक उग्रवादी का भाई है–बस। – क्या तुम्हें पता है कि उन्होंने सरगोसे के साथ क्या किया ? उन्होंने उसे सड़क पर बिठा दिया और उसके शरीर पर ट्रक दौड़ा दिया। यह सब हमें मोरक्कोवासी ने बताया। उसने बताया कि यह सब गोला– बारूद की बरबादी को रोकने के लिए किया गया। मुझे टॉम पर झुंझलाहट हुई, यह सब उसे नहीं कहना चाहिये। वहां कुछ अधिकारी पॉकेट में हाथ डाले,सिगरेट पीते हुए घूम रहे थे,यह सब उसी मोरक्कोवासी उग्रवादी ने देखा था। क्या तुम सोचते हो कि उन्होंने अपना काम खत्म कर लिया ? पहले घंटे उन्हें भी चीखने– चिल्लाने देते थे। पहली बार वे चूक गए। यह सब उसी मोरक्कन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ने बताया। मैं नहीं सोच पा रहा था कि वे हमारे साथ भी यही सलूक करेंगे, हथियारों को बचाने के लिए।

भूतल पर स्थित उन चार खिड़कियों और सीलिंग के छेद से सुबह का प्रकाश अंदर आ रहा था। वह छेद ही आकाश के होने का अहसास दिला रहा था। वह गोल छेद एक छोटे से खिसकने वाले दरवाजे से आम तौर पर बंद ही रहता था। उससे कैदखाने का कार्बन निकलता था। कार्बन का ढेर उस छेद के ऊपर ही था जो अस्पताल को गर्म रखने के लिए प्रयुक्त होता था, परन्तु युद्ध आरंभ होने के साथ ही सारे रोगियों को और कहीं स्थानान्तिरित कर दिया गया और अनुपयुक्त कार्बन वहीं जमा रह गया। वे उसे बंद करना भूल गए थे।

अतः वर्षा का पानी वहीं से अंदर आ जाता। टॉम फिर कांपने लगा। - भगवान की माया,मैं बहुत कांप रहा हूं। यह सब फिर शुरू हो गया। वह उठा और व्यायाम करने लगा। हर क्षण उसके कपड़े छाती तक खुल जाते थे- श्वेत रोम भरी। उसने स्वयं को पीठ के बल लिया और पैरों को हवा में उठाकर कैंची चलाने लगा, मैंने उसके पुट्ठे देखे। टॉम मजबूत था, मगर उसके चर्बी बहुत थी। मैं कल्पना करने लगा कि किस तरह उसके मांस में गोलियां बंदूक से घुसेंगी। बिल्कुल मक्खन से नर्म टुकड़े की तरह। यह इतना प्रभावी नहीं होता, यदि वह दुबला होता। मैं ठंड को महसूस नहीं कर पा रहा था, कंधे व बांह सुन्न पड़ गए थे। ऐसा मालूम हो रहा था मानो मुझमें कुछ अधूरा है या जैसे मैंने कुछ खो दिया है मैं अपनी जैकेट ढूंढने लगा, फिर सहसा मुझे याद आया कि उन्होंने वापस नहीं दी है। यह अत्यन्त पीड़ाजनक था। अपने सिपाहियों के लिए उन्होंने हमारे कपड़े ले लिए थे, हम लोगों के लिये उन्होंने यह शर्ट और पतलून रख छोड़ी थी जो कि रोगी लोग भीषण गर्मी में पहनते थे। टॉम हांफते हुए मेरे पास आ कर बैठ गया- क्या तुम्हें पहले से मालूम था। भगवान के लिए नहीं। मेरी सांस रुक रही है, दम घुट रहा है। शाम आठ बजे अपने दल के साथ एक कमांडर ने कमरे में प्रवेश किया, उसके पास कई कागज थे। उसने तैनात संतरी से पूछा- वो तीन कैसे पुकारे जाते हैं। संतरी ने बताया- स्टेनबॉक, इबेता और मिरबॉल। स्टेनबॉक-स्टेनबॉक-स्टेनबॉक यहां है यह। कल सुबह तुम्हें मृत्यु दंड दिया जाएगा। फांसी की सज़ा होगी। उसने दुबारा देखा। कहा- अन्य दो को भी। जुऑन ने कहा- यह संभव नहीं है, मुझे नहीं। कमांडर ने उसे आश्चर्य से देखा- तुम्हारा नाम ? उसने बताया- जुऑन मिरबॉल। हां ठीक। तुम्हारा नाम भी है, कमान्डर ने कहा, तुम्हें भी मृत्यु दंड दिया जाएगा। मैंने कुछ नहीं किया है- जुऑन ने कहा। कमान्डर ने अपने कंधे उचकाए और मेरी ओर टॉम की तरफ मुड़ा।- क्या तुम बॉस्क हो ? वह उत्तेजित होकर बोला-कोई भी बॉस्क नहीं है। मुझे कहा गया था कि वहां तीन बॉस्क हैं। मैं इनके पीछे अपना वक्त बरबाद करना नहीं चाहता। स्वाभाविक ही है कि अंतिम समय में तुम्हें प्रार्थना के लिए पादरी की आवश्यकता नहीं है। हम लोगों ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। उसने कहा- एक बेल्जियन डॉक्टर तुम लोगों के पास आएगा, उसे तुम्हारे साथ रात गुजारने की अनुमति मिली है। फिर उसने एक फौजी सलाम ठोंका और चला गया, जुऑन ने कहा- मैं तुमसे क्या कहूं ? वे अच्छे हैं।- हां, वे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कम उम्र लोगों के लिए गाय की तरह हैं। मैंने कहा- आज्ञा पालन तो सही है। मगर इसके लिए, इतने कम उम्र के लिए ठीक नहीं लगा। उसका डरा, सुकुमार चेहरा कष्टों से भरा। दुःख व तकलीफ ने उसे बिगाड़ कर रख दिया है, डर उसके व्यक्तित्व में समा गया है। तीन दिन पहले तक हम उसे चिढ़ाते थे, सहानुभूति रखते थे, दया दिखाते थे। मछली पकड़ने के पुराने जाल सी महक पूरी हवा में फैली हुई है, मैं सोच रहा हूं कि वह अब कभी युवा नहीं हो पाएगा उसे छोड़ दिया जाए- तब भी। उसके साथ थोड़ी हमदर्दी, सहानुभूति.... । बेहद घिनौनी व भयानक चीज होगी। उसने कुछ नहीं कहा, वह बेहद पीला पड़ता जा रहा था, उसका हाथ, चेहरा सभी कुछ। वह बैठ गया और अपनी गोल गोल आंखों से जमीन ताकने लगा। टॉम एक अच्छी आत्मा है। उसका मन हुआ कि वह जुआँन को बाहों में ले ले,मगर वह अपने हिंसात्मक विचारों से मुक्त नहीं हो पा रहा था,और भयानक विकृति जन्य चेहरा बना रहा था। करने दो- मैंने धीमी आवाज में कहा- तुम देख ही रहे हो कि वह रोने वाला है। टॉम ने अत्यंत दुखी होकर इसका पालन किया। वह भी उसे सान्त्वना देना चाहता था। यह सब उसे व्यस्त रखता और वह अपने बारे में सोचने के लिए विवश नहीं होता, लेकिन यह सब मुझे उत्तेजित कर रहा था। मैं इस समय मृत्यु के बारे में सोचना भी नहीं चाहता था,क्योंकि यह अवसर इसके उपयुक्त नहीं था। परंतु यह सुयोग था और हम सब मृत्यु पर सोचने के सिवाय कर भी क्या सकते थे। टॉम रोने लगा। उसने मुझसे पूछा- क्या तुमने उन्हें क्षति पहुंचाई है? मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। मैंने बताना प्रारंभ किया कि कैसे अगस्त महीने के शुरू में ही उनमें से छह को मैंने खत्म कर डाला। उसने स्थिति को नहीं पहचाना और यह भी अच्छी तरह से देखा कि वह स्वयं को भी समझ नहीं पाया। मैं तो अब तक पूरी तरह नहीं समझ सका। मुझे कुछ अनुमान नहीं लग पा रहा था। मैं स्वयं से पूछ रहा था- क्या वे बहुत यातना देंगे? मैं गोलियों के बारे में सोच रहा था, जो मेरे शरीर में आग के गोले की तरह प्रवेश करेगी। यह सब ज्वलंत प्रश्न थे, मगर मैं स्थिर था। पूरी रात थी सोचने, समझने के लिए। टॉम ने अचानक ही बोलना बंद कर दिया, गुमसुम होकर बैठ गया। और मैं कनखियों से उसे देख रहा था, पीला पड़ते हुए। वह बहुत दुखी था, उसने कहा यह तो शुरूआत है । रात हो गई, एक क्षीण प्रकाश नीचे वाली खिड़की से अंदर आ रहा था सीलिंग के पास जो कार्बन का ढेर पड़ा था- वहीं से तारों भरे आसमान का एक टुकड़ा नज़र आ रहा था। रात बर्फ सी सर्द, निस्पंद, निस्तब्ध व शांत होगी। तभी दरवाजा खुला और दो संतरी अंदर आए। उन दोनों का अनुसरण करता हुआ एक वर्दीधारी बेल्जियन भी अंदर आया। उसने हमें सेल्यूट किया- मैं डॉक्टर हूं। उसने कहा- इस पीड़ा भरे माहौल में तुम्हारी जांच का अधिकार मिला है। उसकी आवाज शिष्ट व मैत्रीपूर्ण थी। मैंने उससे कहा-तुम यहां क्या कर रहे हो?

– मैं तुम्हारी सेवा में हूँ। मैं कोशिश करूंगा कि कुछ घंटों में तुम लोगों को हल्का महसूस होने लगे। आप हम लोगों के पास क्यों आए हैं? अस्पताल तो रोगियों से भरा पड़ा है, वहां कई लोग हैं। उसने अस्पष्ट सा उत्तर दिया-मैं यहां तुम्हारे लिए भेजा गया हूँ। – ओह! क्या तुम धूम्रपान पसंद करोगे? फिर उसने शीघ्रता से जोड़ा- मेरे पास कुछ सिगरेट और कुछ सिगार भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। उसने हमें कुछ अंग्रेजी सिगरेट पेश किए मगर हमने इंकार कर दिया, मैंने उसकी आंखों में देखा वहां दयालुता थी। मैंने उससे कहा- तुम्हें सहानुभूति दिखाने के लिए यहां आने की जरूरत नहीं थी। मैंने तुम्हें बैठक के बाहर प्रांगण में कुछ 'फासिस्त' के साथ देखा था, उस दिन जब मैं गिरफ्तार हुआ था। मैं बोलना जारी रखता मगर अचानक जो कुछ मैंने देखा उससे मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही और उस डॉक्टर की उपस्थिति ने मेरी दिलचस्पी खत्म कर दी। दूसरी तरफ-में उस व्यक्ति पर हावी हो जाता मैं उसे जाने भी नहीं दे सकता था, और फिर मैंने बोलने की इच्छा को तिलांजलि दे दी। मैंने अपने कंधे उचकाए और आंखें घुमा लीं। कुछ क्षण बाद मैंने सिर उठाया। वह उत्सुकता से इस सबका निरीक्षण कर रहा था। संतरी गद्दे पर बैठे थे। 'पेड्रो' जो बेहद दुबला था अपना अंगूठा घुमा रहा था। बाकी सब नींद भगाने के लिए इधर से उधर घूम रहे थे। अचानक पेड्रो ने डॉक्टर से पूछा-क्या तुम्हें रोशनी की जरूरत है ? दूसरे ने सिर हिलाकर कहा-हाँ। मैं सोचता हूँ कि वह निरेकाठ के उल्लू से थोड़ा अधिक बुद्धिमान है मगर इसमें भी कोई शक नहीं कि वह दुर्भावनापूर्ण नहीं है। उसकी ठंडी-बड़ी नीली आंखों को देखते हुए मुझे लगा वह किसी दोषपूर्ण कल्पना के तहत वह विशिष्ट पाप कर रहा था। 'पेड्रो' उठा और एक पेट्रो लैम्प लाकर बेंच के कोने पर रख दिया। वह बहुत धुंधला प्रकाश दे रहा था मगर कुछ न होने से तो कुछ होना बेहतर ही है। हम इस अंधेरे में छोड़ दिए गए। मैंने एक क्षण को उस प्रकाश के घेरे को देखा जो लैम्प के ऊपर सीलिंग पर बन रहा था। मैं मंत्रमुग्ध हो गया। मैं अचानक उठा और उस रोशनी के घेरे से बाहर निकल गया। मैंने महसूस किया कि जैसे मैं भारी बोझ के नीचे दब गया, कुचल गया होऊँ। यह न तो मृत्यु का विचार था न ही भय। यह कुछ अनजानी, अजीब अनुभूति थी। मुझे सिरदर्द था और गालों की हड्डियां जैसे जल रही थीं।

मैं व्याकुल था मैंने अपने दोनों साथियों को देखा। टॉम ने अपना सिर दोनों हाथों के बीच घुसा रखा था। मुझे उसकी गर्दन का पिछला भाग दिखाई दे रहा था सफेद और मांसल। छोटा जुऑन कुछ ज्यादा ही बीमार था। उसका मुंह खुला था। उसके नथुने कांप रहे थे। डॉक्टर उसके पास पहुंचा और कंधे पर हाथ रखा जैसे उसे दिलासा दे रहा हो मगर उसकी आंखें निर्विकार थीं। फिर मैंने देखा कि बेल्जियन के हाथ कपटपूर्ण तरीके से जुऑन की लम्बी बांहों को सहलाते हुए नीचे कलाई तक आ गए। जुऑन ने कोई आपत्ति नहीं की उसे वैसा करने देता रहा, बेल्जियन ने अपनी तीन उंगलियों से कलाई थाम ली उसी समय किसी प्रकार वह थोड़ा पीछे को हटा और मेरी तरफ मुड़ने को बाध्य हुआ। लेकिन मैं नीचे की तरफ झुका था मैंने उसे अपनी घड़ी देखते हुए और क्षण भर विचार करते हुए पाया। उस समय भी उसने कलाई पकड़ रखी थी परन्तु इस क्षण के अंत में निर्जीव हाथ की तरह उसकी कलाई छोड़ दी और दीवार के सहारे खड़ा होने चला गया। और फिर जैसे वह बेहद आवश्यक कुछ याद कर रहा हो और जिसे फौरन लिख लेना जरूरी हो और उसने जेब से एक छोटी नोटबुक निकाली और उसमें कुछ लिखा। मैंने गुस्से से कहा- 'बॉस्टर्ड' उसे नब्ज देखने नहीं आना चाहिए मैं तो उसके गंदे मुंह में एक घूंसा दूंगा। लेकिन मैंने महसूस किया जैसे वह मुझे ही देख रहा हो। मैंने अपना सिर उठाया और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसे देखा उसने भावनाहीन शब्दों में कहा–क्या तुम्हें केवल कंपकंपाहट हो रही है। उसने मुझे देखना रोका नहीं। अचानक मुझे कुछ महसूस हुआ और मैंने अपना हाथ शरीर पर फेरा। मैं पसीने में भीगा था। भयानक ठंड और इस सर्द हवा में मैं पसीना–पसीना हो रहा था। मैंने बालों में उंगलियां फिराई जहां पसीना भरा हुआ था। उसी समय मैंने देखा कि मेरी कमीज पसीने से भीग कर शरीर पर चिपक गई है। मैं एक घंटे से पसीना बहा रहा था पर मुझे इसका बिल्कुल अहसास नहीं था। मगर यह सब उस गंदे बेल्जियन से छुटकारा नहीं दिला सकते थे। मेरे गालों पर बहते हुए पसीने को देख लिया था और मैंने सोचा कि यह सब उसके लिए प्रदर्शन मात्र होगा कि ऐसा रोग उसे देखने को मिलेगा।

भय मिश्रित आतंक और उसे सुकून होगा, गौरव महसूस करेगा यहां यह सब अपनी उपस्थिति में देखने के लिए क्योंकि उसे ठंड लग रही थी। मेरा मन हुआ कि मैं उसके पास जाऊं और उसे खुद की तरफ देखने से रोकूं। मगर मैं हिल भी न सका। मेरा गुस्सा, मेरी शर्म, सब काफूर हो गया और मैं बैंच पर अस्तित्व हीन सा गिर पड़ा। मैंने खुद को रूमाल से गर्दन रगड़ने में व्यस्त रखा क्योंकि मुझे लग रहा था कि बालों का पसीना बहकर नीचे गिर रहा था और मैं गर्दन के पिछले भाग में असहज अनुभव कर रहा था। फिर मैंने उसे पोंछने का इरादा छोड़ दिया क्योंकि यह बेकार ही था। पसीना लगातार बह रहा था। रूमाल बिल्कुल भींग चुका था। मैं नीचे भी काफी पसीने से भरा हुआ था मेरी पैंट बेंच से बिल्कुल चिपक गई थी कि अचानक छोटा जुआॅन बोला–क्या आप डॉक्टर हैं? बेल्जियन ने कहा–हाँ। – क्या कोई इतनी देर यातना सह सकता है? – ओह! –कब– ? नहीं अब और नहीं, यह सब शीघ्र ही समाप्त होगा... बेल्जियन पिता की तरह बोला। उसका ऐसा रुख था जैसे कि मरते हुए रोगी को दिलासा देना– लेकिन मैं... लेकिन मुझे कहा गया था कि बहुधा दो गोलियों की आवश्यकता पड़ती है। – बेल्जियन ने सिर हिलाते हुए कहा–कभी–कभी यह हो सकता यदि पहली गोली मर्मस्थल को ना भेदे तब यह आवश्यक हो जाता है कि गोलियों को रिचार्ज किया जाए व निशाना लगाया जाए। तुरन्त ही फटी आवाज से प्रत्युत्तर किया– इसमें कुछ समय लग सकता है। लगातार यातना के कारण उसमें भयानक डर समाया था। वह केवल वही सब सोचता रहता। यह सब उसकी उम्र के कारण था। मैं अधिक नहीं सोच रहा था, और धूल के ढेर तक गया, मैं कूदा और घृणा से देखा। मुझे चिड़चिड़ाहट हो रही थी क्योंकि मेरे जूते चरमर कर रहे थे। मैंने स्वयं से पूछा–क्या मेरा चेहरा उसके चेहरे से अधिक भयाक्रांत दिखता होगा। मैंने देखा कि उसने भी छलांग लगाई। आसमान आश्चर्यजनक था और इस अंधेरे कोने में जरा भी रोशनी नहीं आ रही थी। मुझे सिर्फ सिर उठाकर देखना था सप्तर्षि मंडल को। लेकिन अब वैसा कुछ नहीं है, जैसा दो दिन पहले था। उस पादरी की काल कोठरी में। मैं वहां से आसमान के एक बड़े टुकड़े से दिन के हरेक घंटे का अनुमान लगा पाता था, मुझे यह सब याद आया, सुबह जब आसमान गहरा हल्का नीला था, मैं अटलांटिक के किनारे बिताए क्षण को सोच रहा था। दोपहर के सूरज को देखा और मुझे वह बॉर याद आया। – सेविले –जहां मैं हल्की शेरी पिया करता था, उसके साथ एंकोवो (छोटी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मछली) और ऑलिव। दोपहर के बाद जब अंधेरा हो जाता था और अब मैं इस गहन अंधकार को देख रहा था जो कि आधे रंग स्थल पर फैला था जबकि आधा भाग सूर्य से प्रकाशित था। बेहद कष्टदायक था इस जगह से पूरी पृथ्वी को देखना। यह जो आसमान में प्रतिबिंबित हो रहा है। लेकिन अभी मैं इच्छित से भी अधिक हवा को देख पा रहा हूँ। आसमान में मेरे लिए अब और आकर्षण नहीं रहा गया था। मैं टॉम के पास आकर बैठ गया। यहां मुझे ठीक लगा। बहुत समय बीत गया। टॉम ने बहुत धीमी आवाज में बोलना शुरू किया। यह उसके लिए बहुत जरूरी था क्योंकि फिर वह विचारों में खो जाता था। मैंने सोचा वह मैं हूँ जिसे वह संबोधित कर रहा है लेकिन वह मुझे देख भी नहीं रहा था। इसमें कोई शक नहीं कि वह मेरी तरफ देखने से भी डर रहा था क्योंकि मैं पसीने से भरा व सफेद था। हम दोनों एक जैसे थे। बिल्कुल दर्पण के प्रतिबिम्ब की तरह। दोनों की हालत खराब थी। मैं प्रफुल्लित सजीव बेल्जियन को देख रहा था। मैंने भी धीमी आवाज में बोलना शुरू किया। मैं यह सब समझ नहीं पा रहा हूँ। टॉम के चारों तरफ एक अजीब दुर्गंध फैली थी, मुझे ऐसा लगा जैसे मैं दुर्गन्ध के प्रति साधारण लोगों से अधिक संवेदनशील हो गया होऊँ। मैंने नाक चढ़ा ली। –तुम किसी भी समय जान सकते हो। – यह कुछ स्पष्ट नहीं हुआ–दुराग्रह पूर्वक उसने कहा मैं साहस जुटाना चाहता हूँ, यह इस समय आवश्यक भी है। जितना मैं जानता हूँ – सुनो। वे हमें बाहर अहाते में ले जाने वाले हैं। संतरी हमारे समक्ष अवरोध बनाकर खड़े हो जाएंगे। – वे कितने होंगे ? – मैं नहीं जानता। पांच या आठ उससे अधिक नहीं। ठीक है आठ ही होंगे। वे लक्ष्य साधेंगे–चीखेंगे और मैं देखूँगा कि मेरे सामने आठ रायफलें तनी हैं। मैंने सोचा कि मैं दीवार में ही घुस जाऊँ। मैं अपनी पीठ से दीवार को धक्का देकर पीछे कर दूंगा और दीवार इसका प्रतिरोध करेगी एक दुःस्वप्न की तरह। तुम सब अब अपने बारे में सिर्फ कल्पना कर सकते हो।– ओह ! तुम जानते हो कि मैं कल्पना कैसे कर सकता हूँ।– यह किंचित कुत्तों के काट खाने जैसा हो। तुम जानते हो कि वे तुम्हारी आँखों को लक्ष्य बनाएंगे। और फिर चेहरे को, तुम्हारे शरीर को क्षत–विक्षत कर देंगे। उसने यंत्रवत कहा। वो सारे आघात एक घंटे तक महसूस करता रहा। मुझे सिरदर्द होने लगा। यही सबसे बदतर था। यह सब वह दर्द है जो मैं सुबह अनुभव करूँगा–लेकिन उसके बाद ?– मैं अच्छी तरह समझ रहा था, उसका मतलब क्या है। लेकिन मेरी इच्छा नहीं थी कि मैं उसके पास की हवा में भी बैठूं। उसी तरह था, जैसे मक्खियों की भीड़ मेरे ऊपर जुट पड़ी है। मैं ऐसा नहीं कर सकता हूँ, क्योंकि मैं उसे चाहता था। इसलिए मैं उसकी उन बातों को महत्व नहीं दे रहा था तब मैंने रुखाई से कहा डेन्डिलियॉन (फूल) खाओ, उसने केवल उसके लिए बोलना शुरू किया। उसने अपनी आंखें बेल्जियन से हटा लीं। बाद में इसका कुछ भी हवा में भी सुनने को नहीं मिलेगा। मैं जानता हूँ वे हमारे साथ क्या करेंगे ? हम क्या सोच रहे हैं इसमें उसकी जरा भी दिलचस्पी नहीं थी। वो हमारे जिस्मों को देखने आया था, ये शरीर जो यंत्रणा–ग्रस्त हैं, कष्टपूर्ण हैं। टॉम ने कहा, यह सब दुःस्वप्न की तरह है। वे कुछ सोचना चाहते हैं, उनको हर समय यह अहसास है कि हम यहां हैं और वे समझते हैं कि हम कहीं यहां से भाग न जाएं यह विचार उन्हें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फिर वापस लाता है। मैंने स्वयं से कहा-उसके बाद यहां कुछ भी नहीं रहेगा। लेकिन मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि इन सबका अर्थ क्या है ? कुछ क्षण ऐसे होते हैं जब लगता है कि यह सब प्राय: ही घटित होता रहता है और तभी वे वापस आते हैं। मैं फिर सोचने लगा, दर्द के बारे में कष्ट के बारे में, गोलियों-विस्फोटकों के बारे में। मैं भौतिकवादी हूँ। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं पागल नहीं हुआ हूँ। मगर कुछ ऐसा भी है जो मेरे साथ घटित नहीं हुआ। मैं अपना शरीर देख सकता हूँ। यह कोई कठिन नहीं है। यह मैं ही हूँ जो अपना शरीर अपनी आँखों से देख सकता हूँ। जरूरी होगा कि मैं सोचना प्रारंभ करूँ, सोचूँ कि मैं अब और अधिक कुछ नहीं देखूँगा। और कुछ नहीं सुनूँगा। और यह संसार दूसरों के लिए यथावत चलता रहेगा। पॉब्लो-यह तुम मुझ पर विश्वास करो, तुम्हारे सोचने से कुछ नहीं होगा यह सब पहले से ही मेरे मन में आ चुका है, जो मुझे पूरी रात जगाए रखेगा, किसी प्रतीक्षा में। लेकिन जो अभी यहां है हमेशा एक जैसा नहीं रहेगा। यह सब हमें बहुत पीछे ले जाएगा, पॉब्लो हमारी तैयारी इस सबके लिए नहीं है। या हमारी तैयारी नहीं थी। मैंने उससे पूछा-क्या तुम्हें कन्फेशन के लिए 'धर्मगुरु' चाहिए ? उसने उत्तर नहीं दिया। मैंने पहले से ही देखा है कि उसकी प्रवृत्ति है कि वह पैगम्बर बनाए और मुझे 'पॉब्लो' बुलाए। यह सब बहुत धीमी आवाज में हो रहा था। मुझे यह सब बहुत पसंद नहीं था, मगर ऐसा लगता है कि मानो सब आयरलैंड के निवासी जैसे ही हैं।

वे चले गए। बेल्जियन और दो जेलर भी चले गए। मैं अकेला रह गया। मैं समझ नहीं पा रहा था कि मेरे साथ क्या होने जा रहा है, अच्छा होता कि मेरे साथ जो भी कुछ करना हो वे जल्दी से कर देते। मैं थोड़े अंतराल पर गोलियों की आवाज सुन रहा था, करीब करीब हर समय। हर गोली की आवाज मुझे कंपा रही थी। मैं जोर से चिल्लाना चाहता था, बालों को खींचना चाहता था लेकिन मेरे दांत कांप रहे थे और मैंने हाथों को जेब में डाल रखा था क्योंकि मैं शांत रहता चाहता था। एक घंटे बाद वे मुझे ढूंढते हुए आए और मुझे एक छोटे कमरे में ले गए जो कि दमघोंटू सिगरेट के धुंए से भरा था। वहां जो दो अधिकारी थे वे बांहों वाली कुर्सी पर बैठकर सिगरेट पी रहे थे, उनके घुटनों पर कुछ कागजात थे। - क्या तुम इबेता हो ? - रॉमन ग्रीस कहां है ? - मैं नहीं जानता जो मुझसे प्रश्न पूछ रहा था वह छोटा मोटा था। चश्मे के पीछे उसकी दो बड़ी आंखें दिखाई देती थीं। उसने कहा-आओ। मैं पहुंचा,वह उठा और मुझे देखते हुए मेरा हाथ पकड़ लिया, मुझे ऐसा लगा मानों मैं जमीन पर आ गया होऊं,और तभी उसने नुकीली चिमिटी अपनी पूरी ताकत से मेरे घुसेड़ दी। यह मुझे बीमार करने के लिये नहीं किया गया था। उनके लिए यह एक मजेदार खेल था। वो मुझ पर प्रभाव जमाना चाहते थे वो यह भी जरूरी समझ रहे थे कि मुझ पर मुंह की दुर्गन्ध डालें। कुछ क्षणों तक हम उसी तरह रहे और मेरा मन हुआ कि मैं हंसूं। वह यह जरूरी समझ रहे हैं, उस आदमी के साथ करना जो कि मरने जा रहा है। उसने हिंसा में भरकर मुझे धक्का दिया और जाकर दुबारा बैठ गया उसने कहा- वह तुम्हारी जिन्दगी है। उसके बदले तुम्हारी जिन्दगी सुरक्षित है। यदि तुम बता सको कि वह कहां है ? दो वर्दीधारी संतरी चाबुक लिए व ऊंचे जूते पहने वहां आए। वे बिल्कुल वैसे ही दिखते

Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थे जैसे मृत्यु को तैयार लोग। उनके चेहरे भी जिंदा लाश की तरह ही थे। जो लोग मरने जा रहे थे, मेरे कुछ देर बाद। मगर अधिक देर नहीं। वे अब कागजात में नाम ढूंढने में व्यस्त हो गए, वे नामों के पीछे दौड़ रहे थे, एक के बाद एक वे निशान लगाते जा रहे थे तो कैदी बनाने के लिए या खत्म कर देने के लिए उनकी स्पेन के भविष्य और दूसरे विषयों पर क्या राय हो सकती थी। उनके क्रियाकलाप हास्यास्पद व आघात देने वाले थे। मुझे अब और स्थान पर रहने की इच्छा नहीं हो रही थी, ऐसा लगता था जैसे वो सनकी हों, वह छोटा- मोटा आदमी लगातार मेरी ओर देख रहा था। अपने ऊंचे जूतों पर चाबुक फटकारता बैठा था। उसके सारे हाव-भाव नपे तुले थे। वे हाव भाव उसे उस भंयकर हिंसक जानवर की समतुल्यता प्रदान कर रहे थे।- फिर ? क्या तुम समझ गए ? मैं नहीं जानता कि रॉमन ग्रीस कहां है ?- मैंने उत्तर दिया। मैं सोचता हूं कि वह मैड्रिड में होगा दूसरे अधिकारी ने पीला हाथ उठाया अकर्मण्य सा। यह अकर्मण्यता भी नपी तुली थी। मैंने उनके हर छोटे से छोटे काम को देखा और मैं बुद्धू सा बन गया कि वे सब यह महज खुद को मजा दिखाने, अपने मनोरंजन करने के लिए कर रहे हैं। - तुम्हारे साथ विचार करने के लिए तुम चार आदमी थे ? - लेफ़्टिनेंट ने पूछा- इसे बिना विलम्ब के मारे जाने से पहले के वस्त्र मिलेंगे, इसे कैदखाने में ले जाओ और एक घंटे बाद इसे वापस लाना। यदि यह फिर भी नकारता है तो इसे खत्म कर देंगे। वह जानता है वे क्या करेंगे। मैंने पूरी रात प्रतीक्षा में काट दी है, और इसके बाद भी वे एक घंटे और प्रतीक्षा करा रहे हैं। जबकि वे टॉम व जुऑन को खत्म कर चुके थे और अब मुझे यहां बंद कर दिया था इंतजार करने के लिए। मेरे लिए गोली उन्हें एक दिन पहले ही तैयार कर रख लेनी चाहिए थी। वे सब आपस में कह रहे थे, नब्ज डूब रही है अंत में फिर भी वे मुझे वैसा ही पाने की चेष्टा कर रहे थे। वे जीत गए। मैं उसी अधोवस्त्र में स्ट्रल पर बैठ गया क्योंकि मैं बहुत कमजोरी महसूस कर रहा था और मैं सोचने लगा। स्वभावत: उनके तरीके से उनके प्रस्ताव पर नहीं। मैं जानता था ग्रीस कहां थे। वे शहर से चार कि.मी. दूर अपने चाचा के घर में छिपे हुए थे। मैं यह भी जानता था कि वे कितनी भी यातना दें मैं यह भेद प्रकट नहीं करूंगा कि वे कहां छिपे हैं। मगर ऐसा लग रहा था कि वे ऐसा कुछ सोच भी नहीं रहे हैं। यह सब निश्चित तरीके से पूर्णतया व लगातार चल रहा था, मगर अब मेरी इसमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। मैं सिर्फ समझना चाहता था अपना व्यवहार। मैं शीघ्र ही उन्हें हैरान कर देना चाह रहा था ग्रीस को देकर। क्यों ? अब मैं ग्रीस को प्यार नहीं करता। भोर होने के कुछ पहले ही मेरी उससे मित्रता परवान चढ़ चुकी थी और उसी समय मेरा प्यार 'कोशा' के लिए सुरक्षित हो गया। और तभी से मुझे जिन्दा रहने की इच्छा भी होने लगी। संभवत: मैं हमेशा यही सोचता रहता था, यह कड़वा था लेकिन यह कोई कारण नहीं था कि मैंने उसकी जगह मृत्यु का वरण किया था, अब उसकी जिन्दगी मुझसे ज्यादा मूल्यवान नहीं थी। कोई जिन्दगी बहुमूल्य नहीं होती। वे लोग एक आदमी को दीवार से लटकाने जा रहे थे और तब तक उसे ऊंचाई से लटकाए रखते जब तक कि वह मर न जाए। चाहे वह मैं होऊं या ग्रीस या कोई और सब समान थे उनके लिए। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि स्पेन के लिए वह मुझसे ज्यादा मूल्यवान

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थे। मैं विश्वास नहीं कर पा रहा था, कुछ समझ नहीं पा रहा था। मैंने पूछा-तब वे लोग मुझे मारेंगे नहीं ? - किसी भी स्थिति में अभी नहीं। उसके बाद उसने मेरी ओर नहीं देखा मैंने उससे कहा मैं अभी भी समझ नहीं पा रहा हूँ। - लेकिन क्यों ?

उसने बिना उत्तर दिए कंधे उचकाए। सिपाही मुझे वहां से एक बड़े-खुले अहाते में ले गए वहां सौ आदमी होंगे। औरतें बच्चे और बूढ़े। मैंने घूमकर देखा लॉन के केन्द्र में। मैं हैरान था। दोपहर में वे भोजनालय में खाना खा रहे थे। दो-तीन लड़के मुझ पर चिल्लाने लगे। मैं उन्हें जानता था, लेकिन मैंने उन्हें प्रत्युत्तर नहीं दिया। मैं अभी भी जान नहीं पाया था कि मैं कहाँ हूँ। शाम के समय, उन्होंने कोर्टयार्ड में करीब दर्जन भर नए कैदियों को धकेल दिया। मैंने गार्सिया को पहचान लिया, वह बेकर। उसने कहा- सौभाग्यशाली। शैतान, मैं तुम्हें जिन्दा दोबारा देखूँगा यह सोच भी नहीं सकता था - हाँ, उन्होंने मुझे फांसी की सजा दी थी, मैंने बताया, मगर उनका विचार बदल गया मैं नहीं जानता- क्यों ? गॉर्सिया ने बताया- उन्होंने मुझे गिरफ्तार किया। - क्यों ? गॉर्सिया तो राजनीति नहीं करता। उसने कहा- मैं नहीं जानता। उन्होंने उन सबको गिरफ्तार किया जो उनकी तरह नहीं सोचते। वह बहुत धीमी आवाज में बोल रहा था। - उन्होंने रॉमन ग्रीस को पा लिया है। - मैं कांपने लगा- कब ? आज सुबह। खूंखार, उन्होंने यह सब किया। मंगलवार को उसने अपने चाचा का घर छोड़ दिया था क्योंकि उनका कहना था कि वे उन्हें भी नहीं छोड़ेंगे जो उसे पनाह देगा। मगर वह यह नहीं चाहता था कि उन लोगों को या किसी को भी उसकी वजह से कुछ हो। उसने कहा- मैं इबेता के घर में ही छुपा होता मगर वे उसे ही ले गए। मैं कब्रिस्तान में छिपने जा रहा हूँ। - कब्रिस्तान में ? - हाँ वही वहीं था वह। स्वाभाविक तौर पर सुबह वे वहां जा नहीं सके थे। और यह होना ही था वे लोग उसे कब्र खोदने वाले की कोठरी से पा गए, उन्होंने उसे ऊपर खींचा और नीचे छोड़ दिया। - कब्रगाह में ? सब मुझे मुड़कर देखने लगे, वहां का वातावरण मुझे धुंधला लगने लगा और मैंने खुद को जमीन पर बैठा हुआ पाया, मैं इतनी जोर से हंस रहा था कि मेरी आंखों में आंसू आ गए। बहुमूल्य है, उग्रवाद के लिए, स्पेन के लिए। मेरे लिए कुछ महत्वपूर्ण नहीं है, और जबकि मैं यहां हूँ, मैं स्वयं को बचा सकता हूँ, ग्रीस को देकर। मगर मैंने ऐसा करने से मना कर दिया। यह सब मुझे मजेदार लग रहा था। यह एक जिद थी। मैं सोच रहा था कि जिद होना आवश्यक है। और एक खुशी की लहर मुझमें दौड़ गई। वे ढूँढते हुए आए और मुझे उन दो अधिकारियों के पास ले गए। एक चूहा मेरे बाएं पैर के नीचे से चला गया और मुझे मजा दे गया। मैं उनमें से एक फॉसिस्ट की तरफ मुखातिब होकर बोला-क्या तुमने चूहों को देखा है ? - उसने कोई उत्तर नहीं दिया। अभी बहुत अंधेरा था- वह बहुत गंभीर था। मेरी हंसने की इच्छा पर खुद को मैंने रोक लिया। मुझे डर था कि एक बार मैं शुरू हुआ तो कोई मुझे रोक नहीं पाएगा। फॉसिस्ट के खूब मूंछें थीं।

मैं फिर बोला- यह आवश्यक है कि आप अपनी मूंछें कतर कर रखें। मुझे यह देख कर मजा आ रहा था कि उसने खूब पॉलिश की हुई है। वह पॉलिशी मूंछें उसके चेहरे पर आक्रमणकारियों की तरह तनी हुई थीं। बिना कारण उसने मुझे घूरा और मैंने चुप्पी साध ली।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

– हाँ – ठीक ! मोटे अधिकारी ने कहा।

– क्या तुमने विचार किया, सोचा। मैंने उनकी तरफ उत्सुकतापूर्ण निगाहों से देखा जैसे कि वह कोई दुर्लभ क्रीड़ा हो। मैंने फिर कहा– मैं जानता हूँ कि वह कहाँ है ? वह कब्रिस्तान में छुपा है या तो कब्रों में या कब्र खोदने वाले की कोठरी में। यह सब उनके लिए तमाशे जैसा था। मैंने उन्हें हैरान होकर उठकर बेल्ट बांधते हुए आज्ञा देते हुए उन्होंने कंधे उचकाए, उन्हें जाता हुआ मैं देखता रहा। – चलो वहीं चलें। 'मोल्स' लेफ्टिनेंट लोपेज से कहो कि पन्द्रह आदमी चाहिए, उन्हें लेकर आओ। छोटा, मोटा अधिकारी मेरी तरफ मुड़कर बोला, यदि तुमने सच कहा है तो मेरे पास एक 'शब्द' है मगर यदि तुमने हमारे साथ मजाक किया प्रिय तो यह तुम्हें बहुत महंगा पड़ेगा।

वे सब हो-हल्ला मचाते हुए चले गए और मैं उस फॉसिस्ट संतरी के साथ इंतजार करता रह गया। समय-समय पर मुझे हंसी आ रही थी। क्योंकि मैं उस सिर के बारे में सोच रहा था जिसे वे लोग लेने गए हैं। मैं स्वयं को बुद्धू और दुर्भावनापूर्ण समझ रहा था। मैं उनकी कल्पना कर रहा था, कब्र खोदते हुए, पत्थर हटाते हुए, कब्रों के दरवाजे एक के बाद एक खोलते हुए। मैं उस स्थिति को सोच रहा था, जैसे कि मैं कोई और व्यक्ति होऊँ। यह जिद्दी कैदी हीरो बनता है। वे गंभीर मूंछों वाले फॉसिस्ट और वे वर्दीधारी कब्रों के पास, यह सब कुछ मुझे मजा दे रहा था।

आधा घंटा बीतने पर वह मोटा आदमी वापस आया– अकेला। मैं समझ गया कि वह मुझे फांसी का हुक्म देने के लिए आया है। और दूसरे वहीं कदाचित कब्रिस्तान में रह गए हैं।

अधिकारी ने मेरी ओर देखा। वह डरपोक दिख रहा था उसने कहा– इसे बड़े अहाते में ले जाओ दूसरों के साथ फौजी कार्यान्वयन के अंत में न्यायालय इसका भाग्य निर्धारित करेगा।

– प्लाट नं. 100/100 ए मोहदपुर धात्री
पुष्पदेव मार्ग, बसेरा विहार
104, पिकनिक स्पॉट रोड
कल्याणपुर
लखनऊ-226001-22
फोन. 7376818761

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किताब के बहाने

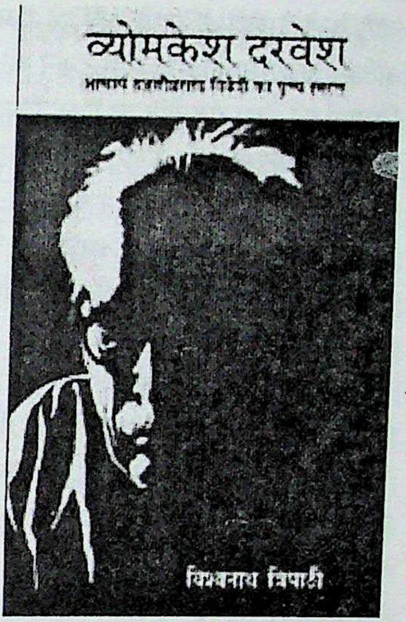

इतिवृत्त में अतिवृत्तः व्योमकेश दरवेश

अष्टभुजा शुक्ल

'नंगातलाई का गाँव' के बाद विश्वनाथ त्रिपाठी ने हाल ही में एक कृति और ईजाद की है-व्योमकेश दरवेश। गुरु-ऋण से उऋण होने के उपक्रम में यह एक संस्मरणात्मक जीवनी है, जिसके नाभिक हैं आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और जिनके परितः कई-कई वृत्तों में हिन्दी साहित्य का समकालीन ऊँच-नीच-सक्रिय इतिहास एवं विश्वविद्यालयों की विभागीय उठापटक चरितार्थ होती है। यहां साहित्य की राजनीति से भिन्न राजनीति का साहित्य भी पकड़ में आता है, जहां एक ओर पद, प्रतिष्ठा और हक़ की बिना पर किसी विद्यापुरुष को कई-कई हिचकोले खाने पड़ते हैं तो दूसरे उसी विद्याप्रेम के चलते बहुत-से लोग अपनी पद-प्रतिष्ठा को त्यागकर किसी संवेदनशील मनीषी के सम्मान में खुद को धन्य समझते हैं। दिनोंदिन कृतघ्न होते जा रहे हिन्दी समाज के बीच कृतज्ञता का ऐसा ज्ञापन दुर्लभ है जहां लेखक विश्वनाथ त्रिपाठी न अपना कुछ गोपन रखते हैं न अपने गुरु का। गुरुता और ऋजुता का ऐसा सायुज्य सहज ज्ञान के बिना असंभव है। इस कृति के काम्य द्विवेदी जी को शत-प्रतिशत अर्जित करने का यह अनायास उद्यम साहित्य और साहित्यकार के प्रति हमारी विश्वसनीयता को शिखर तक ले जाता है, जहां हर फौरी निष्कर्ष मुँहऔंधे गिर पड़ता है। पहली उपालंभ-भरी कृतज्ञता कुछ यों है- 'सच्ची बात यह है कि द्विवेदी जी की जीवनी या संस्मरणों की पुस्तक लिखने का हक किसी को था तो सबसे ज्यादा पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी के ज्येष्ठ शिष्य, मेरे शिक्षक, सतीर्थ डॉ. नामवर सिंह को। (पृ. 26)'। द्विवेदी जी के ज्येष्ठ शिष्य ने जो किया सो किया पर यह पुस्तक इसका प्रमाण है कि उनके कनिष्ठ शिष्य ने वह कर दिखाया जिससे साबित होता है कि उन पर संस्मरण लिखने का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दूसरा हक़ विश्वनाथ त्रिपाठी का ही था!

द्विवेदी जी महज विभागीय शान-ओ-शौकत या आलोचनात्मक बुद्धि तक महदूद रह जाने वाले प्राध्यापक कभी नहीं रहे। अब तक के किसी भी प्राध्यापक में इतने सृजनशील आयामों का समवाय एक साथ देखने को नहीं मिलता जितना कि आचार्य द्विवेदी में। अलबत्ता विभागों की जिस राजनीति का ज़िक्र विश्वनाथ जी ने पहले किया है, उस सबमें उलझना द्विवेदी जी के विद्याप्रेमी और उदारचरित स्वभाव के बिल्कुल उलट था। कहना चाहिए कि वैसी कूटरचना उनके बूते की बात न थी। अत: काशी में वे लम्बे समय तक इस विडम्बना के शिकार रहे तो इसलिए क्योंकि उनके आरंभिक व्यक्तित्व का निर्माण जिस प्राचीररहित विश्वभारती के उन्मुक्त प्रांगण में हुआ वहां व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए परिवेश न के बराबर था। वहां 'महामानवसमुद्र' की परिकल्पना थी जिसके आकल्पक थे कवि-गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर। विभागों में पदोन्नति, नियुक्ति, पदावनति से लेकर शिष्यों के प्रति आकर्षण और विकर्षण की राजनीति परीक्षाफल के कृपांकों एवं कोपांकों से तय होती रही है। शिष्यों तक तो गनीमत रही। इधर आकर यह जितने निर्लज्ज ढंग से पुत्र-कलत्र-गोत्र केन्द्रित हुई है- कृपांकों का जैसा व्यवसाय फूला-फला है- उससे उच्च शिक्षा की गरिमा के लिए चुल्लू भर क्या समुद्र भर पानी नाकाफ़ी है। वहीं द्विवेदी जी जैसा ख्यात प्राध्यापक अपने आत्मज को फोरमैनी की वृत्ति के लिए सुपरिचित उद्योगपति को चिट पर सकुचाते हुए प्रतिवेदन लिखकर आत्मधिक्कार और अपराधबोध से ग्रस्त है।

विश्वनाथ त्रिपाठी का सर्जक द्विवेदी जी की सर्जना में तल्लीन है। समूचे ग्रन्थ में लेखक परछाईं की नाईं विद्यमान है। कभी कृतज्ञ छात्र, कभी अन्तेवासी शिष्य, कभी जिज्ञासु, कभी साक्षी, कभी मूकद्रष्टा, कभी ईत्वर युवक, कभी रसज्ञ पाठक, कभी अधिवक्ता और जब- तब विभोर आलोचक के रूप में। कहा जा सकता है कि यहां एक विश्वनाथ में ही कई विश्वनाथ हैं। द्विवेदी जी के व्यक्तित्व. को रचते- गढ़ते और आकल्पित करते हुए लेखक कभी ' रहे ठिठुकि एकटक पल रोकी' की मुद्रा में दिखाई देता है तो कभी आंखे मुलमुलाते हुए, जब-तब कानन-चारी नेत्रों से ताकता हुआ तो कभी अश्रुपूरित। गुरूनिष्ठा ऐसी अविचल कि व्यक्तित्व के ढांचे में कहीं कोई खटका या खड़खड़ की आशंका हो तो ट्रक के नीचे अंगोछा बिछाकर उल्टे साष्टांग की मुद्रा में नट- बोल्ट कसते हुए ड्राइवर या क्लीनीयर बन जाने में कोई गुरेज नहीं और धुरझार खड़ा होकर सद्यः स्टीयरिंग संभाल लेने में कोई हिचक नहीं। गोकि ऐसी लागी लगन कि रह- रहकर गुरू की स्मृति में बार-बार हुचकी आती है और यह पुण्य स्मरण,प्रात:स्मरणीय बन जाता है। बेशक जीवनीकार एक विनीत शिष्य की भांति प्राय: कवच बनकर द्विवेदी जी की निर्मित छवि की रक्षा करने में बहुत सारे वार खुद झेलता है किन्तु यथावसर विश्वनाथजी का जाग्रत आलोचक खुद के कवच को परे भी हटाता है एवं उससे भी आगे बढ़कर छवि खण्डित करने वालों पर निर्मम वार करने से भी नहीं चूकता। इस विवेक के मूल में है- व्यक्तित्व विकास को सही सन्दर्भों और सटीक परिप्रेक्ष्य में देखने और समझने की उदात्त परख। बहुत से सन्दर्भ प्रिय लोग संदर्भ- भार से ही व्यक्तित्व और विचार को तोप- ढांक देने के व्यसनी होते हैं किन्तु विश्वनाथ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

त्रिपाठी ने संदर्भों के बूते से ही द्विवेदी जी के व्यक्तित्व और विचार को निखार दिया है।

जीवनी व्यक्ति- विशेष की होती है और संस्मरण लोगों का। इस संस्मरणात्मक जीवनी के केन्द्रक हैं- पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी और संस्मृत हैं वे लोग जिनके प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव में बलिया का बालक आचार्य द्विवेदी बन जाता है अथवा आचार्य द्विवेदी के संसर्ग में जो लोग कुछ और बने- बिगड़े हैं। द्विवेदी जी के व्यक्तित्व के निर्माण में कार्यकारी परिवेश से लेकर उनके वरिष्ठ, पूर्ववर्ती,समकालीन और परवर्ती सबका योगदान विश्वनाथ जी स्वीकार करते हैं। बल्कि कहना यह चाहिए कि इस निर्माण में जितना योगदान सहयोगी परिस्थितियों और सहयोगियों का है, उससे कम विरोधिनी परिस्थितियों और विरोधियों का नहीं। अत: विश्वनाथ त्रिपाठी द्विवेदी जी के जीवनारंभ को परिचालित करने वाली जलवायु और परिस्थिति को, घटित होने वाले संयोगों को, जीवन की निर्मित में सहायक ऊतकों,कोशिकाओं और श्वेत- लाल रुधिर कणिकाओं को इतनी सहजता,इतनी सावधानी और इतनी संवेदनात्मक आत्मीयता से समेकित करके इतना घनिष्ठ पाठ तैयार करते हैं कि 'देवोपम व्यक्तित्व' बन जाने के बावजूद भी हजारी प्रसाद जी अपने ही शब्दों में 'हाड़- मांस से बना मनुष्य' ही साबित होते हैं, 'ईंट और गारे से बनी प्रतिमा' नहीं। लेखक उन्हें आजीवन देखने,सुनने, जानने और सानिध्य का सौभाग्य पाने की ही भांति द्विवेदीजी की भूमि का भी मृदा-परीक्षण करता है और भूगोल देखते- देखते जीवन का निर्माण करने वाले तन्तुओं के भूगर्भ तक पहुंचने का सफल उद्यम करता है। जहां का भूगोल जितना ही अप्रेष्य और अप्रवेश्य होता है वहां के जीवन- संकुल में उतनी ही लोकगाथाएं और किवंदन्तियां प्रचुर होती हैं। आखिर, बीसम बीसम बीसम बीस,तापर शुन्न धरै एकतीस वाली गणित हल करने वाला ग्राम्य जीवन यदि किसी इतिवृत्त को अतिवृत्त में बदल डालता है तो किमाश्चर्यम ? आश्चर्यमिदं कि उपलब्ध तथ्यों,साक्ष्यों, घटनाओं, विश्वसनीय कल्पनाओं और अन्योक्तियों के जरिए द्विवेदी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व का ऐसा सांगोपांग रूपायन हुआ है और यह अतिवृत्त इतना चारुचित्र बन पड़ा है कि पुनरूक्ति दोषों का भी विलोपन हो जाता है। विश्वनाथजी 'हंसिया अपनी ओर ही झुकता है' के तहत 'भूमिका' में यों हलफ उठाते हैं- 'अपने गुरू पर तटस्थ होकर कुछ नहीं लिख पाता, लिख ही नहीं सकता। यह भी जोड़ लीजिए कि मुझे उनके बारे में लिखने की क्षमता का भरोसा कभी नहीं रहा।' किन्तु विश्वनाथजी के लेखक की तटस्थता इस बात में है कि सृजनात्मक गुरू द्विवेदी जी का धुर असृजनात्मक विरोध करने वाले डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा एवं पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जैसे प्राध्यापकों का समादर वे एक जिज्ञासु छात्र के रूप में इस प्रकार कर पाते हैं- ' 'डॉ. शर्मा कभी- कभी इतना अच्छा पढ़ाते कि सुखद आश्चर्य होता और विद्यार्थी पूर्ण संतुष्ट होते। डॉ.ज़प्र. शर्मा शिष्यवत्सल उदार व्यक्ति थे।' हिंदी कहानी का रचना-विधान' हिंदी कहानी पर लिखी हुई पहली गंभीर कहानी-आलोचना की पुस्तक है। (पृ. 155) । इससे अधिक किसी लेखक की पारदर्शिता और तटस्थता क्या हो सकती है ? किन्तु ज्यों ही डॉ. शर्मा का द्विवेदी- द्रोही रूप उन्हें स्मरण आता है त्यों ही एक सश्रद्ध, समर्पित और खड्गहस्त शिष्य की भांति शर्मा का पानी उतारने में तनिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भी देर नहीं लगती। उपरोक्त पैरा की अगली ही पंक्तियां इसकी सक्षम गवाह हैं- 'अनेक उच्च अधिकारियों , नेताओं और अनेक देसी रियासतों के राजाओं- महाराजाओं से उनकी अच्छी मित्रता थी जिसका उपयोग उन्होंने पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी को काशी से हटाने में सफलतापूर्वक किया। वे विभागीय राजनीति के सिद्धहस्त और अचूक खिलाड़ी थे। (पृ. वही')

इस कृति में विश्वनाथ जी अपनी ओर से बहुत कम कहते हैं। भरसक अभियुक्त या प्रतिवादी बनने से बचते हैं। किन्तु अपनी ओर से बहुत कम कहकर भी बहुत कुछ और बहुत खूब कहते हैं। जहां पर द्विवेदी जी कमजोर दिखाई देते हैं वहां विश्वनाथ त्रिपाठी कभी अपनी छाती तो कभी अपनी पीठ सामने कर देते हैं किन्तु कोई जहां द्विवेदी जी के अन्तर्यामी और जीवन- सत्य की सही शिनाख़्त किए बिना उन पर अभियोग चलाना चाहता है वहां विश्वनाथजी तिलमिलाकर वक्र और आक्रामक हो जाने के 'अवधीपने' से भर जाते हैं। फिर चाहे वह 'जद्यपि परम सनेही' ही क्यों न हो। इस प्रक्रिया में वे व्यक्ति को यथायोग्य प्रदाय तो प्रदान करते ही हैं किन्तु सतगुरू द्विवेदी जी पर किसी तरह की आंच बर्दाश्त नहीं कर सकते। इस श्रृंखला की उदभावना में एक अहम कड़ी- 'नामवरजी ने मुझे पढ़ाया ही नहीं, कलम पकड़कर लिखना भी सिखाया है। अनेकविध मेरी सहायता की है। इस पुस्तक को लिखने की प्रेरणा उन्हीं से प्राप्त हुई। (पृ. 26)। इस आभारसंबलित श्रद्धा के बाद जहां गुरूवर की छवि खण्डित होने का अंदेशा है वहां भाषा फूत्कार भरी और बांकी हो जाती है- 'काशीनाथ सिंह अगर एक संस्मरण- 'सहारा ऑफिस में नामवर सिंह' लिखने का प्रयास करते तो ये सब बातें उन्हें सूझती। 'होल्कर हाउस में द्विवेदी जी' तटस्थ और निष्पक्ष हैं, यह तो पहले लिख चुका हूं। दिल्ली के 'राहगीर' उसी तरह नामवरजी को भी इस्तीफा देने की राय देते रहते थे। और इसी के ठीक आगे किसी सेवाश्रित पीठ की डायरेक्टरी को इनकार करने वाले द्विवेदीजी को विश्वनाथजी नहला- धुलाकर खड़ा कर देते हैं- 'सेठ अभी सम्मान करता है, पैसा देने लगेगा तब नौकर की तरह रखेगा। (पृ. 289)' धन्ना- सेठों के ऐश्वर्य- प्रदर्शन के प्रति हे प्रभो आनन्ददाता, ज्ञान हमको दीजिए' के रचनाकार पं. राम नरेश त्रिपाठी के साथ केडिया-भवन में द्विवेदी जी के शिष्य लेखक का युवा-काल में ही अनुभव इस प्रकार है- 'केडिया जी के यहाँ का भोजन मुझे इतना याद है कि उनके बारे में और कुछ भी नहीं याद है। (पृ.190)।' बलिहारी है इस वक्रोक्ति की।

द्विवेदी जी की शरण में छात्र विश्वनाथ 'दूरेऽपि श्रुत्वा भवदीय कीर्तिम्' के भाव से पहुंचते हैं और पहुंचते ही गढ़-गढ़ काढ़े खोट वाली सूक्तियाँ कानों में पड़ती हैं- 'कोई दूसरा किसी का जीवन नहीं बनाता। तुम अपना जीवन खुद बना-बिगाड़ सकते हो। तुम्हें क्या पता, मेरे भीतर कितने दोष हैं। किसी पर अंधश्रद्धा नहीं करनी चाहिए। तुम्हें भूख तो नहीं लगी है? (पृ.14)।' इसमें गुरुपदेश, गुर्वादेश, आत्मालोचन और परदुखकातरता क्या क्या नहीं है? ऐसे वत्सल गुरु के प्रति शिष्यगण अंधश्रद्धा भी करें-तटस्थता न बरत सकें तो बेजा ही क्या? अपनी प्राकृत प्रकृति और कृतज्ञ स्वभाव के बल पर 'वीदारथी' विश्वनाथ, द्विवेदी परिवार में एक सदस्य की हैसियत प्राप्त कर लेते हैं। यहीं से विद्यार्थी विश्वनाथ जी एक छैलविहारी और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कवित्वपूर्ण मन से काशी विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए प्रस्थान करते हैं जहां 'काव्यशास्त्र-विनोद' का युवकोचित और लहालोट कर देने वाला वातावरण है। इस मण्डली में मौज-मस्ती का आलम यह कि बात-बात में कविता बनती है और विद्यार्थी मँगनी किताब भी बेचकर सिनेमा देख आता है। नौ-दस के वय-वरिष्ठ अध्यापक नामवर सिंह की चाल 'कटार' की तरह घोषित की जाती है और जायका बिगाड़ाधीश नामवर जी 'जो करो इस चाँदनी में सब क्षमा है' जैसी जायकेदार पंक्तियाँ निर्मित करते रहते हैं। निश्चय ही ऐसे प्रसन्न और लोकतांत्रिक वातावरण की निर्मिति के पीछे आकाशधर्मा और अकुंठ मन वाले आचार्य द्विवेदी जैसे सतगुरु का योगदान रहा ही होगा जो किसी रूढ़ विप्र को और चिढ़ाने के लिए सुबह-सबेरे 'गीत गोविन्द' जैसी श्रृंगारिक रचना का सस्वर पाठ करने लगता है-शिष्या यदुत्कर्षमवाप्नुवन्ति प्रभाव एवैष गुरोरमोघः। ऐसा अमोघ प्रभाव द्विवेदी जी बार-बार अपने छात्रों, सहकर्मियों, आत्मीयों, परिचितों और पाठकों पर अपने उदात्त स्वभाव, शील, साहित्य और जीवन-व्यवहार के द्वारा प्रकट करने में सफल होते हैं क्योंकि- 'बाद में नामवर जी ने बताया कि गुरुवर सम्बन्धों को ताड़ लेने में माहिर हैं। (पृ. 236)।' वस्तुतः सम्बन्धों को ताड़ लेने का यह आघ्राण द्विवेदी जी में सिर्फ व्यक्ति से व्यक्ति के बीच ही नहीं बल्कि व्यक्ति से समाज, लेखक से पाठक, रचना से आलोचना, इतिहास से वर्तमान एवं अध्यापक से छात्रों तक के संबंधों में परिव्याप्त हैं। शुरू में ही हमने कहीं कहा है कि जितने सृजनशील आयाम द्विवेदी जी में परिलक्षित होते हैं उतने किसी भी दूसरे प्राध्यापक में नहीं। इसी में यह भी जोड़ा जा सकता है कि द्विवेदी जी की शिष्य-मण्डली में जितने लेखक पैदा हुए उतने किसी अन्य प्राध्यापक के सानिध्य में नहीं। इसके पीछे सबसे बड़ा कारण शायद यह है कि हजारी प्रसाद द्विवेदी मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक लोकतांत्रिक वातावरण प्रदान करने के पक्षधर थे। इसके लिए किसी भी प्रकार की हार्डलाइन उन्हें अमान्य थी। मनुष्य की जिजीविषा को लोकतांत्रिक वातावरण प्रदान करने की उनकी सोच यहाँ तक जा सकती थी- 'विकलांग है, तिकड़म भी न करे तो जीवित कैसे रहेगा आज के जमाने में। (पृ.298)।' इसी लोकतांत्रिक सोच के चलते द्विवेदी जी अपने पाल्यों और प्रियजनों तक पर अपने विचार थोपने के बजाय विचार-स्वातंत्र्य को बढ़ावा देते हैं। बकलमखुद विश्वनाथ जी- 'नहीं। तुमको 'संदेश रासक' पर काम नहीं करना है। मैं अपने बच्चों से उनकी इच्छा के विरुद्ध लेटरबाक्स में चिट्ठी डालने के लिए भी नहीं कहता। तुम ठीक से अपनी इच्छा का विषय सोचकर आओ। और विद्यार्थियों ने कई अध्याय लिख लिए हैं। तुम अभी विषय ही नहीं तय कर पाये। तुम कुछ नहीं कर पाओगे। (पृ.179)।' यहाँ भी विश्वनाथ को मतिभ्रष्ट करने के लिए नामवर जी बैठे हैं जिन्होंने लेखक को 'संदेश रासक' की जगह 'प्राकृत पैङ्गलम्' पर काम करने के लिए उकसाया है। कौन जाने यह नामवर जी की 'मुराही' रही हो गुरुवर से विश्वनाथ जी की फजीहत कराने की। जो भी हो लेकिन इस गुरु-कोप में गुरु-कृपा का जो स्नेह निहित है वह तो अद्भुत ही है। ऐसे स्नेहिल गुरु के चुम्बकीय व्यक्तित्व से विश्वनाथ जी का समूचा सतीर्थ मंडल यदि मोहाविष्ट है तो उसके सापेक्षिक कारण स्पष्ट हैं। एक ओर डॉ.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नगेन्द्र जैसा प्रतापी अध्यापक जो अपने दबदबे के बूते विभागों में नियुक्ति, पदोन्नति, पदावनति आदि के जरिए सत्ता हस्तांतरण को सायास प्रोत्साहित करता है, जहाँ वर्चस्व और भय केन्द्र में है वहीं द्विवेदी जी जैसा प्राध्यापक इसलिए इतना आदरास्पद और लोकप्रिय है क्योंकि वह विकेन्द्रीकरण का हिमायती है। परंपरा का यह कंट्राडिक्शन तब और मार्मिक बन जाता है जब डॉ. नगेन्द्र अपनी स्थापित शिष्य-परंपरा पर पश्चाताप करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। हिन्दी की पहली महिला प्रोफेसर डॉ. सावित्री सिन्हा का विश्वनाथ जी से यह कथन- 'डॉ. नगेन्द्र तुमसे इतने खुश हैं कि हर पाँच मिनट बाद कहते हैं, त्रिपाठी ने विश्वविद्यालय बदल दिया। अपना सुपरवाइजर (द्विवेदीजी) नहीं बदला। वे फिर अपने अनेक शिष्यों का नाम भी लेते हैं अनेक अकथनीय विशेषणों के साथ। (पृ. 276)।' कहने की जरूरत नहीं कि ये अकथनीय विशेषण कैसे रहे होंगे।

विश्वनाथ त्रिपाठी तरह-तरह से द्विवेदी जी को पढ़ने, समझने, पकड़ने और मुक्त करने का प्रयास करते हैं। इस प्रक्रिया में वे उनके परिवार खान-पान, ओढ़ने-बिछाने-पहनने से लेकर आदतों तक का सूक्ष्म-निरीक्षण करते हुए उनके स्वभाव की बारीकियों पर भी नजर रखते हैं- 'पं. जी का स्वभाव विद्यार्थियों से या किसी से, किसी बात को दुबारा-तिबारा कहना नहीं था। (पृ.274)।' किसी बात को किसी संबोध्य व्यक्ति से केवल एक बार कहने (दुबारा-तिबारा न कहने) वाले स्वभाव के कई आशय होते हैं- (एक) यदि एक बार में कही गई बात की नोटिस संबोधित व्यक्ति नहीं लेता तो प्रयोक्ता की बात में ही अपेक्षित गंभीरता नहीं है। (दो) सम्बोधित व्यक्ति ही प्रयोक्ता की बात को हल्के ढंग से लेकर बात की अनदेखी या उपेक्षा कर रहा है। (तीन) दुबारा-तिबारा कहकर बात को थोपने की कोई जरूरत नहीं है। (चार) अपनी या संबोधित व्यक्ति की पात्रता संदिग्ध है। (पांच) अपनी अपेक्षा ओर उपेक्षा के साथ-साथ औरों की अपेक्षा और उपेक्षा का पूरा-पूरा ख़्याल रखा जा रहा है आदि। द्विवेदी जी के संकोची एवं मुँहदुब्बरपन वाले व्यक्तित्व को भी विश्वनाथ जी बैकफुट पर नहीं आने देते। इसके लिए वे 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से कुमार कृष्णवर्द्धन एवं बाणभट्ट के कथनोपकथन को उद्धृत करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं- 'यह उस भोजपुरी दरिद्र विद्वान, ब्राह्मण की भाषा है जो हाथी पर बैठे जमींदार को आशीर्वाद देने के लिए पेड़ पर बैठ गया है। (पृ.85)।' अर्थात् संकोची स्वभाव के बावजूद द्विवेदी जी किसी हीनग्रंथि के शिकार नहीं बल्कि स्वाभिमान एवं आत्मदर्प से दीप्त हैं!

इस कृति में विश्वनाथ त्रिपाठी अपनी प्रगतिशील प्रतिज्ञाओं के साथ स्वाधीन भारत के साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक विवरणों का एक चलता-फिरता इतिहास भी तैयार करते हैं। इसमें उनका सजग आलोचक बहुत ही सचेत किन्तु गुपचुप ढंग से हमारे समय के विमर्शों में प्रविष्ट होता है। विश्वनाथ त्रिपाठी साहित्य में सिर्फ़ भाषा का आश्रय लेकर मैदान में उतरने वाले आलोचक नहीं और न ही वे आलोचना के पूर्वस्थापित जखीरों से ही लड़ाई लड़ने वाले हैं। वे कभी भी आलोचना का प्रमाण-पत्र लेकर सामने नहीं आते बल्कि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सदैव एक प्रवेश-पत्र के साथ ही सामने आते हैं और साहित्य के क्या वस्तुनिष्ठ क्या व्यक्तिनिष्ठ और क्या समाजनिष्ठ सवाल वहीं हल करते हैं। पर ये हल काफी आस्वादपरक, विश्वसनीय और आँख खोलने वाले साबित होते हैं। यह काम चाहे वे आलोचनात्मक विवेक से करें या श्रद्धाभाव से या आँख मूँदकर अथवा किसी रौ में। पर द्विवेदी जी से ही उन्होंने किसी पर अंधश्रद्धा न करना भी सीखा है। विश्वनाथ जी के जिन गुपचुप सामयिक विमर्शों का संकेत किया गया है उसके दायरे में धर्मनिरपेक्षता, भारतीय समाज की जातीय हकीकत, समाजवादी-साम्यवादी मूल्य, दलित विमर्श, स्त्री विमर्श आदि सभी आते हैं। सबसे पहले विश्वनाथ त्रिपाठी बहुत ही संचेत ढंग से बीएचयू अर्थात् लोकप्रचलित बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के 'हिन्दू' शब्द से परहेज करते हुए तथ्याधारित काशी विश्वविद्यालय का सम्पुट तैयार करके अपनी सामासिकता को आधारभूत ढंग से प्रस्तावित करते हैं। वस्तुत: ऐसी सामाजिकता वे द्विवेदी जी से ही अर्जित करते हैं। इसके लिए वे एक ओर तो शिवमंगल सिंह 'सुमन' को 5.7.49 को लिखे पत्र का हवाला देते हैं- 'अपभ्रंश कविता के भीतर चली आती हुई पश्चिमी सेक्यूलर प्रवृत्ति। मेरा मतलब शकों, गूजरों और आभीर आदि लोगों से है। जिनके वंशज बाद में मुसलमान हो गए। (पृ.210)।' तो दूसरी ओर भाषा-आयोग के सिलसिले में कश्मीर यात्रा से लौटे द्विवेदीजी- 'वे उल्लसित होकर कहते ऐसी सुन्दर लड़कियाँ, किशोरियाँ, कन्याएँ साक्षात् पार्वती। कश्मीर की किशोरियाँ, अधिकांशत: मुस्लिम लड़कियाँ, पं. जी को साक्षात पार्वती लगतीं (पृ.356)।' सामासिकता की इसी विरासत को विश्वनाथ त्रिपाठी विश्वभारती में 'हिन्दी भवन' के शिलान्यास को दीनबंधु एण्ड्रयूज के हाथों कराये जाने को लक्ष्य करके और परमोज्वल बना देते हैं। धर्मनिरपेक्षता के इस और ऐसे मूल्य स्थापित करने के साथ-साथ लेखक, 'भारतीय समाज में जाति एक सच्चाई', जैसे विमर्श को भी अप्रत्यक्ष रूप से रेखांकित करता है। द्विवेदी जी के ब्राह्मण वंशोद्भव की ओर संकेत करते हुए, रूढ़िवादी संस्कारों के साथ शांतिनिकेतन-प्रवेश के समय भोजन की स्वपाकी समस्या से दो-चार होते हुए भी, अपनी पृष्ठभूमि में निकृष्ट दारिद्रय, झेल चुके गुरुवर की, विश्वनाथ जी वंचित वर्ग के प्रति आत्यंतिक सहानुभूति के रूप में व्याख्या करते हैं। जीवन की तंगी और विषमता उन्हें रूढ़ ब्राह्मणवाद के कुसंस्कारों से मुक्त भी करती है एवं सदा-सदा के लिए उनका पक्षधर बना देती है जो सामाजिकार्थिक रूप से निर्बल हैं। द्विवेदी जी के ब्राह्मण होने की-सवर्ण कहे जाने वाले कुल की-विडम्बना लोकधर्मी संस्कृत कविता की उस विडम्बना से बहुत मेल खाती है जिसमें जात्युच्चता के चलते अकाल में और तो और ब्राह्मण से कोई मजदूरी भी नहीं कराना चाहता क्योंकि नरक में पड़ जाने का भय है, भीख और कर्ज़ मिलना तो दरकिनार-

न भिक्षा दुर्भिक्षे पतति दुखस्था कथमृणं,
लभन्ते कर्माणि द्विज परिवृढान् कारयति कः।
अदत्वाऽपि ग्रासं दिनपतिरसावस्तमयते,
क्व यामः किं कुर्मः ? गृहिणि! गहनो जीवनविधिः।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'कहाँ जाई, का करी' वाली तुलसी की बेरोजगारी वस्तुतः इसी क्व यामः किं कुर्मः ? का उल्था है। अतः द्विवेदी जी की आर्थिक स्थिति का विश्वनाथ जी अनेकधा जिक्र करते रहे हैं और इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं- 'आज जिसे निम्नवर्गीय, हाशिए या सबआल्टर्न कहते हैं, हिन्दी साहित्य में उस अध्ययन के पुरस्कर्ता-चिन्तक पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी हैं। (पृ. 84)।' द्विवेदी जी की इस दृष्टि को वे तब और विस्तार तथा गहराई प्रदान करते हैं जब उनके साहित्य की व्याख्या में निमग्न होते हैं। यहाँ वर्ग-विभेद और वर्ण-विभेद स्वतः स्पष्ट होते जाते हैं। एक ओर 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का विवेचन- 'भट्टिनी बत्तीस लक्षणों से युक्त यानी शांति-निकेतनी पात्र है तो निउनिया और चन्द्रा ठेठ पूर्वी उत्तर प्रदेश की दलित पात्र। शांतिनिकेतन के सुसंस्कृत पात्र अन्ततः राजसी हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश के पात्र देखे हुए, कथाकार के रक्त में डूबे हुए। (पृ.85)।' तो दूसरी ओर 'ठाकुर जी की बटेर' निबंध के जरिए तमाम वादियों को द्विवेदी जी की तुला पर नाप देते हैं- 'द्विवेदी जी का यह स्वर सामान्य हिन्दी वालों के स्वर से भिन्न है। यह स्वर हिन्दुत्ववादियों से ही नहीं, वामपंथी बुद्धिजीवियों से भी भिन्न है। यह स्वर न वर्णाश्रमवादियों को सुनाई देता है न डॉ. धर्मवीर को। द्विवेदी जी का विरोध संकीर्णता के प्रति असह्यता के कारण है, दलित और मुसलमानों के प्रति आत्मीयता के कारण है। (पृ. 363)।' इन कारणों की खोज करते हुए विश्वनाथ त्रिपाठी इस बात के लिए भी एक सादा पन्ना हमेशा साथ रखते हैं कि द्विवेदी जी मार्क्सवाद-विरोधी नहीं थे पर उस मार्क्सवाद के समर्थक भी नहीं रहे जो सैद्धांतिक शब्दावलियों की गरज-तरज में हकीकत को नजरन्दाज करता रहा। परिणामतः द्विवेदी जी के व्यक्तित्व-निरूपण में लेखक बहुत ही दिलचस्प हकीकत बयान करता है- 'पं. जी न झगड़ा कर सकते थे न उद्योग। वे फाइटर नहीं थे। (पृ. 206)।' यहाँ 'फाइटर' शब्द ही सबसे दिलचस्प है, जो एक मार्क्सवादी कोड की भांति प्रयुक्त होता रहा। इसका अर्थ लड़ाकू, योद्धा, जाँबाज या संघर्षशील ही है। इस 'फाइटर' का प्रयोग विश्वनाथ त्रिपाठी ने जानबूझकर-मुराहीवश-ही किया है। तो क्या द्विवेदी जी को वे संघर्ष-विमुख सिद्ध करना चाहते हैं? कदापि नहीं। जिजीविषा का ऐसा धुर समर्थक संघर्ष-विमुख कैसे हो सकता है ? अलबत्ता उनमें विजिगीशा लेशमात्र न थी। जीवितुम इच्छति यः सः जिजीविषुः। हर कोई हर हाल में जीवन जीने की कामना से भरा हुआ है। किन्तु जेतुम् इच्छति यः सः विजिगीषुः। जो हर हाल में दूसरों को जीत लेना चाहता हो। विश्वनाथ त्रिपाठी का आशय यही है कि द्विवेदी जी खुद हार का वरण कर सकते थे पर औरों को हारते हुए नहीं देखना चाहते थे। वे वास्तव में साहित्य के फ्रीडम-फाइटर थे। अतः यह भी अकारण नहीं कि लेखक उनका उल्लेख बार-बार स्वतंत्रता-प्राप्ति की परिस्थितियों के बीच करना आवश्यक समझता है।

इसी आलोचकीय विवेक, अविचल गुरुनिष्ठा और लेखकीय प्रतिज्ञा के साथ विश्वनाथ द्विवेदी जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का नानापुराणनिगमागमसम्मत आडोलन करते हैं। प्राक्तन जीवन और साहित्य से चलते हुए कालिदास, बाणभट्ट, कबीर, तुलसी, निराला, मुक्तिबोध आदि को उद्धृत करते हुए वे अपने समय के अज्ञेय, शिवानी, शिवमंगल सिंह सुमन, शिवप्रसाद सिंह,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिवानी, बलराज साहनी, त्रिलोचन, जानकी वल्लभ शास्त्री, विष्णुचंद्र शर्मा, केदारनाथ सिंह, नित्यानंद तिवारी, अमरकांत, काशीनाथ सिंह और स्वाभाविक रूप से सबसे बढ़कर नामवर सिंह को अपने आजू-बाजू रखते हुए चलते हैं। द्विवेदी जी के परित: बनारसीदास चतुर्वेदी, डॉ. नगेन्द्र एवं साहित्य-विधा के मान और मूल्यांकन के लिए खुद और प्रतिष्ठा के दांव पर लगा देने वाले डॉ. इंद्रनाथ मदान की तो जैसे उन्होंने पुनर्स्थापना ही की है। वैचारिक विमर्शों के साथ यहां भाषा-विमर्श, जमीनी-विमर्श और साहित्य विमर्श भी खूब है। अपने गुरु के प्रति तटस्थ न रह पाने- अतिसंलग्नता या अतिसंलिप्तता-के नाते ही कई स्मृतियों की बिम्बमाला बार-बार कौंधती है जिन्हें सहेजना या संभालना लेखक आवश्यक नहीं समझता। इसीलिए द्विवेदी जी के व्यक्तित्व के अनुरूप ही ग्रंथ में भी झोल हैं और वह कोई खोट नहीं बल्कि उनके जीवन-सौंदर्य को और झिलमिलाता है। सबसे ध्यातव्य यह कि जिस कृतज्ञता-बोध को द्विवेदी जी बहुत बड़ा जीवन-मूल्य स्वीकार करते हैं, विश्वनाथ जी भी उसे बरकरार रख सके हैं। इसका सबसे अकाट्य प्रमाण यह कि संस्कृत के जिस अल्पज्ञात प्राध्यापक पं. सुरेश चंद्र त्रिपाठी के सौजन्य से वे हजारी प्रसाद जी का दुर्लभ नैकट्य प्राप्त कर सके, उन्हीं को उन्होंने यह कृति समर्पित की है। इस स्मृति-ग्रंथ की चित्रावलियों में संकलित दो चित्र अद्भुत ढंग से मनोहर हैं। पहला रवीन्द्रनाथ ठाकुर की स्नेह-छाया में द्विवेदी जी वाला और दूसरा उनका दाढ़ी-मूँछ और सचश्म प्रौढ़-वय का चित्र, जिसमें उन्हीं की हस्तलिपि में- 'अकृत्वा पर सन्तापं, अगत्वा खल-मन्दिरम्/अनुत्सृज्य सतां वर्त्म, यद् स्वल्पमति तद् बहु'- जैसा नीतिश्लोक उद्धृत है। यही श्लोक द्विवेदी जी की जीवन-लीला का मर्म और बीज वाक्य है, जिसका आद्यंत पल्लवन विश्वनाथ जी ने किया है। संभवत: यही 'यद्स्वल्पमपि तद् बहु' ही उनके इतिवृत्त का अतिवृत्त है-कृतित्व और व्यक्तित्व की दुर्लभ एकमेकता इन पंक्तियों में अभिलक्षित होती है- 'ललित निबंध की जो शैली है, वही उनके जीवन-यापन की विधि है।' द्विवेदी जी के जीवन-यापन की इस विधि के साक्षी विश्वनाथ त्रिपाठी यह कृति रचकर भले ही गुरु-ऋण से उऋण हो गए हों, पर इसके लिए हिन्दी समाज उनका सदैव ऋणी रहेगा।

संस्कृत महाविद्यालय चित्राखोर
पो. बरहुआ, जिला-बस्ती (उ.प्र.)
पिन-272123
मो. 09415356433

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समझ और काव्यानुभूति का लोकवृत्त

रेवतीरमण

प्रेमशंकर रघुवंशी उत्तर-आधुनिक दौर के प्रगतिशील कवि हैं। किन्तु वे पुराने दौर के प्रगतिशील कवियों की स्मृति को कभी धूमिल नहीं पड़ने देते। पुराने और नये दौर के बीच उन्हें संवाद-सेतु के रूप में देखना भी कई मामलों में विजेन्द्र सरीखे प्रतिबद्ध कवि-आलोचक से अलग करके देखना होगा। उन पर भवानी प्रसाद मिश्र के अन्दाजेबयां का भी कुछ असर है। वह सामान्य साक्षर को भी अपने संवेदन-वृत्त में गहरी क्षमता से लाते हैं। विजेन्द्र की कविता का जनपद बड़ा है, उनमें एक क्लासिक रुझान है। रघुवंशी की जनपदीय चेतना भी कम लक्षित नहीं होती किन्तु वह अधिक आवेगपूर्ण है। उसमें विरुद्धों के बहिष्कार की प्रवृत्ति कम है। लेकिन लोक-संवेदना दोनों में स्वकीय शब्दावली का रचनात्मक उपक्रम है। विचारधारा से रघुवंशी जी अनभिज्ञ नहीं हैं किन्तु विजेन्द्र की व्यवस्थित समझ और सैद्धांतिकी की तुलना में उनकी रचना-रति कहीं ज्यादा प्रबल है। उन्हें गद्य में ज्ञानात्मक संवेदना की तनी हुई आकृति के साथ देख पाना मुश्किल है। वह ज्यादा शत्रु-मित्र का फर्क भी नहीं करते।

इधर रघुवंशी की कविताओं के तीन नये संग्रह प्रकाशित हुए हैं- 'देखा, बिना नाम के तुम्हें' (2010), 'प्रणय का अनहद' (2011) और 'नहीं रहने के बाद भी' (2011)। इसके पहले भी उनके कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनके साक्ष्य पर मैं कहना चाहता हूँ कि कविता की पकी फसल-जैसी अनुभूति के बावजूद संवेदना शिथिल नहीं हुई है। गीत, नवगीत, मुक्त छन्द, प्रबन्ध कविता के विविधरूपों में प्रयोगशील रघुवंशीा केदार, त्रिलोचन, विजेन्द्र की संगति के एक सहज विचार-सम्पन्न कवि हैं। उनमें अन्तःकरण के आयतन के विस्तार के दृष्टान्त हैं। यानी सहजता और आत्मीयता को काव्य-मूल्य माने बिना उनके सृजन का रहस्य समझ में नहीं आयेगा। रघुवंशी दरअसल सतत् मित्र-संवाद के कवि हैं। वे पास बुलाते हैं और मन मिल जाये तो अन्ततक निभाते हैं। उनकी नाराजगी भी विमर्शात्मक होती है। एक अनुरागबद्ध समझाइश। उन्हें नागार्जुन और हरिशंकर परसाई की तरह व्यंग्य-प्रहार करते देखना मुश्किल है। कटुता उनके चित्र में नहीं है या किसी ने अधिक दिल दुखा ही दिया तो जो व्यंग्य किया है उसमें भी बेध डालने वाली बात नहीं है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

महर्षि वाल्मीकि ने व्याध को शाप दिया, उसे 'मानिषाद प्रतिष्ठा... कहा, यह सच है। किन्तु इससे भी बड़ा सच है कि उनमें क्रौंच के प्रति करुणा भाव था। रघुवंशी करुणा से परिचालित हैं। उनकी आलोचना-वृत्ति सकारात्मक पहलुओं से अनुबंधित है। कई बार तो वे जानबूझकर संप्रेषण को सर्वसाधारण के पक्ष में अचूक बनाने के लिए अपने ऊँचे आसन से उतरकर उनके बीच ही आकर बैठ गये हैं। भाषा में, प्रस्तुति में जनसंबद्धता की चिन्ता एक प्रगतिशील कवि की स्वाभाविक चिन्ता है और ऐसी प्रतीति खास नहीं। खास वह इसलिए हुई है कि शिल्प-सजगता के बरअक्स है। अपनी श्रेष्ठ कविताओं को भी वह आदरणीय 'कलावस्तु' बनने से मानो मना कर रहे हों। इससे उनकी क्षमता संदिग्ध नहीं लगती। बल्कि, ऐसा करना उनकी एक रणनीति हो सकती है। उनमें एक स्वभावजन्य अल्हड़ता है, बेफिक्री और निहंगता है। वह बन्धन तोड़ने की कला से अधिक दिलों को जोड़ने की कला के प्रचारक हैं। उन्हें अपना यह प्रयोजन इतना प्रिय है कि आजकल के परिदृश्य में वह बड़ा कवि कहलाना ही नहीं चाहते। यह नहीं कि वे अच्छी कविताएं नहीं लिखते, लिखते हैं और इस समझ के साथ लिखते हैं कि अच्छी कविता लिखने से पहले अच्छा आदमी होना जरूरी है। अच्छी कविता लिख लेने के बाद भी अच्छा आदमी होना जरूरी है। यह कविता को भविष्य में भी बचाये रखने के लिए जरूरी है। यह काम कविता ही कर सकती है। इसलिए आज एक कवि को अधिक सजग रहने की जरूरत है। वह सभ्यता से मुठभेड़ करे, अच्छी बात है, लेकिन संस्कृति को न छोड़े। कविता भाषा में संस्कृति है, वह मनुष्यता की मातृभाषा है तो इस बात को याद रखने की जरूरत है।

रघुवंशी अच्छी कविता की बात करते हैं तो अच्छी कविता की उनकी एक कसौटी भी है। वह मंचीय गलेबाजी को कविता नहीं मानते। मंचीय सफलता संप्रति एक छलावा है। वह कविता को उपभोग की वस्तु बना देती है। जबकि खुद को भाषा में रूपान्तरित करके जनहित-साधना एक बड़ी बात है। रघुवंशी में गहरी आत्मीयता है, मिलने-बतियाने की ललक है बिल्कुल भगवत रावत जैसी। दोनों स्पष्टतावाद की गिरफ्त में आने से बच जाते हैं, पर ज्यादा उलझाते नहीं हैं। आदमी तो खैर अव्वल हैं। अच्छी कविता, बहरहाल, आठ खंडों में बनी है। वह कहीं क्रौंची का विलाप है, कहीं पसीने का सर्वहारा छन्द है। कहीं वह सर्वशक्तिमान को ललकारने की कूबत है। वह एक ओर यदि 'शिव की जलहरी' है तो दूसरी ओर 'राम से ज्यादा राम की गिलहरी है। यह भी कि अच्छी कविता दोस्त सपनों की सम्पन्न करती है।' यानी कविता में समझ और संवेदना का एक लोकवलय है। जिन्हें अधिक कला चाहिए वे स्वायत्तता के लिए संघर्षरत रहते ही हैं। रघुवंशी जी लोकाचार को प्रतिरूपित करते हैं, फिर भी वह है संवेदनात्मक ज्ञानधारा के ही कवि। मूलतः मनोदशा से अनुप्राणित। मनोवृत्ति और युक्ति का द्वन्द्व और तनाव कविता में उनकी स्वकीयता है। वह पूरे धैर्य से विचार-बीज को अंकुरित-पल्लवित होते हुए देख सकते हैं, अपने संवेदन-जल से सींचते हुए। जब तक कि उसमें फूल-फल न लग जाये। मसलन, 'टिपान्या से कबीर पद सुनते हुए' कविता में वह मन पर पड़े प्रभावों का संकलन-संयोजन करते हैं। ***कबीर को मालव शैली में गाते टिपान्या/जिस लोक में लिये चलते/वहाँ के***

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

द्वार/चाँद सूरज के हाथों निर्विघ्न खुलते हैं। इन्हीं दरवज्जों से गुजरती सुखनाबाई। मानसरोवर के खिले कमल पर आसन लगाए। जब अनहद का आलाप छेड़ती तो लग जाती। अमृत की झड़ी आकाश से। जिसका पान करते श्रोता खुद कबीर होने लगते।' (पृष्ठ 36)

गायक टिपान्या हो तो दरवज्जों से गुजरती सुखनाबाई होगी ही। कबीर का अनहद गायन सुनने वालों के मन-मिजाज को अनहद करे, यह स्वाभाविक है। रघुवंशी जी इसे ही कला मानते हैं। यह नहीं कि उनका शास्त्रीय पक्ष कमजोर है। पर वह नया शास्त्र रचते हैं। कविता का नया सौंदर्य शास्त्र रचते हैं। वह लोक रंजक रचने का प्रयोजन है क्योंकि बदलाव की प्रक्रिया अन्दर से बाहर की ओर है। रघुवंशी जी उत्पाद के नहीं सहृदय-संलाप के कवि हैं। ये उन्हीं की पंक्तियां हैं-

देखा, बिना नाम के तुम्हें/तो सही दिखाई दीं तुम-
खुद को भी इसी तरह देखा
तो सही-सही देख लिया खुद को
अब, बिना किसी नाम के मिलें हम
जैसे कि नदी, नदी से मिलकर नदी होती है
और सागर से उसकी खारी तासीर जाने बिना
अपना मीठा कोश लुटाती है।'

• •

उगना चाहता एक पेड़ हमारे अन्दर
आओ! हम बीज की तरह समालें अपनी जमीन में उसे।
अंकुरण के साथ जब गोद में उठाये मौसम-तो हम
हरितरंजक द्रव्य की तरह/समा जायें पोर पोर में पेड़ के
इससे पहले कि सुबह की किरणें/प्राणों में प्रवेश करे
हम ओस से आँखें धोकर/सूर्य नमस्कार को तत्पर हो लें
और भूल जायें कि अंकुरण के पूर्व क्या थे हम।
(देखा, बिना नाम के तुम्हें, पृष्ठ 4)

यह भाषा गहरी क्षमता और आत्म विश्वास में भरे कवि की भाषा है। यह युक्ति की प्रयुक्ति से कहीं ज्यादा स्वभाव का विन्यास है। रघुवंशी ने प्रगतिशील जीवन मूल्यों और सपनों को अपनी संवेदना में ढाल दिया है। वह लोक हृदय में लीन होने की बात है। सामाजिकता इस कविता का शील है और सौन्दर्य है अखिल सृष्टि। इसमें ताकत भरती है नैतिकता। कवि-व्यक्तित्व इतना पूरा कि अविचलता का प्रतिमान। रघुवंशी की कविताओं पर जो पूरी-अधूरी टिप्पणियां हुई हैं, आलेख लिखे गये हैं, वे विमर्शकों के अपने-अपने रेस्पांस हैं। खुद कवि उनसे बेहतर जानता है उनके बारे में। उसकी आत्म-प्रतीति कहीं बढ़कर है-यह कि कोई छूकर भी महसूस कर सके उसके भाव-विचार। 'स्पर्श मात्र से उसके तन-मन में समा सके ऊष्मा।'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कवि अनुपस्थित हो तब भी उसकी अभिव्यक्ति कविता अपनी उपस्थिति का एहसास कराती रहे, यह कामना। *राग-रागिनियों की तरह हवा में/नदियों-झरनों की तरह मैदानों-वनों-पठारों पर चहकती रहें/उड़ती रहे। फिजाओं में ओर-छोर।'.... जिन्दा रहे कविताएं/प्रयाण के बाद भी'* (देखा, बिना नाम के तुम्हें, पृष्ठ-7)

रघुवंशी हिन्दी की यथार्थवादी कविता परम्परा को जातीय-स्मृति से समृद्ध करने वाले कवि हैं। जैसे केदारनाथ अग्रवाल खुद को चन्द, सूर, तुलसी का वंशज समझते हैं। उन्होंने करुणा को केन्द्र में रखा है-*'क्षण भर को भी हटती/मन के आसन से कविता और करुणा/तो धरती धुरी से हटने लगती है/और नक्षत्र नाभिनाल से* (वही, पृष्ठ-21)

यह करुणा ही है जो संवेदना को नितान्त समसामयिक का स्थानापन्न होने से बचा ले जाती है। इसमें पूरा परिवार आता है। न जाने कितने तत्पर रूपों में पत्नी आती है, बेटी, बहू, भाभी, दादी, नानी, माँ और सर्वोपरि 'कृति' की किलकारियाँ हैं। अपनी ही सृजन चेतना से सुरक्षित पत्नी है जो बच्चों को ममता से डांटती भी है। *सुबह से शाम तक सूरज-चांद होती/घर गिरस्ती को धनिया की पत्तियों-सी चुनती/पोर-पोर सुलझाती।* पुत्र के जन्म-दिन पर कवि चिन्तित है। इसलिए भी कि *'आजकल कोई भी चट्टान सहारे की भाषा नहीं बोलती। कोई भी नक्षत्र अछूता नहीं।'* कवि-व्यक्तिवादी होता तो अपनी चिन्ता को पुत्र तक ही सीमित रखता। वह अपने समय के साथ भी उतना ही ईमानदार है, उतना ही संवेदनशील। उसे पता है कि उसके पुत्र का भविष्य युग की अन्धकोठरी से अलग नहीं है, जिसमें मशाल जलाने की जरूरत है।

कविता लिखने की धुन में कविता पर कविता, किसिम-किसिम की कविता लिखता जाता है कवि। अब कविताएं हैं तो पाण्डुलिपियां भी होंगी ही। प्रकाशित होने-से पूर्व तक कवि उन्हें बार-बार संशोधित परिष्कृत करता है। *'हर बार बच्चों-सी कुनमुनाती है कविता। और हर बार धारोण्ण दूध की तरह/झाग-झाग झरती जाती ताजा कविता।'* कविता के भविष्य को लेकर इतना आश्वस्त कि लिखता है, *'अब तक बच्चों में कुनमुनाहट और माँ की छोती में/दूध की सर्जना है। कविता की आखिरी पांडुलिपि/बार-बार तैयार होती रहेगी।'* इससे यह नहीं समझना चाहिए कि उसके लिए कविता अकेले कंठ की पुकार है। रघुवंशी की एक किंचित भिन्न स्वाद-बोध की कविता है- 'परिवार का काव्योत्सव' इसमें पाठ, श्रवण और विभादन का एक वृहत्तर परिवार है-बेटे-बेटी, बहू-दामाद, पुरा-पड़ोसी, चौपालें भी। इसमें सबकी सहभागिता है। कवि सुना रहा होता है तो बर्तन मांजने वाली, नाइन, अम्मा, कुटवार भैया, खर्रा फेरती गोबरवाली और भैंस के धनों को पाती से धोते भैया भी हैं। इसी बीच फाटक से बाबा की आवाज लगाते गुरुजी/उसारी तक आ जाते आंगन से ही कविता का अरथ समझाते। कविता दिनचर्या को नीरस नहीं होने देती। काम करते रहो, गुनगुनाते हुए। रघुवंशी अच्छी कविता लिखते हैं, इसका यह अर्थ नहीं कि काव्येतर अन्य कार्य जैसे-जैसे करते हैं। वह हर काम उतनी लगन और तन्मयता से करते हैं। कचरा बुहारने से लेकर बीज बोने, फसल काटने तक-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

छाँटना हो खरपतवार या कि शूल
मैं हर काम का महकता फूल होना चाहता हूँ। (पृष्ठ 83)

केदारनाथ अग्रवाल से भी बढ़कर है रघुवंशी का नदी-प्रेम। नदी कहीं की हो, भरी या सूखी देखकर अनायास जुड़ जाते हैं उनके हाथ। नदी उनकी कविताओं में 'कृतज्ञ भाव की धारा है/जो कभी पतली नहीं हुई।' नदी उनकी अन्तरचेतना को प्रतिरूपित करती है। उसमें विस्तार है, गति है और बहा ले जाने, भिंगो देने की तत्परता है। रघुवंशी की एक संक्षिप्तकाय बड़ी कविता है- 'इबारतें'। यह उनके भीतर उमड़ती रचना का आवेग दर्शाती है-

कवि लिखता है, - *'भाषा ने जब आकाश की तरफ देखा/तो नीले पन्ने पर सूरज से/ऊर्जा लेकर चाँद-तारों ने/ इबारतें लिख डालीं उस पर।'*

इसमें भाषा, आकाश, सूरज, चाँद-तारे सबकी भूमिका है। रघुवंशी की कविता वह इबारत है जो सबके प्रति आत्मीयता में घटित होती है। यह स्वभावतः कवि की प्रतीति है। उसका आधुनिक और समकालीन होना इस अवधारणा का विखंडन है कि कविता लिखने वाले सिर्फ कविता लिखते हैं। वे कोई और काम ठीक से कर ही नहीं सकते। रघुवंशी जी ऊँचे से ऊँचे चढ़कर बोलते हैं। कभी वे कवि के रूप में देवदूत जैसे लगते हैं, हर साँस से सजग समस्त इन्द्रियों से, सारे कार्य सफाई से निष्पादित करते।

'प्रणय का अनहद' संग्रह की आखिरी कविता है 'कविता का आस्वाद पाते ही'। यह उन लोगों के लिए एक संदेश हे, नसीहत भी जिनकी कविता से कभी भेंट ही नहीं हुई। कविता कवि के समानधर्मा के इन्तजार में रहती है, यह एक ऊँचे किस्म के विभावन की बात हो सकती है। रघुवंशी भवभूति की वेदना में विश्वास नहीं रखते। उन्हें कविता देखने-सूंघने-चखने की चीज लगती है। कविता का आस्वाद पाते ही समस्त इन्दियां वाणी के तार-जैसी झनझना उठती हैं। *उसकी आभा से फूटने लगते हैं करुणा के छन्द। कविता का आस्वाद पाते ही जीवन का हरेक सत्य बहने लगता है विचारों की नदी की तरह। हवा की तरह प्राणवन्त होने लगती उमंग और हर जगत से संवेदित होने लगते प्रकाश के गतिवन्त चरण* (प्रणय का अनहद, पृष्ठ-119)

'प्रणय अनहद' है, इसमें कितना सत्य है, कितना तथ्य, इससे अधिक उल्लेखनीय है कि रघुवंशी चाहते हैं- हो जाए पूरी दुनिया ही उनकी प्रेमिका। वह कवि हैं- तो जाहिर है रचेंगे ही आलिंगनों की भरी पूरी संस्कृति। उन्हें प्यार मिला है इसलिए प्यार देने में कोई कमी नहीं करते। वे कभी प्रेममार्गियों से जा मिलते हैं, तब कहते हैं,- *'जिसे प्रेम नहीं मिला, उसे कुछ नहीं मिला। धन, आराम, सुरा, सुन्दरी, यश, वैभव सब व्यर्थ/प्रेम के वास्ते/ प्रेम को पा लेने के बाद।'*

(प्रेम का अनहद, पृ.-35)

प्रणय से भ्रम न हो कि रघुवंशी दिल फेंक इनसान हैं। दरअसल, उनका प्रेम दांपत्य-रति की आलोक ऊर्जा है। इसमें मांसल और ऐन्द्रियक तार- तार गुंथे हैं। इस उम्र में भी उनकी आकांक्षा बनी हुई है- *'लिख देना चाहता एक कलम अपनी कविता से/ बदन पर तुम्हारे/ उतार*

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देना चाहता मन में/ सभी इन्द्रधनुष अपने/ और भर देना चाहता/ प्रणय का अनहद/ रोम रोम में तुम्हारे- 'पृ.55 प्रणय की शब्दावली में कवि- चित्रकार एक दूसरे से होड़ लेते हैं- *'चुप रहो/ चुप/ बिल्कुल चुप/ रच लेने दो/ नख से शिख तक/ अमृत अधरों की प्रणवन्त तूलिका से/ कालजयी महाकाव्य काया पर।'* पृ.36 ज्यादा कवि एकान्त की अभ्यर्चना में लगे रहते हैं। उन्हें हुस्न,इश्क की बात धोके जैसी लगती है। प्रिया के वियोग में काव्यानुभूति गहन होती है। रघुवंशी अपनी पत्नी- प्रिया की अनुपस्थिति में एक शब्द नहीं लिख पाते। एक जगह लिखते हैं-

स्थगित है आंगन में/ दाल-बाटी का बनना/तुम्हारे नहीं आने तक/लहसुन की चटनी का/बाजरे की रोटी संग खाया जाना स्थगित है/स्थगित है नए कारज का शुरू होना घर में

इस कविता की पहली ही पंक्ति है,

'तुम्हारे नहीं आने तक कविता का लिखा जाना स्थगित है।'

प्रणय का अनहद में एक नीतिदीर्घकाय कविता है-'जामला'। यह कविता में बैल का वृतान्त है। पशु लोक से ऐसी आत्मीयता हमें संस्कृत कवियों में मिलती है। कालिदास से लेकर बाण भट्ट तक। हिन्दी में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'बलीवर्द' कविता लिखी थी। 'घोड़े' पर मंडलोई की कविता है। स्वयं प्रकाश की कहानी 'नैनसी का घूड़ा' या प्रेमचंद की 'दो बैलों की कथा' से पाठक परिचित हैं। 'जामला' में हम अपने समय के एक समर्थ किसान कवि से साक्षात्कार करते हैं। जामुन के रंग का केड़ा कब केड़ा से नटवा और नटवा से बैल बन गया, पता ही नहीं चल पाया। वृषभ की पूरा प्रतिमाओं से भी ज्यादा सुडौल- सम्मोहक, तेजस्वी, पुष्ट और वीर्यवान।' जामला की कितनी ही आकर्षक छवियां/ भरी है स्मृति में/ जो उभार आती चाहे जब/' कृषि संस्कृति उत्तर आधुनिक वाद की आंधी में सबसे अधिक नष्ट हुई है। पशु बल और प्रेम की जगह छोटे- बड़े यंत्र बल और प्रेम ने ले ली है। मनुष्य और पशु की आत्मीयता किसान जीवन का वैभव थी। वे दिन दुर्लभ हुए। गोशालाएं सूनी पड़ी है। सूनी है ढोर डंगर से भरी गुठान। इस कविता का उत्तरार्द्ध- विलाप है। सभ्यता- समीक्षा का स्वर-संत्रास।

यह गांव का संस्कार है, जो सौन्दर्य प्रतीत-हेतु अन्तःपूर का मुंह नहीं जोहता। गायों का अपने नवजात को चाटते- चूमते/ दूध पिलाना एक बेहतरीन दृश्य होता।-- और छानी में खुसा। अलगनी खूंटियों पर लटका घर भी/ जिसे देखने गोशाला तक दौड़ा चला जाता।

(प्र.का अ,पृ.86)

'जामला' के साथ 'बेड़ई' की चर्चा जरूरी है। 'जामला' बैल है तो 'बेड़ई' एक भैंस। वैसे 'बेड़या' पागगल का पर्यायवाची शब्द है और बेड़ई पगली का। लेकिन रघुवंशी की कविता की बेड़ई एक भैंस है जिसे उनकी दादी ने नाम दिया था। उसे सिर्फ दादी ही दुह पाती थी। धोखे से भी कोई और दुहने की कोशिश करता तो बेड़ई त्रिशूल जैसे तीखे सींगों से। मारने की मुद्रा बनाकर जोर जोर से फुस्कार उठती बिफर उठती। *'दादी के हाथों बना सानी भूसा न हो, तो खाती ही नहीं थी बेड़ई।'* ***लेकिन 'बच्चों के हाथ से सबकुछ खा लेती।'*** चाहे ***बासी-तिबासी रोटियाँ हों या घास की पूलियाँ।'*** दादी से भैंस की आत्मीयता थी। वह उनसे मार भी खा लेती

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बिना सींग हिलाए। दादी बीमार पड़तीं तो बेहई उन्हें इस अन्दाज में देखती 'मानो आँखों में औषधियां भरे/उपचार कर रही थी उनका।' रघुवंशी ने गहरी आत्मीयता में बेड़ई की मनोदशा और गतिविधियों का चित्रण किया है। कविता के अन्त में ज्ञात होता है कि बेड़ई एक दिन लापता हो गई। जंगल में उसकी आखिरकार लाश ही मिली- 'जहाँ शेर और बेड़ई के पंजों के असंख्य निशान थे।' रघुवंशी चाहते तो बेड़ई और शेर की लड़ाई का चित्र खड़ा कर सकते थे, किन्तु उन्होंने युद्ध-वर्णन में रुचि न दिखाकर माननीय संवेदना के विस्तार को ही इस कविता में वर्ण्य विषय बनाया है। तत्वत: यह उनकी एक सोची-समझी रणनीति है। उन्हें उत्तरआधुनिकतावाद के परिदृश्य से मुठभेड़ करना होता है, गहरे रचना स्तर पर। उनकी प्रगतिशीलता बाजार की सभ्यता का सच्चा सही विकल्प है।

कवि देख रहा है कि साम्राज्यवादी पूंजी से विकासशील देशों के हुक्मरान इतने अभिभूत हैं कि उन्हें अधिसंख्यजन की कोई चिन्ता ही नहीं रह गई है। पूंजीवादी लोकतंत्र में जिसकी लाठी उसकी भैंस है। 'नहीं रहने के बाद' संग्रह की कविताओं में यों तो अन्तर्वस्तु का वैविध्य मनोरम है। इसमें 'दिल्ली' और 'नदी' पर बड़ी संख्या में कविताएं हैं। इन विषयों पर क्रमश: भवगत रावत और केदारनाथ अग्रवाल की कविताएं भी ध्यान आकर्षित करती हैं। लेकिन इन पर विचार करने से पहले जरूरी है कि सभ्यता के कृत्रिम रूप से रघुवंशी का काव्य-व्यवहार कैसा है, जान लिया जाये।

'दुकान के मार्फत ही जाने जायेंगे घर' रघुवंशी की एक ऐसी कविता है जिसमें बाजार के बढ़ते आकर्षण का आतंक वर्णित है। बाजार ने ऐसे संसाधन जुटा दिये हैं जिनसे बचपना असंभव नहीं तो मुश्किल अवश्य हो गया है। नवीन प्रौद्योगिकी का कमाल है यह कि ***'अब मैं प्रेमशंकर ना होकर/हो गया हर काम को कम समय में करने वाला उपकरण।'*** बहुत पहले नलिन विलोचन शर्मा ने 'रोबोट' कहानी लिखी थी। उसमें आदमी के रोबोट बन जाने का मार्मिक आख्यान है। रघुवंशी जी विकास नये प्रारूप को कठघरे में खड़ा करते हैं। हमारी अपनी दुनिया हमसे छीनी जा रही है। ***'देखता हूँ ये शहर अब आँगन, ओढलों वाला नहीं रहा', जहां संझाबाई छोटी-सी गाड़ी में लुढ़ककर आ धमकती थी।'- जहां जनम-मरण के संस्कार फलते-फूलते वहाँ व्यापार ही व्यापार*** (नहीं रहने के बाद भी, पृष्ठ 131)

'संवादहीनता के दौर में' ***'खेत-खलिहान, वन-पहाड़ मैदान/एक दूजे के मुँह ताकते/प्यासे के प्यासे धूल फाँक रहे हैं।'*** (पृष्ठ 52)

कवि मानता है कि 'आपसी संवाद के बिना/कोई भी परिवर्तन संभव नहीं।' 'नेमावर', 'किसान का बारहमासा', 'नर्मदा की शाम', 'इकलसूमड़ा' और 'संदूकचा' इस संग्रह की वे कविताएं हैं, जिन्हें बाँचे-समझे बिना रघुवंशी के काव्य-मर्म तक नहीं पहुंचा जा सकता। यह वह प्रगतिशील है जो परम्परा में जीवन के अंश देखता है। वह जन, जमीन और मनुष्यता की चिन्ता करता है। इसमें गांव हैं, जंगल है, पालतू और वन्य पशु हैं। कवि खुद को उस 'संदूकचे' से प्रतिरूपित करता है जिसके भीतर जातीय स्मृतियाँ धरोहर हैं। यह और कुछ नहीं सहजता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और सामाजिकता को जारी रखने की आकांक्षा है। इस बोध के साथ कि *'हमसे ज्यादा/ कल्याणकारी हैं पेड़/कार्बन का गीलापन करते/और बदले में/लुटाते आक्सीजन का अमृत/ हमसे ज्यादा तत्त्ववती हैं लताएं/जो फूलती-फलती समर्पित होती हैं।'*

(नहीं रहने के बाद भी, पृष्ठ-82)

रघुवंशी की संवेदना 'नदीकद' है। उनमें नदियों, पहाड़ों, पेड़ों, पशुओं के प्रति लगाव ही कविता की संवेदना है। कवि को तामझाम, सभ्यता के आवरण, असत्य आचरण पसन्द नहीं। भारत की आत्मा गांवों में बसती है और भारतीयता उस ग्राम जीवन की हलचल, स्पन्दन का एहसास है तो रघुवंशी हिन्दी के एक ऐसे समकालीन कवि हैं जो भारतीय कवि कहलाने की क्षमता रखते हैं। भारत की संस्कृति को उसकी नदियां ही खासतौर पर वहन करती हैं। 'रेवा में धंसकर','नदी का अवतरण','खिलखिलाती नदी', 'नदी की सेज पर', 'नदी की आंखों में', 'मिलनातुर नदियां', 'लहूलुहान है नदी', और भी कई कविताएं नदी पर। रेवा में धंसकर तैरने का एहसास ही विरल है। सुध बुध खोये/घंटों तैरते रहे मंझधार में/तटवर्ती पेड़ों से कानाफूसी करती हवाओं की परवाह किये बिना। आकाश के सीने पर/ क्षितिज तक तने/ इन्द्रधनुष निहारती नदी को अपनी छाती में, सतरंगे प्रतिबिम्बों को सहेजने में लीन देखकर कवि कहता है - 'आजकल यही तो/ हो रहा। आकाश और नदी के बीच। धरती पर नदी का आवरण आदमी की जिद' का नतीजा है, किसी देवी- देवता की अनुकम्पा नहीं। वैसे हर नदी की जन्म- कथा करूणा के रोमांच में डूबी मिलेगी। 'काली रानी के आंसुओं से भरी कन्देली' हो या शोणभद्र और जोहला के छल से/ चोट खाई नर्मदा- सबकी अपनी कथा है। रघुवंशी में आख्यान काव्य रचने की अद्‌भुत क्षमता है, किन्तु छोटे कद की कविताओं में संकेत-व्यंजना पर ही निर्भर रहने को विवश लक्षित होते हैं। वैसे- कवि और नदी दोनों में एक साम्य भी है-

तुम्हें/ लहर- लहर इठलाते रहना/ अच्छा लगता है नदी ?
मुझे भी/ और मैं/ तैर ही तो रहा हूं/ लहर-लहर तुम में।

'नर्मदा की शाम' इसलिए भी अविस्मरणीय हो चली है कि इसमें ध्वन्यर्थव्यंजना भाषा का वैभव है।

रघुवंशी की कविता नैसर्गिक है। वह भाषा में चेतना का वैभव है। उनके पहले से बेहतर लिखने की वेदना- विकलता है। उन्हें क्या लिखना है, कैसे लिखना है- बेहतर पता है। आज के बेतहाशा दौड़ते- भागते जीवन में उन्हें कविता की उपस्थिति का महत्व समझ में आता है। इसलिए कविता उनकी जिद से ज्यादा स्वभाव है। वह पद- पुरस्कार के लिए नहीं लिखते। स्वान्तः सुखाय रघुवंशी की कविता अपअने दायित्व के प्रति भी कम सजग नहीं है। उनकी कविताएं पढ़कर स्पष्ट हो जाता है कि संभावना दिल्ली में नहीं, देश के सुदूरजनपदों में है। उनकी पहचान परकीया-पाठ से से नहीं, स्वकीया से आद्यन्त संलग्न होने में है। प्रेम ने उन्हें उदात्त किया है, उदार बनाया है। उनमें नियमन की आकांक्षा नहीं है,वर्चस्व की छटपटाहट नहीं है-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संक्षेप में, आंखें में समुद्र/समुद्र में आकाश/आकाश में तारे/ तारों में लोक कथा/लोक कथा में हम तुम/ हम तुम में/ सब कुछ। (प्रणय का अनहद, पृ.23) यही है रघुवंशी कवि का सब कुछ का क्षेत्र।

प्रणय का पारायण करते प्राण
प्रसाद की मिठास से भरी रसना
आचमन की सुधा से सनं अधर
सांसों में सांसें घोलते हम एक रस हैं।
तन मन से सदा सदा के लिए, (प्रणय का अनहद, पृ.-28)

हिन्दी की यथार्थवादी कविता- परम्परा में दांपत्य-रति की सघन अनुभूति ने सरसता का संचार किया है। एक के प्रेम ने समाज और विश्व के प्रेम का बाना लिया है। आतम-बोध की पूर्णता रघुवंशी की कविता में लोक संवेदना की परिणति है। वे जब कहते हैं-'पेड़ से डाल होते/ लद गया फूल से/ फूल से फल तक/भर गया बीज से/ बीजों के पाते ही भर गया/ सृजन के ताप से।' पृ.-30 तो उनके काव्य- विकास का स्वरूप उजागर होता हैं। किसी बड़े जनान्दोलन के अभाव में भी बड़ी संख्या में राजनीतिक कविताएं लिखी जा सकती हैं। रघुवंशी ने भी कम राजनीतिक कविताएं नहीं लिखी हैं। पर वह घृणा के नहीं, मूलतः प्रेम के कवि हैं। उनमें सहज का सुन्दर ही शानदार है। उनका संयोजन शब्दों में भी जीवन जैसा ही अधिकतम सकारात्मक है। उनके सुख के मुहावरे हैं, कविता में लोक संवेदना को प्रतिबिम्बित करने वाली बड़ी शब्दावली है। उनमें रस है,मस्ती है,निहंगता है। यह जमीन से जुड़े,जनपदीय चेतना के एक बड़े कवि की छवि है, जो उत्तर आधुनिकताावादी 'अन्त' की उत्सवधर्मिता का रचनात्मक विखंडन है। इसमें अवसाद से बड़ी चीज है उम्मीद। संघर्ष ही विकल्प का अवकाश है।

एक पंक्ति में कहें, तो रघुवंशी आनन्द की साधनावस्था के एक बड़े जुझारू कवि है। स्वदेशी आधुनिकता के ऐसे प्रगतिशील कवि, जिनकी शब्दावली अनुवादजीवी नहीं है। उनकी भाषा में किसान की हथेलियों का खुरदुरापन कविता का बंजर जमीनें खोदने की परिणति है।

22, रीडर्स क्वार्टर, युनिवर्सिटी कैम्पस
मुजफ्फरपुर-842001
मो. 09415107099

1. देखा, बिना नाम के तुम्हें-प्रेमशंकर रघुवंशी/नेशनल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली
2. प्रणय का अनहद/प्रेमशंकर रघुवंशी/शिलपायन, दिल्ली
3. नहीं रहने के बाद भी/ प्रेमशंकर रघुवंशी/अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

धरती और मनुष्य के साथ लगाव की कविताएं

वैशाली चन्द्रा

किसी कवि को ठीक-ठाक समझने के लिए उसके पूरे काव्य-विकास पर गौर करना जरूरी है। इससे न केवल कुछ अपेक्षाकृत नये तथ्य सामने आते हैं बल्कि कुछ आश्चर्यजनक अन्तर्विरोध भी देखने को मिल जाते हैं। कवि आनन्द स्वरूप श्रीवास्तव के तीनों काव्य-संग्रहों- 'कूड़ेघर का आदमी' (2002), 'ज्वालामुखी होते हुए' (2004) तथा 'नीम की दुनियां में हम' (2010) को एक साथ पढ़ते हुए कुछ ऐसी बातें ही मन में आती हैं।

आनन्दजी के दोनों पहले काव्य संग्रहों के उपरान्त नवीनतम काव्य संग्रह 'नीम की दुनिया में हम' छः वर्ष के अन्तराल पर आया है। परन्तु इस अन्तराल में उनकी कविता में एक स्वाभाविक परिपक्वता व उचित विकास क्रम दिखाई पड़ता है। लेकिन तीनों क़ाव्य- संग्रहों में जो नैरंतर्य बहुत साफ लक्षित होता है, वह है- ' कवि का दायित्व बोध, उसका अन्तर्द्वन्द्व और उसके भीतर की बेचैनी तथा धरती और मनुष्य के साथ उसका लगाव।'अपने नवीनतम काव्य-संग्रह 'नीम की दुनिया में हम' में कवि आनन्द स्वरूप श्रीवास्तव कविता के माध्यम से जीवन का, समाज का और दुनिया का यथार्थ अंकन करते हुए अपने उत्तरदायित्व का वहन करते हैं। धरती और मनुष्य- जीवन के साथ लगाव ही कवि अपना दायित्व मानता है और इसी दायित्व को निभाने की बेचैनी उसके मन में हैं। मनुष्य- जीवन से लगाव के कारण ही कवि ने इस काव्य- संग्रह को सुनामी लहरों के आंतक से पीड़ित लोगों को समर्पित किया है। प्रस्तुत संग्रह में सुनामी पर आधारित दस कविताएं हैं, जो एक ओर तो समुद्र के कोपभाजन बबने मनुष्यों के असीम दुख- दर्द को व्यक्त करने की कोशिश करती हैं तो वहीं दूसरी ओर मानव- समाज को उसकी भूल से भी वाकिफ कराती हैं-

तुमने जब चाहा/बिछा दिये जाल/ चला दिये अपने जहाज/ डाल दिये नौका पतवार
गिरा दिये नदी नालों का मलबा/ और डुबो दिये बमों- विमानों का कचरा/जैसे समुद्र
समुद्र नहीं/तुम्हारी कोई बपौती हो/कोई तिथि हो, त्यौहार हो/होली हो या दशहरा

अंधा धुंध विकास की यात्रा में हमने प्रकृति के साथ मनमानी छेड़छाड़ की है, जिसका दुष्परिणाम हमें कहीं सूखे, कहीं बाढ़, तो कहीं भूकम्प के रूप में भुगतने पड़ते हैं-

किसी सुन्दर कलाकृति की/ शक्ल बिगाड़ने आया था भूकम्प/ खुशबू की घाटी को जैसे/

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बंजर की माटी/ बनाने आया था भूकम्प

किंतु कवि केवल दैवी त्रासदी से आंतकित होकर मानव- जीवन की दुर्गति। क्षति का रोना नहीं रोता वरन, 'आशा ही जीवन का मूलमंत्र हैं-' को आधार बनाकर सूर्य- पुत्रों को महानिर्माण का पैगाम देता है-

ओ महाप्रलय के बाढ़/ बचे हुए सूर्य- पुत्रों/ घबड़ाओं नहीं/उठो अंगड़ाई भरो/त्यागो शोक- संताप/खामोशी और उदासी/यहां विनाश के पीछे/महानिर्माण का पैगाम स्वीकारो

इसमें कोई संदेह नहीं कि आनन्द स्वरूप श्रीवास्तव की कविता में वर्तमान का बोध बहुत तीव्र है। आज का परिवेश, उसकी भयावहता,आंतक,अन्याय,शोषण,अजनबीपन तथा आदमी का वहशीपन अपने नंगे रूप में उनकी कविताओं में मौजूद है। 'पारू' शीर्षक कविता में एक अल्हड़ तरूणी की कथा है जो आदमी के वहशीपन का शिकार होने के उपरान्त नदी में कूदकर आत्म हत्या करती हैं क्योंकि-

जल से भिन्न है पृथ्वी, अग्नि/पृथ्वी के पास कोई स्मृति नहीं/ठोस है वह और अंधी भी/अग्नि तो निरा पशु है/शरीर और रूप का/क्या महत्व है उसके लिए

चूंकि आग आदमी के वहशीपन के स्पष्ट चिन्ह जलाकर खाक कर देती इसलिए उसने जल- समाधि को चुना-

वह चाहती रही कि पारदर्शी पानी में/उतराती उसकी निर्मल काया/दिखलाती रहे दंतक्षत, नखक्षत/और बेपर्दा करती रहे/आदमी का वहशीपन/और उसका घिनौना रूप

इसी तरह एक दूसरी कविता में मधुबाला नाम की युवती को हर शहरी इंसान में एक शिकारी दिखाई पड़ता है जो मौके का फायदा उठाना चाहता है। गांव से बम्बई आया मधुबाला का परिवार मूसलाधार बारिश में डूब गया है, और ऐसे में मधुबाला को अपना गांव बहुत याद आता है-

पुलिस की नौकाएं खड़ी हैं/ मधुबाला को बचाने के लिए/लेकिन वह बदहवास/ कमर भर पानी में खड़ी है/हाथ में एक पोटली लिए/ कभी वह पुलिस देखती है कभी नाव/वह जड़वत खड़ी है/ उसे हर कहीं दिखता है दांव/इस शहर में दूर उसके दिमाग में/ घूमने लगता है उसका गांव

टेक्नीक को ध्यान में रखकर देखें तो आनन्द जी की कविता अपनी अलग विशिष्टता लिए हुए हैं। हर समर्थ कवि अपनी एक अलग टेक्नीक विकसित करता है। आनन्दजी ने भी ऐसा ही किया है। वह शब्दों का कम से कम प्रयोग करते हैं। सहायक क्रियाआअें का प्रायः नहीं के बराबर। कम शब्दों में बड़ी बात कह जाना उनकी कविता की शक्ति है। कहीं कहीं तो एक अकेली पंक्ति ही इतनी अर्थवान है कि देर तक सोचने के लिए बाध्य कर देती है।

वस्तुतः 'पानी' पर आधारित कविता तो बहुत ही अच्छी बन पड़ी है। महानगरीय सभ्यता में जहां खून भी बात- बात पर पानी की तरह बहा दिया जाता है। दूध और दारू भी पानी की तरह पीने वालों के लिए सर्वसुलभ है पर 'बस एक पानी है जो पानी नहीं है'। पानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की किल्लत तथा पानी के बोतलों के बढ़ते दाम कवि को चिन्तित कर देते हैं। बढ़ते बाजारवाद ने आम आदमी की हर जरूरत को अपने चंगुल में ले लिया है। कवि क्षोभ और खीझ से भरकर कह उठता है-

बाजारू कम्पनियों की यह हरियाली / सचमुच बड़ी निराली है

वर्तमान परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण जब पाठक के मन को चिन्तित और बोझिल कर देता है तो हृदय को शीतलता प्रदान करने वाली सीधी-सरल कविताएँ भी हैं जैसे 'मधुबाला का पोस्टर' शीर्षक कविता में सपरिवार पन्द्रह दिन की यात्रा से थके कवि जब घर पहुंचकर पोस्टर में मुस्कराती मधुबाला को देखते हैं तो बरबस ही कह उठते हैं-

पोस्टर देख हम सबके चेहरे पर/ एक मुस्कराहट फैल गई
मैंने कहा अच्छा हुआ मधुबाला/ तुम पंचमढ़ी नहीं गई

वस्तुतः जिस कवि का अनुभव और चिन्तन स्पष्ट होता है, उसकी भाषा भी साफ और सहज होती है। आनन्द स्वरूप श्रीवास्तव की अभिव्यक्ति प्रयत्नसाध्य या कृत्रिम नहीं है। और यही उनकी कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता है। दूसरी विशेषता है-उनका चुनाव। एक कवि का अनुभव, उसका चुनाव और उसकी दृष्टि उसे दूसरे कवि से अलग करती है। कवि आनन्द स्वरूप श्रीवास्तव के उक्त संग्रह में प्रकृति का रौद्र रूप भी है तो सौम्य भी, पुनर्निमाण का संदेश भी है तो अपनी विकास की दिशा सही करने की चेतावनी भी है। शोषण को बढ़ावा देती रूढ़ियों का तीव्र विरोध है तो बाज़ारवाद की विसंगतियों का भी चित्रण है। यह कवि की ही संवेदना है जिसे अपने दरवाजे के नीम के पेड़ के न होने की कल्पना ही शोकाकुल कर देती है-

एक बड़े बुजुर्ग की तरह/सौ साल से खड़ा है/ मेरे दरवाजे नीम का पेड़
जब नहीं रहेगा/ कितना सूना हो जाएगा हमारा दरवाजा

अपने परवर्ती संग्रहों की तरह ही 'नीम की दुनिया में हम' काव्य-संग्रह की मर्मस्पर्शी कविताओं के लिए कवि आनन्द स्वरूप श्रीवास्तव हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

प्रवक्ता, हिंदी विभाग
फीरोज़ गांधी कॉलेज
रायबरेली उ.प्र.
मो. 09839715409

नीम की दुनिया में हम/आनन्द स्वरूप श्रीवास्तव
अमित प्रकाशन, के.बी. 97 कवि नगर, गाजियाबाद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ढाल लेकर उतर पढ़ता है उस रण में जिसमें बड़े बड़े खिलाड़ी पहले ही ताल ठोके ढटे हुए हैं, *'मिली बहुत बार बहुत सारी सीढ़ियाँ...बढ़ता थोड़ा भी आगें कोई न कोई साँप काट लेता और पहुँच जाता फिर से नीचे दूसरे से लगातार पिछड़ते हुए, जो सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ते यूं और भी आगे निकल चुका था, जिन्दगी की दौड़ में सीढ़ियों के सहारे और साँपों की मदद से दूसरा बहुत दूर निकल गया... ।'* हम कौन से समय में जीवन जीने को विवश हैं। इसकी पहचान और पड़ताल जरूरी है। हर बार हम अपनों से ही छले जाते हैं और धकेल दिये जाते हैं उस कंदरा में जिसमें गहन वितृष्ण के अलावा टूटन की कई संतरें पसरी है, *'चाहता था वह निर्दोष साबित हो, क्योंकि वह निर्दोष था, और इसीलिए यह साबित करना बहुत मुश्किल था।'*

इस संग्रह की कविताओं से गुजरते हुए हम अपनी ही तलाश करते नज़र आते हैं और साथ ही समय कई संतरों में पर्दे सा हिलता नज़र आता है। कवि की चिंता में स्मृतियों के भी कई किले बनते बिगड़ते हैं। वह उसकी दीवारों को देखते हुए चौंक जाता है, लेकिन इन सभी अनुभूतियों के पार्श्व में गहरी निराशा और विरक्ति का भाव भी अपनी सजधज के साथ उपस्थित है कवि उसे बखूबी पकड़ता है और चिन्हित करता है, *'दिक्कतों के बारे में एक दिलचस्प बात यह होती है कि वे कभी खत्म नहीं होती बदलती रहती हैं अपनी वेशभूषा.....मगर खेल का अनिवार्य कायदा तो मानना ही पड़ेगा खेल को जारी रखने के लिये ।'* हरीश अपने हाथ में कलम उठाते ही गहरे अन्तर्द्वद्व से घिर जाते हैं और हमें भी उसी में घसीट लेते हैं, *'उसे मित्र समझा जाए या शत्रु उसके कुछ सुझाव ऐसे थे रखते थे, उसे मित्रों की श्रेणी में वहीं उसकी कुछ आदतें साबित कर रही थीं कि दुश्मन था वह...मेरे लिए आसान न था उसे इस तरह चिन्हित कर पाना, इससे तो अच्छा और आसान होगा मैं छोड़ ही दूं देखना आइना।'* कवि हर बार समय को पकड़ने का प्रयास करता है और वह छिटक पड़ता है जिद्दी खरगोश सा धता बताता हुआ, *'अच्छे दिन जरूर आयेंगे उसकी यह आस बनी रही बहुत बुरे दिनों में भी...उजाले का जरा सा टुकड़ा कर सकता है पूरा जीवन रोशन....उसकी हँसी में छुपा था उसकी आस का तिलिस्म ।'*

कहना न होगा समीक्ष्य संग्रह की कविताओं में भावों की सरलता, भाषा की सहजता, शब्दों के देशज प्रयोग, भावों को स्पष्टत: और बेबाकी से प्रकट करते हैं, इसी के चलते ये कविताएं पाठकों के इतने करीब चली जाती है कि कानों में गुनगुनाते भौंरे की तरह तरंगित होती है और समय से रूबरू होते हुए मानव मन के मनोविज्ञान को पकड़ने का प्रयास करती है जो इधर के समय में भूमंडलीकरण के शिकंजे में कसता चला गया है। जिसके बनिस्बत आम जीवन काफी दुरूह होता जा रहा है। इन कविताओं में उस आँच को महसूसा जा सकता है और मानव मन की सहज अनुभूतियों का गहन से स्पंदन भी है और साथ ही उसे उद्वेलित भी करती है । इस मायमें भी हरीश करमचंदाणी की कविताएँ समय के ठिठकेपन को पकड़ने की कोशिश करती नज़र आती है ।

'भूख, धान और चिड़िया' शशि नारायण स्वाधीन का कविता संग्रह है जो मंगल प्रकाशन, दिल्ली से अभी पिछले दिनों ही आया है । इसमें उनकी 51 कविताएं संग्रहित है जिसे उन्होंने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नामवर सिंह को समर्पित किया है। इस संग्रह की कविताओं में स्वाधीन उन लोगों के साथ खड़े नज़र आते हैं जो विकास और आधुनिकता के नाम पर हाशिये पर धकेल दिये गये और जिनके मन में हमेशा यह टिसता रहता है, *'अगली बैंच पर बिठाये जाते हैं, अमीर घरानों के मूर्ख बच्चे हमें क्यों नहीं, चर्चित हुई थी वह चिट्ठी, कई दिनों तक पहनाये जाते रहे मुझे जंगली फूलों के हार....हम रोगियों को दिया जाये शुद्ध दूध और अंडा, क्रांतिकारी साथियों से मिलने की मुहलत दी जाये....कि था एक ज़माना अपने खून से लिखी थी मैंने चिट्ठियाँ...जो किसी ने रख ली थी संदूक में, अगले जनम में बाँचने को शायद। घेर कर जलती आँखों से पढ़ा गया उन्हें और सीख दी गई मुझे कि इस दुनिया में आदमी का सब से बड़ा शत्रु प्रेम।'*

स्वाधीन कविताओं में रचते हैं वो सपना जो आदमी ता उम्र देखता रहता है। वह कोई सत्ता की भागीदारी नहीं मांगते अपितु अपने जीवन के लिए जरूरी हवा की आस में निकल पड़ते हैं उन कूचों की तलाश में जहाँ से सराबोर जरूरी सामान आसानी से मिल सके, *'मैं कागज़ पर वंश वृक्ष की रचना उतारता हूँ और वृक्ष के हाथ फैलने लगते हैं जड़ों की शक्ल में दूर दूर तक I....एक मठ के प्रवेश द्वार से रास्ता ढूंढती हुई। तालाब के जल तक पहुंच कर भी ठिठकी हैं एक गाँठ्दार जड़, भूख की आग में झुलसी हुई लगती हैं सभी कुल्हाड़ी की मार के बावजूद बची हुई हैं, सभी अभी तक रोयेंदार और खुरदरी। वृक्ष के नाम पर जो बच गया, उस ठूंठ के खोखल में बैठा हूँ मैं... '*

स्वाधीन की कविताएं संघर्ष और आत्मीयता की सच्चाई का ही नतीजा है। जो आज के इस त्रासद समय में सबसे कठिन है। कवि अपनी कविताओं में उन्हीं भावनाओं को उकेरता है और बेहिचक भागता है उनके पीछे जिससे छिन सके अपने समाज के लोगों के लिये वह सच का आईना जिसे दिखाकर बेखौफकह सके, *'पृथ्वी पर भूख झपट्टा मार कर पकड़ती होगी, चील की तरह चिड़िया को, अपनी चोंच में दबाये हुए धान के दानों को.... '*उसकी आँखों में उमगते सपनों में भूख और भूख से लड़ते लोगों के असंख्य चित्र हर समय करवटें लेते दिखाई देते हैं, *'बहुत से सवालों के बीच घिरे हुए हैं ये रास्तें इन रास्तों पर चलते हुए पहुँचा नहीं जा सकता किसी नतीजे पर ।'*कवि संघर्ष के उन रागों को छेड़ता है जो सदियों से शास्वत हैं और प्रश्न की तरह टंगे हुए है, *'समय के दलदल में धँसते हुए काँप रहे थे उस के पाँव टाट ओढ़े वह थामे था अश्कों से भरा कटोरा। आग के पानी में धधकी थी आग उस रात पृथ्वी पर भूख के चलते हम अविभाजित हैं.... ।'* स्वाधीन अपनी कविताओं में भूख के कई कई रूपकों को हमारे सम्मुख खोलते हैं और उनसे झरता समय हमारी आँख में खटकता है, *'पेट का सवाल पेचीदा होता आया है, आदिम समय से ही भले ही कलम कर दिया जाये सर, मुँह माँगता ही रहता है हाथों से रोटी..... ।'* और, *'हमारे भूखे पेट की आग फैल चुकी है इस पृथ्वी पर अब चहुं दिशाओं में....कहाँ कहाँ बुझाओगे हमें, हम पहुँच रहे हैं अपनी कविताओं को लिये हुए दुनियाभर में.... ।'*

वर्तमान समय सबसे दारूण समय है जो आदमी से उसकी ज़बान ही छीन लेता है। इस समय का सबसे दारूण सच है सच को सच कहने की हिम्मत जुटाना। आज आदमी इतना डरा हुआ है कि वह सच को सच की तरह नहीं कह पा रहा है। अपने सच को तो बिल्कुल भी नहीं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जीवन की इस त्रासद को स्वाधीन ने गहराई से चिन्हा और अपनी कविताओं में उकेरने का प्रयास किया, *'जलते हुए शहरों और कस्बों में आग बुझाने पानी ढूढ़ने निकलते हैं जब हम पेट्रोल जुटाने के आरोप में पकड़ लिये जाते हैं ।'*

समीक्ष्य संग्रह की कविताओं में सरलता का सहज ताना बाना नज़र आता है जो मानव मन की शिनाख्त करना जान पड़ता है। कवि संवेदना के कई वरकों को उकेरता है और उनमें भाँति भाँति के रंग भरता दिखाई देता है। जिनकी चमक चटक और आकर्षित करती है। वह समय की नब्ज पर हाथ रखता है और भावनाओं की गुत्थी कसमसाने लगती है। वर्तमान समय के बहेलियेपन को वह बखूबी जानता है, *'संबंधों के वे रंगीन पंख हमारी किताबों के बीच महफूज रखे हैं। उनसे जुड़ी यात्राएं अपना आकाश खो चुकी है पर जब कभी तुम्हारी देह की परिचित गंध आती है मैं वर्तमान की दीवार लांघ जाता हूँ।'* वह आगे कहता है, *'एक दूसरे को खोने का डर बना रहता है प्रेम में लगातार। यूँ ही सदियों से भूगोल में अपने प्रेम के साथ उपस्थित रही है बच्चों का हाथ थामे हुए स्त्रियाँ।'*

वर्तमान विडंबनाओं को अपनी चिंताओं की ज़द में लेते हुए स्वाधीन अपने हाथ में कविताओं का पुलंदा थामे पाठकों के बीच जाते हैं और उनके प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करते हुए कहते हैं, *'तुमने हमारे मुल्क के शहरों और गाँवों को खुले बाज़ारों में तब्दील कर दिया है, खेतों की जगह अब गमलों ने ले ली है, आँगन में बचा हुआ थोड़ा सा आसमान अब चिड़ियों की जागीर नहीं रहा....घर का दरवाज़ा अब सड़कों के बीच खुलने लगा है, हवाई सीढ़ियों के रास्ते से हमारे घर में अब उतर रहे हैं पहरेदारों शक्ल में हत्यारे।'*

कहना न होगा स्वाधीन की कविताओं में ठिठका समय संवेदना की हवा का इन्तजार कर रहा है और ज़िदगी की त्रासद को भी उकेर रहा है अपनी सहज रूपावलीयों में इस मायने में भी ये कविताएं हमारे सम्मुख प्रश्न बनकर खड़ी हुई हैं ।

53/17,प्रतापनगर , जयपुर 302033
मो. 09414373188

समय कैसा भी हो: कविता संग्रह/हरीश करमचन्दाणी/रचना प्रकाशन, जयपुर
भूख, धान और चिड़िया: कविता संग्रह/स्वाधीन/ मंगल प्रकाशन, दिल्ली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुअनजोदड़ो जो विमर्श भी है और उत्सव भी

विनोद शाही

किसी पुरातात्त्विक महत्त्व वाले स्थल की यात्रा करने के अनेक तरीके हो सकते हैं। यहां तक मुमकिन है कि आप अतीत से रूबरू होने निकले हों और गुत्थियां भविष्य की सुलझा रहे हों। रचनात्मक तल पर ऐसा कोई भी संभावनापूर्ण सफर हमें गहराई भी देता है और परिप्रेक्ष्य भी, परंतु एक बात हमेशा यथार्थ की तरह हमारे साथ रहती है कि हम पीछे या आगे की ओर चाहे जितना भी दूर तक चले जाएं, रहते हम अपने समय में ही हैं। रिहायश हमारी बुनियादी और ठोस जरूरत है, जिससे हम कभी एक पल के लिए भी अलहदा नहीं होने पाते।

मुअनजोदड़ो के सफर पर निकले ओम थानवी की किताब की अंतस्संरचना में यही बात खास तौर पर गौर करने लायक है कि उनकी नजर सब तरफ से घूम-घाम कर बारहा घर पर आकर अटक जाती है। सवाल गहराई में उतरता जाता है .. हम दरअसल रहते कहां हैं? जमीन पर रहते हुए पूरे भूगोल में या भूगर्भ में रहते हुए लगातार फिर से बाहर सतह पर आ निकलने को आतुर। पूरी परंपरा और इतिहास को जीने और रहने लायक वस्तु में बदले बिना, हम अपने समय को अपना घर बनाने लायक यों भी भला कैसे हो सकते हैं? जरा सा भी अभाव हमारी रिहायश पर उपलब्ध दुनियां-जहान की तमाम तमाम चीजों को कैसे अचानक दरिद्र बना डालता है? .. इस बात की पीड़ा और चुभन जिनके हृदय में गहरी गड़ गई है, वे समझ सकते हैं कि हमें ओम थानवी की तरह ऐसी जगहों की तरफ क्यों रुख करना चाहिए .. जैसे कि यह मुअनजोदड़ो।

अब ओम थानवी मुअनजोदड़ो गए, तो वे वहां अपने राजस्थान को .. जैसलमेर के उजड़ जाने पर पीछे बचे खंडहरों वाले परिदृश्य को .. वहां खोजते दिखाई देते हैं। वहां किसी राजा के आतंक की वजह से लोग बस अपने घरों को वैसा का वैसा पीछे छोड़कर वहां से चले गए। खंडहरों में बदलते गए इन घरों को देखने-जानने के लिए भूगर्भ में उतरने की, खुदाई करने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की भी जरूरत नहीं। यह घटना मानव-सभ्यता के बड़े से बड़े संकटों में से एक की ओर इशारा करने वाली घटना है। इसका ताल्लुक इस बात से है कि सभ्यताएं, हमारे समय की सभ्यताएं भी, हर समय लगातार पुरातत्त्व की वस्तु हो जाने की दिशा में खिसक रही हैं। और ऐसा प्राकृतिक आपदाओं या अजाने और अपरिहार्य कारणों से ही नहीं हो रहा है, अपितु यहां आत्मघाती तत्त्व और प्रवृत्तियां खुद इन्हीं हमारी सभ्यताओं के भीतर ही भीतर पनपती रहती हैं और एक दिन हमें ले डूबती हैं। परंतु यहां सवाल उठता है कि इन प्रवृत्तियों के स्रोत कहां हैं ? मुअनजोदड़ो को पढ़ते हुए इस सवाल का सीधा-साफजवाब नहीं मिलता, परंतु इस तलाश में हमें प्रवृत्त करने की वजह हो सकने वाले कुछ इशारे, कुछ सूत्र जरूर मिलते हैं।

हड़प्पा सभ्यता के अवशेष साबित करते हैं कि वहां न कोई राज-प्रासाद थे, न भव्य मंदिर और यहां तक कि वहां हमें हथियार भी मौजूद नजर नहीं आते। नरेश के सिर पर बंधा मुकुट भी, मुकुट जैसा न होकर, सिर पर फीते से बांधी पट्टी जैसा मालूम पड़ता है। समाज इसी वजह से कलाप्रिय और विनम्र लो-प्रोफाइल समाज का उदाहरण जान पड़ता है। दूसरे, यह एक खेतिहर व्यवस्था वाला समाज भी है और नगर नियोजन के लिहाज से बहुत समुन्नत भी। तो यहां हम एक ऐसी सभ्यता से मुखातिब हैं जो प्राकृतिक तरीके के विकास का एक नक्शा हमारे सामने लाती है और इसीलिए इसे उन तमाम प्रवृत्तियों और तत्त्वों से एक हद तक मुक्त मान सकते हैं जो किसी भी सभ्यता में अंतर्विरोधों की तरह मौजूद होते हैं और उसे भीतर से घुन की तरह खाते हुए आत्मघाती होने की दिशा में ले जाते हैं। फिर भी यह सभ्यता नष्ट हो जाती है और बाकी बचता है .. मुअनजोदड़ो, यानी मुर्दों का टीला। तो, यह जो गुत्थी है, वह सुलझाने लायक मालूम पड़ती है।

इस सभ्यता के नष्ट होने के कारणों की बाबत अब तक जितने भी अनुमान लगाए गए हैं, वे अपुष्ट प्राकृतिक आपदाओं की ओर जाते हैं। अगर यह सही है तो कहना पड़ेगा कि प्रकृति से दोस्ती रखने वाली सभ्यता का विनाश खुद प्रकृति करती है और जो सभ्यताएं आपदा-प्रबंधन के मामले में बहुत दक्ष हो जाती हैं, उन्हें प्रकृति की विकृति भीतर से घेर कर .. आत्मघाती बना कर .. नष्ट करती है। यहां हम राजप्रासादों, भव्य मंदिरों की मौजूदगी के असल अर्थ को देखते हैं। वे प्रकृति के आपदा-प्रबंधन की अपनी दक्षता की वजह से, खुद को प्रकृति का नियन्ता या ईश्वर ही हो जाने की दर्प से भरी स्फीति के पर्याय हैं। परंतु वे ही हैं, जिनकी वजह से प्रकृति, विकृति में बदल कर, सभ्यताओं के गर्भगृहों में, उन्हें ही खोखला करने वाले घुन में बदल जाती है।

पुरातात्त्विक इतिहास हमारे सामने दार्शनिक चिंतन-विमर्श के लिए बेहिसाब खाली स्थान छोड़ता और खोलता है, जहां हम अकेले और आवारा इधर उधर भटकते रह जाने के अलावा कुछ नहीं कर पाते। शायद यही वजह है कि हमने अपने इतिहास-विमर्शों को बड़ी महफूज चारदीवारियों में हिफाजत से रख, उन पर अपने-अपने ताले भी लगा दिए हैं। इतिहास को खोलने की हजारों कुंजियां हमारे पास हैं, पर उस ताले का ठीक वही हिस्सा हमें हर दफा गायब मिलता है, जहां कोई सूराख पाकर हमारी चाभी उसमें दाखिल होने लायक होती है। यह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025 Grant.

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिस्सा है .. पुरातात्त्विक इतिहास का। और हम उसे बस कल्पना से निर्मित करते हैं और फिर अपनी-अपनी चाभियों को हवा में लहरा कर, उसे खोलने का दावा भी उत्साह से पेश किया करते हैं। क्या यही वजह नहीं है कि हमारे इतिहास-विमर्शों के पास पुरातात्त्विक इतिहास-बोध की जमीन जैसी कोई चीज शायद ही कभी, पांव टिकाने के लिए वहां मौजूद दिखाई देती है।

पुरातात्त्विक इतिहास से निकलने वाला एक बड़ा सवाल यह है कि हमें जमीन की खुदाई के बाद जो खंडहर मिलते हैं, उन्हें किसी सभ्यता के ही नष्ट होने का प्रमाण या पर्याय कैसे मान सकते हैं? सभ्यता का संबंध समाज से होता है और कैसी भी बड़ी आपदा क्यों न हो, यह मुमकिन नहीं कि उससे उस समाज से संबद्ध पूरी मनुष्य-जाति का अंत हो जाए। दूसरे, मनुष्य समाजों के विस्थापन की वजह से भी पुराने नगर-ग्राम और स्थापत्य खण्डहर में बदल भूगर्भ में समा सकते हैं। सभ्यता एक जीवंत और सतत विकासमान प्रक्रिया है, जिसे कभी भी किसी भूगोल-परिवेश में अलहदा नहीं किया जा सकता। दूसरे प्रदेशों से अन्य जगहों पर प्रवास के लिए आने वाले या आक्रान्ता लोग कभी भी उस भूगोल-परिदृश्य की सभ्यता का गुणात्मक भिन्नता वाला विकल्प नहीं हो सकते। पुरातात्त्विक इतिहास, सदैव एक जमीनी इतिहास होता है। और वह जमीन की मार्फत दो तरह के इतिहासों के बीच मध्यस्थता करता है। एक ज्ञात कोटि वाला उत्तर-इतिहास और दूसरा अज्ञात और विस्मृत प्राक.इतिहास .. जिसकी जमीन खुद मनुष्य के भीतर होती है .. उसके गुणसूत्रों में रची और गुंथी हुई। तो, पुरातात्त्विक इतिहास को हमें एक पुल की तरह लेना चाहिए, जो हमें सुदूर अंधकार-कालों तक में प्रवेश के लिए तैयार करता है। और देता है एक समझ कि कोई भी इतिहास ऐसा नहीं होता, जिसे हम उसकी जमीन से अलहदा कर सकें। यानी वह हमारे दौर के नव्य-इतिहास विमर्श या उत्तर-इतिहास विमर्श का एक तरह का उपहास भी करता है जो यह साबित करने पर तुले हैं कि इतिहास व्याख्या की वस्तु भर है, एक भाषिक संरचना है, जिसकी जड़ें उसके भाषा-संसार के भीतर ही कहीं पड़ी होती हैं। जैव गुणसूत्रों के स्मृति-कोषों में कूट बन कर मौजूद हो गए इतिहास से भी यह भ्रम हो सकता है कि इतिहास की जड़ें, उसकी भाषिक-अभिव्यक्ति के भीतर महफूज रहती हैं। पुरातात्त्विक इतिहास इस भ्रमजाल को तोड़ता है और हमारे समस्त इतिहास-बोध को एक जमीन देता है, जहां दरअसल जड़ों के होने और पनपने के लिए वह सब कुछ होता है, जो उन्हें चाहिए।

तो, यह जो हड़प्पा या सिंधु घाटी की सभ्यता का सफर है, वह दरअसल मुअनजोदड़ो के खंडहरों के भीतर भी है और उसके बाहर व उन खंडहरों के कालखण्ड से पहले और बाद में भी है। मुर्दों का टीला उस सभ्यता की एक अहम घटना का गवाह भर है, और जबकि यह जो सभ्यता है वह सतत विद्यमान और अविनश्वर यथार्थ की तरह अभी तक इस भूगोल-परिवेश में विकासमान है। तो, जैसलमेर के खंडहर बाद के दौर में, पीछे के इतिहास की एक पुनरावृत्ति भी हैं और विकास की अविनश्वरता के बावजूद, मृत्यु के आत्मशोधन का और हमारे आत्मघाती विपथनों का पूर्वाभास भी हैं। तो इस सभ्यता की ओर हमारा पुरातात्त्विक धरातल पर मुखातिब होना, गहरे में सिंध या हिंद की सभ्यता के ही असल अर्थों व रूपों की ओर मुखातिब होना है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सिंधु घाटी की सभ्यता के लोक-जीवन में भी तो ढेरों अवशेष पड़े हैं, जिन्हें हमें इस सफर के बहाने फिर से खोजना, जानना और समझना है और उनमें से भी हमें दोनों ही चीजों की तलाश करनी है .. चिरंतन जीवन शैलियों और व्यवहारों की भी और अपने आत्मघाती हो जाने की संभावनाओं की भी।

सिंध प्रांत से लेकर पाकिस्तान-भारत के वृहत् पंजाब क्षेत्र तक एक लोकृ-नृत्य बेहद प्रचलित है .. भांगड़ा। इसके बिना यहां का कोई आयोजन, कोई उत्सव परवान नहीं चढ़ता। और इस नृत्य में शब्दों-बोलियों का उतना महत्त्व नहीं, जितना पद-संचालन, हस्तमुद्राओं और सारे बांध तोड़कर पूरी देह को नचा देने की एक बाढ़-जैसी उद्दामता के खुद पर तारी हो जाने का है। यहां जो बुनियादी नृत्य-मुद्रा संचालन और पदगति-परिवर्तन है, उसमें हर गुणात्मक तब्दीली के साथ भांगड़ा-नर्तक अपने मुंह से जोर से एक ही शब्द का उच्चारण करते हैं .. हड़िप्पा।

हड़िप्पा! हड़िप्पा! हड़िप्पा! हम हैं हड़िप्पा सभ्यता के महान जीवनोत्सव के नर्तक! और हम हैं अविनश्वर और चिरंतन! मुअनजोदड़ो के अवशेष होंगे नौ हजार साल पुराने, परंतु हम वहां भी हैं, उससे पहले भी और उसके बाद भी .. अभी तक, यहां तक। बांध कर तो दिखाएं इसे किसी मजहब से, किसी शासन-व्यवस्था से, किसी कौम, नस्ल, जाति या वर्ग से हो, होए होए हेए हेए हड़िप्पा! पंजाबी में एक शब्द है हढ़ .. जिसका अर्थ होता है .. बाढ़ या निर्वन्ध। वही है यह नृत्य, और वही है हड़िप्पा का असल अर्थ और सार। और किसी बाढ़ या जल-प्लावन से ही इसका गहरा रिश्ता रहा है, तो भी यह कहना होगा कि यह बाढ़ से उपजी, बाढ़ में डूबी और फिर बाढ़ से उबरी और फिर से फैली सभ्यता है। एक जलीय-जीवनशैली पानी और जमीन के रिश्तों की एक अंतर्कथा। गुरु के शब्दों में, इस सभ्यता का पौन गुरु, पानी पिता, माता धरत महत हैं। पवन या प्राण-शक्ति की निर्वंधता इसकी गुरु है, पानी पिता की तरह है .. इसका पालन करने वाला यानी हड़ बाढ़ के द्वारा पालित-पोषित हड़िप्पा है यह और इसकी माता महती धरती है .. सिंध प्रदेश से लेकर दिल्ली-राजस्थान और ऊपर हिमाचल तक, कश्मीर तक फैली हुई।

ओम थानवी ने यहां एक बात लक्ष्य की है कि आठवीं शती और उसके बाद सिंध प्रदेश में दाखिल हुए मुस्लिम सूफी एक अर्से तक, इस प्रदेश की इस धर्मनिपरेक्ष या मानवीय जीवनी-शक्ति के स्रोत से जुड़े रहे। यह सिलसिला शाह कलंदर से लेकर बुल्लेशाह तक चला जिसके बाद संकीर्ण सांप्रदायीकरण ने इस सभ्यता में भी अपनी जड़ें जमानी आरंभ कर दीं। मुअनजोदड़ो में वापसी उसकी संकीर्णता के एक विकल्प की तरह, समसमय में खुलती एक खिड़की भी है। आइए, इसे खोलें और इस सभ्यता की उत्सवधर्मी हवाओं को बेरोकटोक भीतर आने दें।

9 चीमानगर एक्सटेंशन, मिट्ठापुर रोड, जालंधर, पंजाब

मोबाइल- 098146 58098

मुअनजोदड़ो/ओम थानवी/वाणी प्रकाशन नई दिल्ली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किताब चर्चाः रामविलास शर्मा (मोनोग्राफ) शंभुनाथ

विरासत को सहेजते हुए एक जरूरी अध्ययन

मनीषा झा

आलोचना केवल विचारधारा का ही निर्माण नहीं करती, जीवन-मूल्यों की रक्षा भी करती है- इस बात का प्रमाण ढूंढना हो तो शंभुनाथ जी की आलोचना-पुस्तकों को देखा जा सकता है। हाल ही में साहित्य अकादमी से रामविलास शर्मा पर एक पुस्तक प्रकाशित हुई है, जिसे प्रकाशन की ओर से रामविलास शर्मा पर मोनोग्राफ कहा गया है। इस पुस्तक में रामविलास शर्मा के समग्र साहित्यिक अवदानों का अध्ययन एवं मूल्यांकन करते हुए ग्यारह आलेख दिए गए हैं, साथ ही रामविलास शर्मा की प्रकाशित कृतियों का संपूर्ण ब्यौरा भी अंत में दे दिया गया है, जिससे यह पुस्तक कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण, पठनीय एवं संग्रहणीय बन पड़ी है।

रामविलास शर्मा का जीवन प्रस्तुत करते हुए शंभुनाथ जी रेखांकित करते हैं- 'रामविलास शर्मा को उनके घर, गांव और जीवन से अजस्त्र ताकत मिली थी।' यही ताकत उनके भीतर आलोचना शक्ति के रूप में प्रस्फुटित होती है- 'वस्तुतः उनकी धरती और लोगों ने ही उनकी आलोचना का रूप गढ़ा।' स्वभावतः परिश्रम एवं संघर्ष को रामविलास शर्मा ने जीवन मूल्य के रूप में देखा है। शंभुनाथ जी की परख है कि रामविलास शर्मा की कई आलोचनात्मक कृतियों का रूप निर्धारित करने में धरती और अपने लोगों का योगदान है। उनकी पुस्तक 'अपनी धरती अपने लोग' से भी यह प्रमाणित होता है। पर उन्हें हिन्दी साहित्य में रुचि की प्रेरणा कहाँ से मिली? निश्चित तौर पर तुलसीदास का 'रामचरित मानस', भारतेंदु-हरिशचन्द्र का 'सत्य हरिशचन्द्र' और निराला ने हिन्दी साहित्य के प्रति उनका ध्यान आकर्षित किया तथा मार्क्सवाद ने उनका वैचारिक निर्माण किया। 'रामविलास शर्मा ने प्रसाद, वृंदावन लाल वर्मा, दिनकर, अमृतलाल नागर और किशोरीदास वाजपेयी पर बहुत सकारात्मक लिखा।' साथ ही, रामचंद्र शुक्ल के साथ भी वे खड़े दिखाई देते हैं।

'रामविलास शर्मा होने का अर्थ' क्या है? रामविलास शर्मा होने का अर्थ उनका समग्र जीवन, उनका व्यक्तित्व और कृतित्व है। इस प्रश्न का आशय समझते हुए शंभुनाथ जी इस प्रकार सार प्रस्तुत करते हैं- 'रामविलास शर्मा एक साहित्यिक आलोचना ही नहीं, समाज-चिंतक भी थे। उनमें गहरे सौंदर्य-बोध के साथ सामाजिक चेतना भी थी।' तथा 'बीसवीं सदी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में प्रेमचंद के बाद रामविलास शर्मा दूसरे बड़े साहित्यकार हैं, जिन्होंने भारतीय धरती पर सामंतवाद और साम्राज्यवाद से जीवन-भर वैचारिक संघर्ष किया।' आज के भूमंडलीकरण, आर्थिक उदारीकरण और निजीकरण वाले समय में रामविलास शर्मा होने का अर्थ रंग बदल-बदल कर होली खेलना नहीं, प्रहलाद के समान सच्चा होना है, जिसे होलिका भी जला न सकी!

भारत को फिर से खोजने की जरूरत क्यों महसूस हुई थी- रामविलास शर्मा को और भारत को फिर से खोजते हुए उन्होंने क्या पाया? जरूरत इसलिए थी कि 'नवजागरण' के कई समीक्षकों ने उन्नीसवीं सदी से पहले के भारत में बौद्धिक उत्थान, जागरण और विकास का कोई चिन्ह नहीं देखा। उन्हें अतीत में अंधेरा और पिछड़ापन दिखाई पड़ा। रामविलास शर्मा ऐसे समीक्षक हैं, जो भारतीय अतीत के शुरूआती काल से ही विकास के लक्षण दिखाते चलते हैं। भारत की आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक संदर्भों के हवाले से वे विकास की जानकारी देते हुए भारत को फिर से खोजते हैं। इस विराट और दायित्वपूर्ण कार्य के लिए उन्होंने परंपरा के मूल्यांकन पर जोर दिया है। धीरे- धीरे अपनी जातीय विरासत के प्रति प्रेम और सशक्त होता गया है।

परंपरा का मूल्यांकन के लिए जरूरी है कि देश की सांस्कृतिक, साहित्यिक और भाषिक विरासत को गहराई में समझा जाय। राम विलास शर्मा यही करते हैं। एक ओर लोक जागरण और भक्ति साहित्य पर विस्तार से विचार करते हैं, तो दूसरी ओर भाषा परिवारों का वर्णन करते हुए तर्कपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। 'भाषा विज्ञान की भारतीय जमीन' शीर्षक लेख में शंभुनाथजी भाषा विज्ञान के क्षेत्र में रामविलास शर्मा की मौलिकता चिन्हित करते हैं। वस्तुतः रामविलास शर्मा की सभी आलोचनात्मक कृतियों का मूल लक्ष्य भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक विकास और विरासत को सामने लाना है।

'हिंदी नवजागरण की नई लहरें' शीर्षक देकर शंभुनाथजी रामविलास शर्मा के नवजागरण संबंधी दृष्टिकोण की विशेषताएं बताते हैं तथा भारतेन्दु हरिश्चंद्र,महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचंद, रामचंद्र शुक्ल पर उनकी समीक्षा का मूल्यांकन करते हैं। उन्होंने गौर किया है-'हिंदी नवजागरण की परंपरा तार्किक चिंतन और लोकमंगल की परंपरा है। राम विलास शर्मा ने अमर्त्य सेन से काफी पहले 'द अर्गुमेंटेटिव इंडियन' की परंपराओं की खोज की है, बस उनकी किताबें हिंदी में हैं।

हिंदी भाषा, हिंदी साहित्य और हिंदी जाति से प्रेम रखने वाले रामविलास शर्मा की कृतियों का एक बड़ा हिस्सा हिंदी जाति की अवधारणा निश्चित करने में समर्पित है। 'हिंदी जाति की अवधारणा' शीर्षक आलेख में हिंदी जाति के संबंध में रामविलास शर्मा के विचारों की मौलिकता का उद्घाटन करते हुए शंभुनाथ जी लिखते हैं-'भारतेंदु हरिश्चंद्र, रामचंद्र शुक्ल, निराला जैसे साहित्यकारों के दिमाग में हिंदी जाति की एक धुंधली अवधारणा थी-, लेकिन वे हिंदी जातीय दुर्दशा को देखकर मनोव्यथा से ही अधिक भरे थे।' ऐसी स्थिति में 'हिंदी जाति की अवधारणा के विकास में उतरना' निश्चय ही महत्वपूर्ण था, जिसे शंभुनाथजी ने व्यापक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MeF-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परिप्रेक्ष्य के साथ रेखांकित किया है।

'प्रगतिशील आंदोलन और आधुनिकता' के अंर्तसंबंधों को नए सिरे से परखने की आवश्यकता अनुभव करते हुए रामविलास शर्मा के योगदान का मूल्यांकन किया गया है तथा 'निराला की महत्ता' में 'निराला की साहित्य साधना' को अध्ययन का आधार बनाया गया है। '1857 और रामविलास शर्मा' में सन् 1857 के संदर्भ में रामविलास शर्मा के दृष्टिकोण की समीक्षा की गई है।

शंभुनाथजी का मानना है-'इतिहास सिर्फ स्मृतियों का खजाना नहीं है इसके खुले आसमान में आशा की चिड़िया भी होती हैं।' 'आशा के पंख' लिखकर उन्होंने आज के ज्वलंत मुद्दों के परिप्रेक्ष्य में अतीत से गुजरते हुए भविष्य की ओर रूख किया है। लेकिन जिनके पंख खो गए हैं, वे क्या करें ? वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण की उड़ान में पंखों का क्षत-विक्षत होना भी अवश्यंभवी है। ऐसे में रास्ता क्या है ? शंभुनाथजी के भीतर का शिक्षक प्रेरित करता है- 'पहले सोचना तो शुरू करो, यह सोच ही पंख है। यह जनता का सैकड़ों साल का सोच है, जो संघर्ष- चिंतन- संघर्ष ये अविरल गुजरते हुए बुद्ध,कबीर, मार्क्स, गांधी, प्रेमचंद, आंबेडकर और रामविलास शर्मा तक पहुंचा है।'

यह शंभुनाथजी की आलोचना दृष्टि की खासियत है कि वे अपनी दृष्टि केवल आलोच्य कृति तक ही सीमित नहीं रखते, बल्कि सामाजिक- सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के साथ आलोच्य विषय उठाते हुए उसे व्यापक क्षितिज प्रदान करते हैं। आलोचना के साथ मूल्यों की एक धारा उनके लेखन में गतिशील रहती है। रामविलास शर्मा पर प्रस्तुत मोनोग्राफ में सादगी,स्पष्टता,निर्भयता, संघर्ष, सामाजिकता,जातीयता जैसे जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा दिखती हैं। उनकी कृतियों को पढ़कर ऐसा लगता है कि लिखते समय वे चिंता और चिंतन, दोनों से प्रेरित हो रहे हैं। यही वजह है कि वे पहले प्रश्न उठाते हैं फिर उसकी पड़ताल करते हैं और फिर सुलझा हुआ सूत्र पकड़ाते हैं। लेखन की कोई विधा क्यों न हो, वह उनकी कलम से निकलकर समय के चक्रव्यूहों को भेदते हुए रचना का रूप धारण कर लेती है। वे इस समय के ऐसे आलोचक हैं, जो 'दुष्चक्र में स्त्रष्टा' का फंसा होना देखते और महसूस करते हैं। उनके यहां भाषा में अनुशासन,गद्य में कवित्व, सजीव बिंब और शैली में ताजगी दिखाई पड़ती है। ऐसे आलोचक की कलम से निकली यह पुस्तक 'रामविलास शर्मा' निश्चय ही पुस्तक- प्रेमियों की प्रशंसा पाने का अधिकार प्राप्त कर सकेगी।

हिन्दी विभाग, उत्तर बंग विश्वविद्यालय, राजा राम मनोहरपुर, सिलीगुड़ी
जिला- दार्जिलिंग-734013
मो. 09434462850

रामविलास शर्मा (मोनोग्राफ)/शंभुनाथ/साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुक्तिबोध से ही समझा जायेगा-आज का सच

ओम भारती

डॉ. वर्षा अग्रवाल की किताब 'मुक्तिबोध का रचना संसार: संघर्ष और सृजन के आयाम' के आवरण-लेख में प्रो. विजय अग्रवाल के इन शब्दों ने मुझे उत्सुक किया- 'यह पुस्तक सरल भाषा में मुक्तिबोध के विचारों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करने के लिए भी याद की जाएगी, ऐसा विश्वास है।' कारण यह है कि अभी तक दुरूह समझे जाने वाले कवि गजानन माधव मुक्तिबोध एवं उनके लिखे पर जितनी कृतियाँ आई हैं, उनमें मुझे भाषा की सरलता शायद ही कहीं मिली हो। डॉ. रामविलास शर्मा तो कदाचित् खासे कठिन वाक्यों में मुक्तिबोध का एकांगी मूल्यांकन कर ही रहे थे, लेकिन उनके बाद भी शायद ही किसी ने इस कवि को लेकर आसान शब्दों में बात की है। प्रस्तुत पुस्तक में भी शुरुआत में ही लेखिका को उसके विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण और शोधकार्य के लिए शतशः बधाई देते हुए दूधनाथ सिंह ने जो लिखा है, उसे भी सरल तो नहीं ही कहा जा सकता। अलबत्ता वर्षा जी ने सचमुच ही अपने तीन सौ पृष्ठों से ज्यादा के लेखन में यथाशक्ति सरलता बरतने का प्रयास किया है, और इस हेतु उनकी सराहना तो बनती ही है।

मुक्तिबोध शमशेर-अज्ञेय-नागार्जुन-केदार से कोई छह वर्ष बाद पैदा हुए, हालांकि इन अग्रजों के मुकाबले के इससे कहीं ज्यादा आगे के वक्त के रचनाकार साबित होते हैं। अर्थात् वे इन चार बड़ों के ठीक-ठीक समकालीन तो हैं भी नहीं। अज्ञेय ने अपने बाद आये और पहले विदा हो गये मुक्तिबोध के प्रति अपनी श्रद्धांजलि में कहा था कि वे कम से कम वहां पहुंच गये थे, जहाँ कवि पूर्ण होता है। मात्र 47 वर्ष की उम्र पाने वाले मुक्तिबोध को रचने के लिये लगभग तीन दशकों का समय ही मिल सका था। सन् 1960 के अपने बहुचर्चित निबंध 'एक पर्सनल एस्से' में शमशेरजी ने घोषित किया था कि 'इस पीढ़ी के लिये अपना महान कवि' मुक्तिबोध ही होंगे, और उनका यह कथन एकदम सच साबित हुआ। हम लोगों की ही नहीं, ठीक आज की पीढ़ी के लिये भी मुक्तिबोध सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रासंगिक हैं। डॉ. वर्षा अग्रवाल ने उल्लेख किया है कि अपने शोधकार्य को प्रेरणा उन्हें कमला प्रसाद जी से मिली। उन्होंने कमलाजी के प्रति अपनी कृतज्ञता भी ज्ञापित की है। कृतज्ञ तो हमें भी होना चाहिये कि उनकी प्रेरणा से मुक्तिबोध पर इतना साफ और जरूरी काम हिन्दी पाठकों के हाथों में आया है। इस शोधकृति का पहला अध्याय 'मुक्तिबोध: एक मूल्यांकन' है। दूसरा अध्याय है- 'मुक्तिबोध का काव्य'। इस बृहद अध्याय में मुक्तिबोध जी की अनेक प्रमुख कविताओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जो निश्चित रूप से पढ़ा जाना चाहिये। इसके बाद के तीन अध्याय क्रमशः

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुक्तिबोध के कथा-साहित्य पर भी ठहरकर विचार किया है और प्राप्त आशयों को भरसक आसान जुबान में ही लिख देने का जतन भी।

तो अज्ञेय ने मुक्तिबोध को पूर्ण कवि कहा है। वे सचमुच ही एक 'टोटल' या 'कम्पलीट' कवि हैं। समूची क्षुब्ध पृथ्वी के, 'डार्क मासेज' के पोएट हैं। मानवी अंतर्कथाओं के इस बड़े कवि की तमाम कविताएं मिलकर एक 'बड़ा' उपन्यास (मोटा उपन्यास नहीं) बनाती हैं। यदि मुक्तिबोध ने कविताएं नहीं, मात्र उपन्यास ही लिखा होता तो उसका केन्द्रीय संवेदन क्या यही नहीं होता- 'दबी हाय हाय नुमा/शायद, टॉल्सतॉय नुमा'? डॉ. वर्षा अग्रवाल का यह कथन बिल्कुल दुरुस्त है कि मुक्तिबोध का काव्य एक बैठक में पढ़ लिया जाने वाला उपन्यास क परिच्छेद नहीं है, उसे तो बार-बार संभल-संभलकर पढ़ने पर ही उसका रसास्वादन किया ज सकता है। उन्होंने 'चांद का मुँह टेढ़ा है' कविता को गोर्की के कालजयी उपन्यास 'माँ' से ठीव ही जोड़ा है। लेखिका का मत स्पष्ट है- 'मुक्तिबोध ने अपनी विषाद भरी अधूरी जिंदगी को जि धैर्य और साहस के साथ जिया, उसी धैर्य और साहस के साथ पढ़ी जाने की मांग उनकी कवित एं भी करती हैं।' मुक्तिबोध के मुश्किलों से भरे जीवन और जीवन- संघर्ष से समूचा हिन्दी साहित्य - संसार वाकिफ है। जैसा कि वर्षा जी ने उदाहरण दिया है 'आत्म संवाद' कविता का, मुक्तिबोध ने इसमें लिखा-'प्राण की बुरी हालत/ और जर्जर देह/ यह है खरी हालत'। वीरेन्द्रकुमार जैन को लिखे मुक्तिबोध के पत्र से भी उनकी अवस्था का साक्ष्य लिया जा सकता है- 'हालात तो खराब ही हैं, पर जिंदगी में बड़ी जानकारी है। उसी के सहारे जहां बनता है, दुलत्तियां झाड़ देता हूं। भौतिक असफलताओं की चट्टानों पर टकराकर भी हिम्मत नहीं हारा हूं।' यह जानदारी जीवट और हौसला मुक्तिबोध की और उनकी जोखिममय अभिव्यक्ति की ताकत बनते हैं।

जैसाकि शोधकार्य का खाका होता है, ताना बाना होता है, उसके अनुरूप वर्षाजी ने बहुत सारी किताबों को और विद्वानों को यथास्थान उद्धृत किया है। मुक्तिबोध के रचना संसार पर चले विमर्शों को खंगाला है। मुझे जो सबसे अच्छा पक्ष लगा वह है उनके द्वारा किया गया विश्लेषण, जिसमें वे अपना सोच रखती है, अपने द्वारा हासिल किये गये अर्थ को सामने करती हैं। वे भाष्य या व्याख्या नहीं करतीं, रचनाओं में उतर कर उनके निहित आशय समझने- बूझने की भली सी कोशिश करती हैं और इस कोशिश में, मुक्तिबोध की तहदार कविताओं को परत-दर -परत खोलने में पर्याप्त कामयाब भी होती हैं। सच तो यही है कि मुक्तिबोध के रचना- लोक से सीधा सच्चा साक्षात्कार करने का काम बहुत कम हुआ है। मुक्तिबोध की कविता में पैठकर उसके अर्थ और अभिप्राय जानने का एक सार्थक प्रयत्न 'अंधेरे में' से जूझते हुए युवा आलोचक महेन्द्रसिंह ने भी किया था, जिसे मैंने पढ़ा है। यह बेहद आश्वस्तिपूर्ण है कि आज का युवा मुक्तिबोध से बिदक नहीं रहा, उन्हें कठिन और जटिल मान कर दूर से ही कन्नी नहीं काट रहा, उनमें धंसने की ईमानदार चुनौती को ढो रहा है। मुक्तिबोध तो कभी भी प्रश्न की उथली सी पहचान करके संतुष्ट नहीं हुए। वर्षाजी ने उनकी ये पंक्तियां उद्धृत की हैं- 'कि इतनी मार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खायी, तब कहीं वे/ स्पष्ट उद्घाटित हुए उत्तर'। मुक्तिबोध अपनी जनता के और अपने अनुभव, वेदना, विवेक- निष्कर्ष अपनी कविता में रचते हैं। स्वयं के समक्ष, अपनी ही छाया- मूर्ति सा खड़ा होकर, और स्वयं से भारी बहस मुबाहिसा करके ही वे विवेकपूर्ण निष्कर्ष पाते हैं। इसीलिए इन रचनाओं में जितनी विक्षोभी मणियां हैं, उतने ही विवेक रत्न भी हैं, जिन्हें लेकर आज इक्कीसवीं सदी के और भी भयावह हो चुके अंधेरे में भी आगे बढ़ा जा सकता है।

डा. वर्षा अग्रवाल ने मुक्तिबोध के पहले कविता संग्रह ' चांद का मुंह टेढ़ा है' की 28 कविताओं का बारीकी से जायजा लिया है और उनका अर्थसंधान किया है। वे 'भूल गलती' से शुरू होकर 'अंधेरे में' तक पहुंचती हैं। 'ब्रह्मराक्षस', 'दिमागी गुहांधकार का ओरांग उटांग', 'लकड़ी का बना रावण' जैसी कविताओं से मुठभेड़ करती हैं और उनका मतलब बांचती हैं। 'भूरी भूरी खाक धूल' की सात- आठ कविताओं को भी उन्होंने इस हेतु चुना है। 'एक रग का राग', 'मीठा बेर', 'कहने दो उन्हें जो यह कहते हैं', और ऐसी ही अनेक लम्बी कविताएं, इन्हीं सबसे तो मुक्तिबोध की वह 'अधूरी दीर्घ कविता' बनती है जिसमें यह महान कवि अपने व्यक्तित्व का अंतरण करके पुन: जन्म लेना चाहता था, नये सिरे से समझना और जीना चाहता था। उसकी कविता में जीवन- वास्तविकता के, तथ्यों के बेशुमार जीवन-दृश्य उकेरे गये हैं, और दमित-शोषित मनुष्य के अनुभवों के सारांश तथा सच्चे सपनों के आशय भरे हुए हैं। डा. राजेश्वर सक्सेना ने उन्हें 'संदर्भों का रचियता' कवि कहा है। उनके काव्य का औपन्यासिक रूप उन्हीं की इन पंक्तियों में झांक ही तो रहा है- 'झांक झांक देखता हूं हर एक चेहरा,/प्रत्येक चरित्र,/ व हर एक आत्मा की इतिहास,/ हर एक देश व राजनैतिक परिस्थिति/ प्रत्येक मानवीय स्वानुभूत आदर्श/ विवेक प्रक्रिया, क्रियागत परिणति'। यह कम संतोष की बात नहीं है कि डा. वर्षा अग्रवाल एक बड़े कवि से आतंकित हुए बिना बहुत सहज भाव से उसकी कविताई के रू ब रू हैं।

मुक्तिबोध आज और ज्यादा प्रासंगिक हैं जब समूची दुनियां में पूंजीवाद के खिलाफ जन-असंतोष उभर रहा है। वहां भी जो पूंजीवाद के अभेद्य दुर्ग समझे जाते हैं। पूंजीवाद की नाकामी से सबक लिये बगैर हमारा सियासी नेतृत्व आज भी कारपोरेटों का गुलाम बना हुआ है। दमित-शोषित बहुसंख्या की व्यथा समझने और उसकी रामकथा सुनने- कहने की चिंता है ही नहीं। वर्षाजी ने मुक्तिबोध की रचनाशीलता पर फिर से ध्यान खींची है। वे बधाई के पात्र हैं। मुक्तिबोध से ही आज का सच भी समझा जा सकता है। इस किताब में ये पंक्तियां भी आप पढ़ेगे जिनमें मुक्तिबोध मानो इतनी सर्जना के बारे में ही किसी कारीगर के मुंह से कहलवाते हैं-'धुंए से कजलाये/कोठे की भीत पर/ बांस की तीली की लेखनी से लिखी थी/ राम कथा व्यथा की/ कि आज भी जो सत्य है'।

221/ 9-बी, साकेत नगर, भोपाल-462024

मो. 9425678579

मुक्तिबोध का रचना संसार/शोध प्रबंध/ डॉ. वर्षा अग्रवाल/ साहित्य भंडार, इलहाबाद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'जंगल जहाँ शुरू होता है': वहीं से एक ख़त संजीव के नाम

सुल्तान अहमद

जनाब संजीव भाई !

बहुत ही काव्यात्मक शीर्षक है 'जंगल जहाँ शुरू होता है'। इसके ब्लर्ब में जो बताया गया है, 'जंगल यहां अपने विविध रूपों और अर्थछवियों के साथ केलीडोस्कोपिक अन्दाज़ में खुलता और खिलता है-थारू जनजाति, सामान्य जन, डाकू, पुलिस और प्रशासन, राजनीति, धर्म, समाज और व्यक्ति-- और सबके अन्दर से झाँकता झहराता जंगल और जंगल को जीतने का दुर्निवार संकल्प।' वह भी काफ़ी काव्यात्मक है। लीजिए ब्लर्ब लिखने वाले ने भी आपको कविता से जोड़ दिया। या फिर कहीं आपने ही तो नहीं लिखा है ! कविताओं में आपकी गहरी दिलचस्पी को देखते हुए इस तरह के शुब्हे का पैदा होना बहुत बेजा भी नहीं है। कविता पर आपका एक अहम ख़त 'कृति ओर' नाम के रिसाले में छपा भी था। 'तुक, ताल, लय, मात्रा और छन्द' नाम की तो आप एक कहानी भी लिख चुके हैं।

बेशक 'जंगल जहाँ शुरू होता है' का जंगल अराजकता का सिंबल है। यह अराजकता जंगल के डाकुओं के बीच कम, उस बस्ती में ज़्यादा पायी जाती है, जहाँ बड़े-बड़े शरीफ़ लोग, एम.पी., एम.एल.ए. और अफ़सर वग़ैरह रहते हैं। इस तरह की तस्वीरें देने में आपने वाक़ई काफ़ी मेहनत से काम लिया है। इससे कोई इन्कार नहीं करेगा कि आपने डाकुओं के ढेरों केस बहुत ग़ौर से देखे हैं। यह बात भी ब्लर्ब में बतायी गयी है, 'उपन्यासकार ने बारह वर्षों के निरन्तर श्रमसाध्य शोध से जो अरण्य-गाथा पेश की है, वह सर्वथा नयी है--- जितनी मनोरम, उतनी ही भयावह और जुगुप्साकारी भी।' इस 'नयी', 'अनछुए', 'परित्यक्त', और 'वर्जित' क्षेत्र के फेर में हो यह गया कि इस नॉवेल में आप आम लोगों की बहुत जानी-पहचानी, लेकिन दिल को छू लेने वाली आम ज़िन्दगी को देखने से चूक गये। अगर इस तरह की शिकायतें न होतीं तो मैं आपको ख़त ही क्यों लिखता, तारीफ़ें करके छुट्टी न पा जाता।

'जंगल जहां शुरू होता है' अगर सिर्फ़ डाकुओं के मसले पर ही रौशनी डालता तो इसकी स्फीति कुछ कम हो जाती और उसकी मार्मिकता कुछ बढ़ जाती। आप तो डकैती के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मसले के साथ-साथ 'अनछुए' क्षेत्र थारू जनजाति के जीवन के प्रचलित इतिहास, दंतकथाओं और अंधविश्वासों को दिखाने के लोभ में पड़ गये। इनको आपने इतना फैला दिया कि थारुओं के जीवन के मार्मिक प्रसंग या तो आये नहीं या फिर धुँधले पड़ गये। आपने चीज़ों को कभी पुलिस अफ़सर कुमार की निगाह से देखने की कोशिश की तो कभी अख़बार वालों की निगाह से। अख़बार वालों के नज़रिये में कितनी हड़बड़ी और गड़बड़ी होती है, इसे बताने की शायद ही ज़रूरत होनी चाहिए। इन चीज़ों को थारुओं की निगाह से देखने कोशिश नहीं की आपने। या कह लें कि इस मुआमले में आप कामयाब नहीं हो पाये। थारुओं को थारुओं की निगाह से देखने के लिए किसी थारू से पूछने की ज़रूरत नहीं थी, सिर्फ़ उन्हें ग़ौर से देखने की ज़रूरत थी। आप उनके इतिहास, दंतकथाओं और अंधविश्वासों में जितना उलझे, उसकी जगह एक भी थारू को अगर ग़ौर से देखते तो सारे थारुओं की कहानी उजागर हो जाती। लेकिन जैसा कि कहा भी गया है- 'क़तरे में दजलः दिखायी न दे, और जुज़्व में कुल,/खेल लड़कों का हुआ दीदः-ए-बीना न हुआ। (दीवान-ए-ग़ालिब, पृ. 36) -यह भी हो सकता है कि आपने दिखा दिया हो और मुझे ही न दिखा हो। काश! आपके थारुओं में से कोई तो ऐसा होता, जिसका किसी डाकू या पुलिस वाले से साबक़ा न पड़ा होता।

इस नॉवेल में आपने भी यही दिखाया कि काली जैसा थारू डाकू बन गया और उसकी फुफेरी बहन मलारी डाकुओं की मददगार कि जैसे थारू अपराधजीवी की 'प्रतिनिधि' बन जाय। उसकी यह पहचान ज़रूर बनती है कि वह मेहनतकश जनसाधारण की 'प्रतिनिधि' होती है। यही उसकी सुन्दरता भी होती है। किसी भी जनजाति का सबसे बड़ा आकर्षण क्या होता है ? यही कि वह मेहनतकश अवाम का एक अटूट और आम हिस्सा होती है। आपके यहां उसे 'साधारण' की जगह 'विशिष्ट और अद्वितीय' बना देने की कोशिश दिखायी देती है। आंचलिकता की अद्वितीयता के चलते यह बीमारी कुछ ज़्यादा ही घर करती जा रही है। आपने भी थारू जनजाति को 'प्रतिनिधि' बनाने की जगह 'विशिष्ट और अद्वितीय' ही बनाने की कोशिश की।

'दलित' और 'आदिवासी' शब्दों का सबसे बड़ा सौभाग्य यह है कि इन्हें सुनते ही आम मेहनतकश इन्सानों की याद आती है। इन शब्दों का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि ये जातियों की सूचक भर रह जाती हैं। इनकी इस जातिसूचक पहचान को आज के वोट बैंक की राजनीति के चलते प्रोत्साहन भी बहुत दिया जाता है। इन्हें वोट देने की मशीन भर बना दिया जाता है। यथार्थ की दृष्टि से देखें तो एक मेहनतकश आदिवासी और दलित और मुसलमान आदिवासी और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न उच्चवर्ग के आदिवासी नहीं होते। आदिवासी जनजाति में भी वर्ग-भेद तो होता ही है।

सहोदरा के मेले का जो आपने बिम्ब दिया है, ज़रा उस पर ग़ौर करें, 'कोई जत्था चनपटिया से चला आ रहा था, तो कोई नैपाल से, कोई रामनगर से तो कोई बगहा से, कोई सिर्फ अपने परिवार के साथ तो कोई गांव समेत भैंसागाड़ियों, बैलगाड़ियों के अलावा घोड़े,साइकिल, ट्रैक्टर, बस, जीप, मोटरसाइकिल से भी, मगर ज़्यादातर पांव- पैदल। सारी धाराएं सहोदरा में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आकर गिर रही थीं। मेले में लोग-ही-लोग मगर उनमें भी ज़्यादातर थारू और थारूओं में भी ज़्यादातर स्त्रियां।' (पेज 15)

अफसोस है कि आप इस मंजर का लाँग शॉट ही लेकर रह गये। एकाध क्लोज़ अप भी दे देते। आप खुद ही देखें कि थारूओं में भी कितनी ज़्यादा आर्थिक असमानता है। अपनी ही बिरादरी में फैली इस असमानता का दिल दुखानेवाला एहसास क्या उन्हें कभी नहीं हुआ होगा ? आख़िर इस तरह के दिल छू लेने वाले मंज़र इस नॉवेल में क्यों नहीं हैं ? आपने लॉग शॉट में एक फोटो लेकर छोड़ दिया। एक थारू मोटरसाइकिल पर और एक पैदल। इसकी विडम्बना दिखाने की जगह आप तो डाकुओं की सनसनीखेज़ दास्तानें गढ़ने में लग गये। क्या ज़्यादा अच्छा यह न होता कि आप थारूओं को तरह- तरह के काम करते हुए और उनमें तरह-तरह की तकलीफें उठाते हुए दिखाते। इन कामों और तकलीफों के बीच फिर भले आप यह दिखाते कि इनमें से कोई काली जैसा थारू डाकू बन गया है और उसकी फुफेरी बहन मलारी डाकुओं की मददगार। ऐसा न होने से कहीं न कहीं ऐसा लगता है, जैसे कि आप भी पुलिस महानिरीक्षक सिन्हा साहब की तरह यही यकीन करते हैं कि 'इस अभयारण्य से भी बड़ा अभयारण्य है- इलाके के ये थारू जनजाति के लोग। ये आपका सारा हाल डाकुओं से कह आयेंगे पर आप उनसे डाकुओं के बारे में पूछते रह जाइए, ये भोलेपन से मुकरते जायेंगे- का जानें साहब।' (पेज 8) आगे तो सिन्हा साहब किसी जड़ जातिवादी की तरह पूरी 'थारू जनजाति' पर बिना सोचे समझे, यह इल्ज़ाम लगाते हैं कि डाकू या अपहरणकर्ता इन्हीं के पैरासाइट हैं पेज 8 ऐसे खतरनाक जातिवादी जुमलों के बाद उनके इस जुमले का क्या मतलब रह जाता है, 'किसी भी निर्दोष नागरिक को परेशान नहीं करेंगे।' (पेज 8) पुलिसवाले जानते हैं कि अफसरों की ऐसी हिदायतें एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल भर देने के लिए होती हैं। डाकुओं की कहानी में जितनी रोचकता होती है,उतनी आम लोगों की आम ज़िन्दगी में नहीं होती। यह नॉवेल भी उसी रोचकता की गुलामी का शिकार हो गया है। यह तो आपका हक़ीक़तपसन्द रवैया ही है कि इस नॉवेल में निर्दोष नागरिक पुलिसवालों के ज़रिये परेशान किये जाते हुए दिखाये गये हैं। सबसे ज़्यादा परेशान किये जाते हैं बिसराम और उसकी पत्नी। पहला गुनाह तो उनका यह था कि उन्होंने डाकू परशुराम यादव के दल के लिए खाना बनाया था। बाद में वे इसलिए परेशान किये जाते हैं कि बिसराम का छोटा भाई काली भी डाकू बन जाता है। उसकी फुफेरी बहन मकरंदावाली मलारी तो इसलिए परेशान की जाती है कि वह डाकुओं से मिली हुई है। हथियार भी छुपाकर रखती है। उसी ने काली के जरिये अग़वा किये गये अल्ताफ़ का सौदा डाकू रामजंतन नोनिया से कराया था। ऐसे में उसका यह कहना बहुत वाजिब नहीं लगता और न उसे सुनकर पढ़ने वालों के दिलों में हमदर्दी ही पैदा होती है कि 'हाकिम! हमरा कसूर बस एतना है कि गरीब हैं, औरत जात हैं, जो ही आता है डरा-घमकाके जबरदस्ती करने को मगजूर मजबूर करता है।' (पेज 16)

मुश्किल यह है कि उप पुलिस महानिरीक्षक सिन्हा साहब के बेरहम जातिवादी नज़रिये

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की काट करता हुआ कोई मानवीय नज़रिया इस उपन्यास में दिखाया नही जा सका है। और जो दिखाया गया है, उस पर भरोसा नहीं बैठता। जिन तीन किरदारों कुमार, मुरली पाँड़े और बैठा को इसमें काफ़ी पॉजिटिव तरीक़े से पेश किया गया है, वे भी इसकी काट करते हुए नहीं दिखायी देते। बैठा तो चुस्त फ़िक़रे बोलने वाला गौण किरदार है, इसलिए उसे तो जाने दीजिए। बाक़ी दो के चेहरों पर आदर्श के लेप की जितनी ही पुताई हुई है, उतने ही वे खोखले नज़र आते हैं। आप जब पूंजीवादी मशीनरी के पुर्ज़े डी.वाय.एस.पी. कुमार के आदर्शवाद पर यक़ीन दिलाने की कोशिश करते हैं, तब कुमार से ज़्यादा आप ही पर शुब्हा जाता है। कुमार के आदर्शवाद का खोखलापन तो उसकी इस डींग में भी साफ़-साफ़ देखा जा सकता है,जिसमें वह डाकुओं के खिलाफ़ भरोसा दिलाता है, 'परेमा और परशुराम जैसे डाकुओं की मदद आप इसलिए करते हैं न कि आपकी जान को खतरा है ? अगर आप हमारी मदद करें, यानी कि पुलिस की, तो इस खतरे से आप हमेशा के लिए बच सकते हैं।' (पेज 59)

संजीव भाई! कुमार जो बेरहमियां करता है, उसे हम भुला देंगे, मलारी के जिस्म के साथ जो कुछ करने की कोशिश करता है, उस पर भी गौर नहीं करेंगे, सिर्फ यही याद रखेंगे कि यह आदर्श का पुतला जब नॉवेल के आख़िर में रो रहा था- 'उसकी आंखें छल-छल कर रही थीं- आग भी, पानी भी।' (पेज 286) इतने ज़बरदस्त जज्बाती आदर्शवादी को थोड़ा- बहुत तो हक़ीक़तपसन्द होना ही चाहिए। अपनी ताक़त के नशे में वह न देखता, लेकिन आपको तो देखना ही चाहिए था कि क्या वह इतना ताक़तवर था कि डाकुओं को आसरा देने वाले नेताओं दुबे जी या लल्लन बाबू या राधो बाबू का मुक़ाबला कर सकता था ? अगर एम.एल.ए. बनकर डाकू परशुराम यादव और उसकी पार्टी के मुख्यमंत्री आकर उसे डांटने लगेंगे तो वह गांव वालों की हिफ़ाजत वह कैसे करेगा ? आपने उसे एक नेता के मुंह से डांटे जाते हुए दिखाया तो है ही। क्या कर लिया उसने ? अगर कुमार ने इस पर कुछ सोचा होता तो बेशक वह कुंठित हो जाता, लेकिन उसका खोखलापन ज़रूर कुछ कम हो जाता। कहीं आप यह यक़ीन तो नहीं दिलाना चाहते थे कि पूंजीवादी मशीनरी का निचला हिस्सा भले बुरा हो गया हो, आला महकमा तो दूध का धुला हुआ है ही।

इस नॉवेल का केन्द्रीय किरदार है कुमार। इसके चित्रण में आपकी क़लम बार- बार लड़खड़ा जाती है। आप तो शुरूआत में ही दुविधा में पड़ गये थे। उसे आपने कितने जोशीले अन्दाज़ में सोचता हुआ दिखाया था, 'एक मामूली मास्टर का लड़का है तो क्या हुआ ? बिना किसी पैरवी के आ तो गया पुलिस उप अधीक्षक की पोस्ट पर। आगे प्रोमोशन नहीं मिल पा रहा है,जातिवाद के चलते, नहीं, ठीक जातिवाद भी नहीं, पैरवी न होने के चलते---(पेज 7)

काफ़ी दूर तक आपने कुमार की जाति नहीं बतायी। ऐसा भरम बनाया कि जैसे वह किसी दलित या आदिवासी जाति में से आया हो। काफ़ी दूर जाकर आप यह राज़ खोलते हैं कि ये साहब तो ब्राहम्ण हैं। अब कोई ब्राहमण यह शिकायत करें, 'आगे प्रोमोशन नहीं मिल पा रहा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-GR-01

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है, जातिवाद के चलते--' तब तो पढ़ने वाला मारे अविश्वास के चिल्ला ही पड़ेगा,इसीलिये आपको बांध के इस छेद को बालू से तोपने की कोशिश करनी पड़ी, ठीक जातिवाद भी नहीं, पैरवी न होने के चलते। क्या कुमार के इस भीतरी मंथन का यह मतलब नहीं निकलता कि वह पैरवी की उम्मीद ज़रूर लगाये बैठा है। अंगूर जब हाथ नहीं आये तो गुर्रा उठा, आय विल अर्न माय रिक़ॉग्नीशन मायसेल्फ़। (पेज 7) यह तो अच्छा हुआ कि आपने इस अंग्रेज़ी जुमले का अनुवाद हिन्दी में नहीं दिया। इस नॉवेल के लिये तो आपने आदत ही बना ली है कि पट से अंग्रेजी बोलेंगे और खट से उसका अनुवाद हिन्दी में कर देंगे। भोजपुरी वाक्यों के तो नहीं, लेकिन शब्दों के तो आप हिन्दी में इतने अनुवाद करते हैं कि तबीयत गिनगिना जाती है। रसभंग की इसे इन्तहा ही समझिए ।

संजीव भाई। मुझे तो यही लगता है कि आप अपने पूरे नॉवेल में यही तय नहीं कर पाये कि आप किस तरह के पढ़ने वालों के लिए अपनी भाषा का इस्तेमाल करें ? क्या आपके असली पाठक वे हैं, जो भोजपुरी, हिन्दी और अंग्रेज़ी तीनों जानते हैं या वे हैं जो हिन्दी और अंग्रेजी जानते हैं, लेकिन भोजपुरी में ग़च्चा खा जाते हैं या फिर वे हैं, जो सिर्फ़ हिन्दी ही जानते हैं और अंग्रेजी-भोजपुरी समझने में लड़खड़ा जाते हैं। इन तीनों तरह के पाठकों को टार्गेट बनाने के चक्कर में आपकी भाषा झूले की तरह झूलती रही। इस घपले में कहीं आप अंग्रेजी के 'आय विल अर्न माय रिक़ॉग्नीशन मायसेल्फ़' (पेज 7) जैसे वाक्य को बिना अनुवाद के जाने देते हैं, तो 'नाउ एनी क्वेश्चन फ्रॉम योर साइड' (पेज 9) का अनुवाद कर डालते हैं, 'आपकी ओर से कोई सवाल ?' (पेज 9) हिन्दी के पाठक भोजपुरी समझ लेंगे,इस पर तो आपको रत्तीभर भरोसा नहीं है इसके बीसियों शब्दों के अर्थ आपने ब्रैक़ेटों में दिये हैं। सबसे बुरा किया है आपने भोजपुरी को खड़ियाकर यानी आधी भोजपुरी में आधी खड़ी बोली मिलाकर। यह खड़ियायी भोजपुरी हो सकता है कि कहीं बोली ही जाती हो, फिर भी यह किरदारों की बोली न लगकर आपकी मजबूरी की ही बोली लगती है। मजबूरी यह कि अगर पेवर भोजपुरी हिन्दी पढ़नेवाले नहीं समझ सके तब क्या होगा? भाई जान। एकाध किरदार तो ऐसा रख देते, जो ठीक से भोजपुरी बोल देता। कुल मिलाकर इससे ज़बान का जायक़ा जगह- जगह बिगड़ता रहा।

हिन्दी समीक्षा की एक रूढ़ि रही है कि शिल्प या भाषा की बात कर लेने के बाद और कोई बात न करें। चूंकि यह समीक्षा नहीं, एक ख़त है इसलिए मैं इस रूढ़ि को तोड़ते हुए चन्द बातें और जोड़ना चाहूंगा।

यह सरासर बेइन्साफ़ी होगी, अगर मैं यह न कहूं कि इस नॉवेल को डाकुओं की सनसनीखेज़ कहानियों में इतना उलझा दिया गया है कि अगर इसका नाम 'चंबल के डाकू' की तर्ज़ पर 'चंपारण के डाकू' रख दिया जाता, तो भी कोई हर्ज़ न होता। डाकुओं की इस माला में थारू जनजाति का एक ही डाकू है काली। इस जाति के मलारी और लंगड़ डाकुओं के मददगार हैं। लेकिन भरम ऐसा खड़ा किया गया है कि जैसे थारू जनजाति के अधिकांश लोग डाकू ही बन जाते हैं। जबकि अन्य सभी जनजातियों की तरह उनकी विशेषता भी यही है कि अक्सर वे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मेहनतकश ही बनते हैं, डाकू नहीं। फिर थारू जनजाति के इतिहास, अन्धविश्वास और दंतकथाओं को बार- बार दिखाने से फ़ायदा ही क्या हुआ ? इस नॉवेल में जातिवाद की जितनी भी बारीकियां दिखाने की कोशिश की गयी है, उससे आज की उत्पादन और वितरण की व्यवस्था में कोई बुनियादी फ़र्क़ पड़ता नहीं दिखायी देता। हां, पढ़ने वाले चाहें तो एक मज़ेदार नतीजे पर ज़रूर पहुंच सकते हैं कि डकैती जाति और धर्म से काफ़ी परे और बड़ा ही सेक्यूलर पेशा है। कौन- सी ऐसी जाति है, जिसके आदमी इस पेशे में नहीं लगे हैं। थारू जनजाति का काली, निषाद जाति का नरैना, दुसाध जाति का फेंकन,नोनिया जाति का रामजतन, यादव जाति के परशुराम और परेमा, बाभन जाति के अविनाश पंडित, मुसलमानों में से गद्दी जाति के शमशेर। ये आपस में लड़ते भी हैं और एक दूसरे के काम भी आते हैं। जैसे आज के ग्लोबलाइज़्ड पूंजीपति आपस में एक दूसरे से जानलेवा होड़ भी करते हैं और फिर अपने वर्ग की रक्षा भी करते हैं। ऐसा नहीं कि इस पर आपका ध्यान गया ही न हो। आपने 'दूध का दूध,पानी का पानी' के यलो जर्नलिस्ट के ज़रिये यह बात रखी भी थी, 'भूमंडलीकरण के दावेदारों को तो खुश होना चाहिए कि और किसी का हो न हो, अपराध का भूमंडलीकरण हो गया।' (पेज 85-86)

मुश्किल यह है कि इस तरह का शऊर कुमार के पास नहीं है तो उसके आदर्श मुरली पांडे के पास भी नहीं है। आप कुमार की अच्छाई को बार-बार फुलाते हैं और बार-बार उसकी हवा निकल जाती है। यह उसकी मजबूरी भी है। वह जिस मशीनरी का हिस्सा है, उसमें वह इससे ज़्यादा अच्छा हो भी नहीं सकता था। इस पूंजीवादी मशीनरी की मजबूरी है कि वह समाज के दो लड़ने वाले वर्गों सरमायेदारों और मेहनतकशों से अपने आपको ऊपर दिखाये, लेकिन ख़िदमत सरमायेदारों की ही करे। ऐसे में इस मशीनरी का कोई पुर्ज़ा बेइन्तहा जज़्बात से भरा हुआ आदर्श बन जाये तो इन्क़लाब जैसा लफ़्ज़ बेमतलब होकर भहरा पड़ेगा।

कुमार के आदर्श मुरली पांडे भी ज़्यादातर पूँजीवाद से लड़ने की जगह उसके बायप्रोडक्ट अपराध से लड़ते हुए दिखाये गये हैं। उसमें भी वे जिस आदर्शवादी तरीक़े का इस्तेमाल करते हैं, उसमें जगह-जगह खोखलापन दिखायी देता है। इस खोखलेपन की कई साखियाँ हैं। एक तो वही, जिसमें उन्होंने गांववालों से कह दिया, 'डाकू पोसना साँप को पोसना है।' (पेज 67) गाँववालों ने डाकू परशुराम के चेले बंसी को खाना बनाकर नहीं दिया। उसने उन लोगों को पकड़कर हौदी में खाना डलवाकर खाने के लिए मजबूर किया। तेरह लोग मर गये। मुरली पांडे की 'दौड़-धूप का नतीजा यह हुआ कि डी.एम. और एस.पी. तनिक सक्रिय हुए।--' (पेज 69) दरोग़ा ट्रांसफ़र कर दिया गया। मुरली पांडे खुश हो गये। चल पड़े 'एस.पी. और डी.एम. को धन्यवाद देने।' (पेज 69) संजीव भाई ! यह धन्यवाद देने की बात थी कि नाराज़ होने की ?

मुरली पांडे का जो 'ग्राम सुरक्षा दल' बिना बन्दूक़ के ही इतना तेज़ हो गया है कि अपहरण और डकैती में लग गया है, उसके लिए कितने विश्वास से वे भरे हुए हैं। इसे देखने के लिए उनके और कुमार के संवादों पर ग़ौर कीजिए ---

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'और मास्टर साहब! आपके ग्राम सुरक्षा दल कैसे काम कर रहे हैं? 'उसी के लिए तो आया था, सर उसके लिए बंदूकें---!' 'ज़िला अधिकारी देने को तैयार हैं बशर्ते उनका बेजा इस्तेमाल न हो।' 'नहीं होगा।' 'तो जाकर ले लीजिए।' (पेज 156)

संजीव भाई! क्या आपको याद नहीं रह गया था कि 'ग्राम सुरक्षा दल' ने गुलेलों से ही बेजा काम करना शुरू कर दिया था? मुरली पांडे को अपने आदर्श की झोंक में भले न याद रह गया हो! उनका जज़्बाती दावा देखिए! अपने या अपने संगठन के गिरेबान में झाँकने को तैयार ही नहीं हैं।

आज के बहुतेरे बहुचर्चित लेखकों की तरह आज के ग्लोबलाइज़्ड पूँजीवाद के ज़माने में सामन्तवाद टटोल-टटोलकर देखना और उसे ही विलेन मानकर मार हलकान रहना आपके कुमार और मुरली पांडे का भी शग़ल है। अस्ल में यह मज़दूरों के बीच काम करके उन्हें इन्क़लाब के लिए तैयार करने से बचने का एक तरीक़ा भर है। इस सिलसिले में कुमार की समझ देखिए, 'चन्द्रदीप सिंह की ज़बान में मुस्लिम और हिन्दू सामान्तवाद दोनों के लासे थे--।' (पेज, 51) मुरली पांडे फ़रमाते हैं, 'चोर दरवाज़े अभी और हैं कुमार साहब, यहां का विशिष्ट भूगोल, यहां की परजीवी सामंती व्यवस्था, यहां के मारवाड़ी महाजनों का उपनिवेश--और भी कई।' (पेज 105)

उन्हें शायद अभी भी यह वहम है, बल्कि मुझे तो लगा कि आपको भी है कि हिन्दुस्तान में सामान्ती निज़ाम अभी तक बाक़ी है। जिन्हें वे ज़मींदार समझ रहे हैं, वे ऐसे पूंजीपति हैं, जो अपने खेत किसानों को लगान पर न देकर खेतिहर मज़दूरों से पूंजीवादी तरीक़े से खेती करवा रहे हैं। चूँकि वे जाहिलों की तरह दादागिरी भी करते हैं, जिससे यह समझने की भूल होती है कि ज़मीदारी या उसके अवशेष अभी सलामत हैं। आज के ज़माने में ज़मींदारी देखना तो कुछ ऐसे ही है, जैसे आज के प्रधानमंत्री को राजा और मुख्यमंत्रियों को उनके नवाब या सामन्त समझ लेना। आज के ज़माने में यह समझना ज़्यादा ज़रूरी है कि आज की डकैतियाँ ज़मींदारी की बदौलत नहीं बल्कि आज के ग्लोबलाइज़्ड पूंजीवाद की बदौलत हैं, जिसके नुमाइन्दे तरह-तरह के अपराध करते या अपराधों को पालते-पोसते हैं, जिनके शिकार थारुओं जैसे आम मेहनतकश अवाम हो रहे हैं, जिनमें से कुछ की तस्वीरें तो आपने अपने नॉवेल में दी हैं, लेकिन बहुतेरों की रह भी गयी हैं। कहीं क़ैनवास पर आने से उन्हें आपने जान-बूझकर तो नहीं रोक दिया है?

आख़िरी सवाल यह कि थारू जनजाति की दूसरी जनजातियों से या दूसरी मेहनतकश जातियों से अलग पहचान बन जाय, क्या इसी से उसे मुक्ति मिल जायेगी या उसे तभी मुक्ति मिलेगी जब उसकी अपनी जाति में से ही नहीं, बल्कि सारे विश्व की उत्पादन-वितरण व्यवस्था में से ही असमानता ख़त्म हो जाये? इसी सवाल के साथ मैं अपनी बात ख़त्म करता हूँ।

ए-9, सिलिक़ोन एवेन्यू, सैयदवाड़ी, वटवा, अहमदाबाद-382440
मोबाइल : 09979451243

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

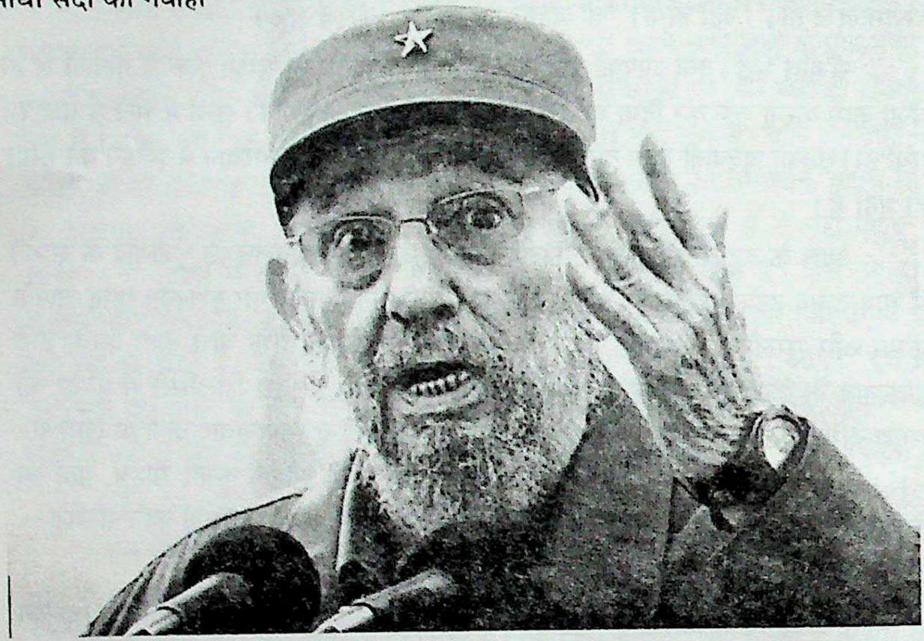

'वह राह चलते लोगों से भी जब बात करते हैं, उस बातचीत की अभिव्यक्तिपूर्णता, संदेश ज्ञापित करने की क्षमता सर्वोच्चता में विद्यमान होती है। वाक्यों की स्पष्टता व तर्क वाक्यों के कच्चेपन से प्रभावित नहीं होती, साथ ही साथ अनौपचारिकता हमेशा विद्यमान रहती है। यही कारण है कि लोग उन्हें कह पाते: फ़िदेल। वे अपनी इसी अनौपचारिकता के साथ तर्क करते हैं। अपने दावे प्रस्तुत करते हैं। कोई भी इस असाधारण मानव को उसकी वास्तविकता में कभी भी देख सकता है, एक ऐसी छवि, प्रतिबिम्ब, जिसमें कुछ नहीं छिपता। मुझे जिस फ़िदेल के बारे में पता है, जिस फ़िदेल पर विश्वास है, वह यही है। सादगी की आदतों वाला और किसी भी लालची भ्रम से दूर, पुराने ढंग की शब्दों की गंभीरता व उन पर विश्वास करने की शिक्षा प्राप्त व्यक्ति, जिसे कभी एक विचार में बद्ध नहीं किया जा सकता।'

–ग्रैबियल गार्सिया मार्खेज

फ़िदेल कास्त्रो से इग्नासियो रैमोनेट की बातचीत

अनुवाद–जीतेन्द्र गुप्ता

इग्नासियो रैमोनेट प्रतिष्ठित पत्रकार लेखक हैं, फ्रांस के राष्ट्रीय दैनिक ला मोंदे डिप्लोमैटिक्यू (कूटनीतिक दुनिया) के प्रमुख सम्पादक रहे हैं। हाल में ही फ़िदेल कास्त्रो के जीवन व उनके राजनीतिक विचारों पर केंद्रित पुस्तक फ़िदेल कास्त्रो बायोग्राफिया ए डोस वाय्स (फ़िदेल कास्त्रो:दो आवाजों में जीवन) मूल रूप से स्पेनिश भाषा में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में रैमोनेट ने फ़िदेल के साक्षात्कारों द्वारा उनके जीवन व चिंतन को एकबद्ध करने का प्रयास किया है। प्रस्तुत साक्षात्कार इसी पुस्तक में संकलित हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुछ समय पहले मैंने आपसे पूछा था कि क्यूबा में नव उदारवादी वैश्वीकरण के प्रभाव के प्रसार को रोकने के लिए आपकी क्या योजना है, और आपने इस तरह उत्तर दिया था: 'हम धैर्यपूर्ण ढंग से वैश्वीकरण के पतन की प्रतीक्षा करेंगे ?'

जब मैंने स्टगलित्ज को यह जवाब दिया था, उस समय उन्होंने कोई भी पुस्तक नहीं लिखी थी, आप सुन चुके होंगे कि सोरेस ने बहुत बड़ी सट्टेबाजी की कार्यवाहियों के विषय में घोषणाएं की थीं, उस समय तक दिसंबर 2001 में अर्जेंटीना में उत्पन्न हुआ संकट सामने नहीं आया था, न ही इस तरह के गंभीर संकट को हमने इस समय तक देखा ही है।

हम वैश्वीकरण के प्रति उस समय ही बहुत, बहुत अधिक सचेत हो गए थे और जब हमने कुछ समय पहले उस विषय वस्तु का अध्ययन किया, जो वैश्वीकरण की प्रक्रिया का नेतृत्व कर रही है। हमने यह नतीजा निकाला कि यह परिघटना 1929 में सामने आए वित्तीय संकट से भी भीषण परिणाम उत्पन्न करेगी। इसके पूर्व हमने 1929 के संकट के बारे में गालब्रेथ व अन्य अर्थशास्त्रियों के विश्लेषण का भी गंभीर अध्ययन किया था। इसके साथ-साथ पूँजीवादी उत्पादन के आधारभूत विचार से संबंधित शोधों का अध्ययन किया और इसके बाद हमने स्वयं से प्रश्न किया कि इस व्यवस्था में क्या चीज़ छूट रही है और यदि इसमें कोई चीज़ बाकी रह गई थी, वे इसमें विद्यमान पूरे विश्व में मुक्त खपत, मुक्त फर्में जैसी चीज़ें हैं, ये सभी ऐसे 'सच' थे, जिन्हें धर्म सिद्धांत की तरह पवित्र माना जाता है, आपने स्वयं से ही वैश्वीकरण के लिए एक भिन्न नाम का प्रयोग किया है-मेरे ख़्याल से आपने इसे 'एक दर्शन' कहा है, दूसरों ने इसे 'इतिहास का अंत' भी कहा है। मैं अभी भी इस बात से पूर्णतया आश्वस्त हूँ कि एक दूसरा मार्ग भी है। हमें इस नवीन व्यवस्था का प्रतिरोध करना चाहिए। मेरे ख़्याल से मैंने उस समय भी यही बात कही थी।

आप स्वयं से पूछें कि पूंजीवाद में बाकी क्या बचा है। क्या आप सोचते हैं कि वैश्वीकरण पूंजीवाद का भी विनाश कर रहा है ?

आज किसी किस्म का कोई पूंजीवाद नहीं है। पूंजीवाद का कोई भी प्रगतिशील अवदान शेष नहीं है। आज किसी किस्म की कोई प्रतियोगिता भी नहीं है। आज सभी बड़े क्षेत्रों में मात्र एकाधिकार है। उन कुछ देशों के बीच एक किस्म की प्रतियोगिता है, जो टेलीविजन या कम्प्यूटर बनाते हैं- यहाँ तक कि कार भी तो विश्व बैंक ही बनाता है, लेकिन इसके बावजूद पूंजीवाद, पूंजीवाद का अस्तित्व तक अब नहीं बचा है।

विश्व की 80 प्रतिशत अर्थव्यवस्था का नियंत्रण 500 वैश्विक व्यापारिक संस्थानों के हाथों में है। प्रतियोगिता के चलते कीमतों में कमी नहीं होती है। उदाहरण स्वरूप एड्स के इलाज के लिए बनी दवा की बिक्री पर एकाधिकार है, और इस तरह से कीमतें लगातार बढ़ती जाती हैं। दवाएं वैश्विक आय-व्यय में अनुचित, उच्छंखल, निरंकुश और शोषक वस्तुएं हो गई हैं। कई बार दवाओं के दाम उनकी वास्तविक कीमतों से 10 गुना तक अधिक होते हैं। सारभूत रूप से यह विज्ञापन पर पर निर्भर करता है कि क्या चीज़ बिकेगी और क्या नहीं। जिस व्यक्ति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के पास अधिक धन नहीं है, वह किसी तरह से अपने उत्पाद का विज्ञापन नहीं कर सकता है, और फिर इसका तात्पर्य हो जाता है कि यह बेहतर नहीं है।

चालीस के दशक में हुए वैश्विक रक्तपात के बाद हमने एक शांतिपूर्ण दुनिया का वादा किया था, हमने वादा किया था कि गरीब व अमीर के बीच की खाई खत्म होगी, और अधिक विकसित देश कम विकसित देशों की सहायता करेंगे। यह सारी बातें एक महा झूठ साबित हुई हैं। एक ऐसा वैश्विक क्रमानुक्रम हम पर आरोपित कर दिया गया है, जो किसी भी तरह से न तो न्याय पूर्ण है, न ही हो सकता है, यह किसी तरह से दीर्घजीवी या जीवनक्षम भी नहीं हो सकता है, और किसी तरह से जन्मजात भी नहीं हो सकता है। यह दुनिया मृत्यु की अंधी गली में जा रही है।

ऐसे में वह सभी श्रेणियाँ, जिनके आधार पर हम सोचते हैं कि पूंजीवाद अस्तित्ववान है, उनमें से कोई भी 'शिकागो ब्वायस' के सिद्धांतों का (पूंजीवाद की सैद्धांतिकी के आधार) समर्थन नहीं कर सकती, फिर किस तरह से पूंजीवाद के अस्तित्ववान होने को स्वीकारा जाए। दरअसल इस दौर में हमें अभी समाजवाद के सिद्धांत और उसकी कार्य व्यवस्था को विकसित करना है, और उसे लिखना है।

एक अन्य अवसर पर आपने मुझसे कहा था कि राजनीतिक दुनिया में अब कोई 'मॉडल' (प्रारूप) शेष नहीं बचा है, और आज कोई भी बेहतर ढंग से समाजवाद की अवधारणा के विषय में नहीं जानता है। एक बातचीत में आपने मुझे बताया था कि हवाना में आयोजित साओं पाउलो मंच की एक बैठक में सभी लैटिन अमरीकी वामपंथी शक्तियों ने शिरकत की थी, इस बैठक में आपने भी शिरकत की थी। यहाँ उपस्थित प्रतिनिधियों ने इस बात पर समझौता किया कि वे 'समाजवाद' शब्द का प्रयोग नहीं करेंगे, क्योंकि यह एक ऐसा शब्द है, जो अपने अर्थ में 'विभाजित' है।

देखिए-मार्क्सवाद क्या है ? समाजवाद क्या है ? ये बहुत परिभाषित नहीं है। पहली बात तो यह कि सबसे पहले पूंजीवाद की व्याख्या के लिए राजनीतिक अर्थशास्त्र अस्तित्ववान हुआ, इसके लिए जिम्मेदार व्यक्ति एडम स्थिम था। इसी तरह हम भी यहाँ समाजवाद के निर्माण के लिए पूंजीवाद द्वारा अपनाई गई श्रेणियों को स्वीकार कर लेते हैं, और इसी बात से हमारा सबसे गहरा सरोकार है। क्योंकि यदि आप समाजवाद के निर्माण के लिए यांत्रिक रूप से पूंजीवादी श्रेणियों का प्रयोग करेंगे, निश्चय ही आप सभी कार्पोरेशनों (फर्मो) को एक दूसरे से प्रतियोगिता करने के लिए मजबूर करेंगे और ये आपराधिक और चोर कार्पोरेशन और अधिक विकसित होंगे। यहाँ खरीदे हुए सामान की वहाँ बिक्री करेंगे। इस मामले को समझने के लिए बहुत गहराई से अध्ययन करने की जरूरत है।

वित्तीय बजट (Budget Financing) और स्ववित्त पोषण (Self Financing) को लेकर एक बार चे स्वयं बहुत बड़ी उलझन में फंस गए थे। हमने इस बारे में बातचीत की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थी। सरकार में मंत्री होने के कारण उन्होंने कई एक एकाधिकारवादी तंत्रों (व्यवस्थाओं) का अध्ययन किया, और बाद में उन्होंने वित्तीय बजट प्रविधि का प्रयोग किया। सोवियत संघ ने दूसरी व्यवस्था: स्ववित्त पोषण का प्रयोग किया था, और वे लोग इसके पक्ष में एक मजबूत राय भी रखते थे।

मार्क्स ने इस विषय पर बहुत सरसरी निगाह से गोथा कार्यक्रम की आलोचना में विचार किया था। इसमें उन्होंने यह परिभाषित करने का प्रयास किया था कि समाजवाद के लिए क्या बेहतर होगा। क्योंकि वह बहुत अधिक बौद्धिकता सम्पन्न/ज्ञानपूर्ण व्यक्ति थे, यथार्थबोध की उन्हें इतनी गहरी समझदारी थी कि वे सोच सकते थे कि समाजवाद के लिए क्या बेहतर होगा और वही यह 'यूटोपिया' लिख सकते थे। समस्या उनके सिद्धांतों का विश्लेषण करने में है, और इस विषय में ढेरों विश्लेषण उपस्थित हैं। इसी कारण से इतने लम्बे समय में प्रगतिशील आपस में विभाजित हैं, अराजकतावादियों व समाजवादियों के बीच विवाद का कारण यही है। 1917 की बोल्शेविक क्रांति के बाद ट्राट्स्कीवादियों और स्तालिनवादियों के बीच विवाद का भी यही कारण था, या हम यह भी कह सकते हैं (अंतरों में भी) एक या दूसरे पक्ष के लोगों के बीच इस गहरे महान विवाद का कारण दो महान नेताओं के बीच विचारधारात्मक विच्छेद रहा। बिना किसी संशय के इन दोनों महान नेताओं के बीच ट्राट्स्की ज्यादा बुद्धिमान व बौद्धिक थे।

स्तालिन एक व्यवहारवादी नेता ज्यादा थे-वह एक सिद्धांतवादी विचारक की अपेक्षा षडयंत्रकारी ज्यादा थे। हालाँकि कुछ समय बाद उन्होंने (स्तालिन) एक विचारक के रूप को प्राप्त करने का प्रयास किया। मुझे उन कुछ पुस्तिकाओं की याद आ रही है, जिनमें स्तालिन ने 'द्वंदवादी भौतिकवाद' के सार की व्याख्या करने का प्रयास किया था, और इसमें उन्होंने पानी को उदाहरण के रूप में प्रयुक्त किया था। इस तरह से स्तालिन को विचारक साबित करने का प्रयास किया गया था। वह बहुत अधिकल्ल क्षमता वाले संगठनकर्ता थे, मेरे विचार से वे एक क्रांतिकारी थे-मैं नहीं सोचता कि वे कभी जार की सेना रहे थे। लेकिन इसके बावजूद उन्होंने वे गलतियाँ की, जिनके बारे में हम सब जानते हैं-दमन, शुद्धिकरण के अभियान, और भी बहुत कुछ।

लेनिन बहुत प्रतिभासम्पन्न व विशिष्ट व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति थे, सापेक्षिक रूप से उनकी मृत्यु युवावस्था में ही हो गई, लेकिन यदि वह जीवित रहते तो निश्चय ही बहुत कुछ कर सकने में सक्षम थे। सिद्धांत हमेशा मदद नहीं करता। उस दौर में जब समाजवादी राज्य का निर्माण हो रहा था, लेनिन ने निर्भीकतापूर्वक 1921 में नवीन आर्थिक कार्यक्रम (NEP-New Economic Policy) को लागू किया था। हमने भी इस विषय पर बातचीत की थी और जैसा मैंने आपको बताया कि चे ने स्वयं नवीन आर्थिक कार्यक्रम को नहीं पसंद किया था।

लेनिन ने वास्तविकता में बहुत बेहतरीन विचार प्रस्तावित किया था: सर्वहारा के अधिनायकत्व में पूंजीवाद का निर्माण। याद कीजिए कि उस वक़्त सभी बड़ी ताकतें बोल्शेविक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्रांति को नष्ट कर देना चाहती थीं, हर किसी ने बोल्शेविक क्रांति पर हमले किए थे। किसी को भी इस अल्प विकसित देश के पतन/उसकी बरबादी के कारणों के इतिहास को नहीं भूलना चाहिए, रूस पूरे यूरोप में सबसे कम विकसित देश था (और बेशक मार्क्स की सैद्धांतिकी का प्रयोग करके लेनिन ने यहाँ क्रांति की) जबकि उस समय तक सबसे जटिल सैद्धांतिक विचार यह था कि क्रांति ऐसे देश में नहीं हो सकती। क्रांति सबसे पहले विकसित औद्योगिक देश में होगी, क्योंकि इन्हीं विकसित औद्योगिक देशों में उत्पादन शक्तियाँ सबसे अधिक चेतना सम्पन्न होंगी।

इस तरह की महान द्विविधा में भी सबसे पहले क्रांति रूस में हुई। इसके बाद प्रश्न था कि अब कौन से मार्ग का अनुकरण किया जाए। जब बाकी यूरोप में क्रांतिकारी आंदोलन का पतन हो चुका था, लेनिन के पास और कोई विकल्प ही नहीं बचा था, उन्होंने एक देश रूस में समाजवाद का निर्माण किया (सैद्धांतिकी विकसित की)। कल्पना कीजिए कि एक ऐसे देश में समाजवाद के निर्माण का प्रयास किया जा रहा था, जहाँ निरक्षरता की दर 80 प्रतिशत थी, और स्थिति ऐसी थी कि हर व्यक्ति उन (लेनिन) पर हमला कर रहा था, और देश/समाज में जो भी बुद्धिमान आदमी, औरतें थीं, या तो देश से चले गए थे, या उन्हें सजा हो चुकी थी। आपने देखा?

सचमुच यह घातक बहसों वाला यह एक भयावह समय था।

इस तरह के कई विवाद थे। उसी समय लेनिन की मृत्यु हुई। मेरी राय में नवीन आर्थिक कार्यक्रम को लागू करने के 10 वर्षों तक सोवियत संघ ने कृषि/कृषक सहकारिताओं के स्थापित करने में समय बरबाद किया। उन परिस्थितियों में वैयक्तिक स्तर पर अधिकतम उत्पादन हो सकता था, सामूहिकीरण में भयानक उतावलापन हुआ। क्यूबा में सदैव से ही ऐसा रहा था। पूरे देश में 100,000 वैयक्तिक भूमि स्वामी थे। 1959 में हमने पहला काम यह किया कि जो भी किराए की ज़मीन पर या फसल के हिस्सेदार के रूप में काम कर रहे थे, वे पहले की तरह ही काम करते रहे।

क्या आप सोचते हैं कि आज के दौर में भी हम एक बहुत गहरे विचारधारात्मक विभ्रम में रह रहे हैं?

मानता हूँ। विचारधारात्मक रूप से आज बहुत अधिक विभ्रम विद्यमान हैं। जिस दुनिया में आज हम रह रहे हैं, वह बहुत भिन्न हैं। कई सारी समस्याएँ हैं, जिसमें महान राजनीतिक और सामाजिक दार्शनिक नहीं हो सकते, उनके विचारों में बहुत बड़ी खाई है, जिससे वह अपने ज्ञान द्वारा लोगों में क्रांतिकारी विचार नहीं प्रसारित कर पा रहे हैं।

आज लोग अल्प विकास, बीमारियों, अशिक्षा के विरुद्ध संघर्षरत हैं, लेकिन जिसे हम मानवीयता के सामने उपस्थित समस्याओं का वैश्विक हल कह सकते हैं, अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है। मानवीयता के समक्ष उपस्थित समस्याओं का हल ऐकिक राष्ट्र के आधार पर नहीं प्राप्त किया जा सकता, क्योंकि आज वैश्विक स्तर पर पहले से ज्यादा अधिनायकत्व विद्यमान हो गया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। 'नव उदारीकृत वैश्वीकरण', जिसके बारे में हम बातचीत कर रहे थे, उसे साम्राज्य व उसके सहयोगियों का समर्थन प्राप्त हो रहा है। विश्व व्यापार संगठन, विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष अप्रत्यक्ष रूप से अधिनायकत्व, प्रभुता व शोषक तंत्र के अंतर्गत कार्य करते हैं, जो कि औपनिवेशिक दासता के महा भयानक परिणामों के समान या उससे भी बुरा है।

कई लोग स्वयं को इस विद्यमान प्रभुता से मुक्त करने का प्रयास कर रहे हैं। आप स्वयं साक्षी रहे हैं कि न जाने कितने लोगों ने पोर्टो अलेर्गे और 2004 में मुंबई में विश्व सामाजिक मंच (WSF) में भागीदारी की थी। और इस उदारवादी वैश्वीकरण के संदर्भ में मैंने न जाने कितने लेख, विश्लेषण तो आपकी ही पत्रिका में मैंने पढ़े है। इसके अलावा भी प्रकाशित हुई न जाने कितनी गंभीर सामग्री का मैंने अध्ययन किया है।

यहाँ, हम पिछले कई वर्षों से हमारे सहयोगी आपके द्वारा प्रकाशित पत्रों, मध्यवर्ती राजनीतिक स्थिति वाले पत्रों, दक्षिणपंथी रुख वाले पत्रों को पढ़ते, समझते रहे हैं। हम लोग लगातार आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण सभी साप्ताहिक पत्रों और आंशिक पत्रों में देखते रहे हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि लोगों के लिए समस्याओं का समझना बहुत कठिन हो गया है, क्योंकि अधिकांश देशों में बहुसंख्यक आबादी को अर्थव्यवस्था से संबंधित सामान्य शिक्षा ही नहीं दी जाती है और बिल्कुल यही स्थिति राजनीतिक शिक्षा के बारे में भी है।

क्या आपने महसूस किया है कि उदारीकृत वैश्वीकरण जिस तीव्रता और तर्क के साथ उपस्थित हुआ था, हाल के कुछ वर्षों में उसके तर्कों की तीव्रता कम हुई है?

हाँ, मैंने इस प्रभाव को महसूस किया है, क्योंकि हमारे सामने अर्जेंटीना का मामला उपस्थित है, जहाँ मई 2003 में नेस्टर क्रिचनर की जीत हुई। उनकी यह जीत एक तरह से प्रतीकात्मक रूप में नव उदारवादी वैश्वीकरण की नीति की पराजय है, क्योंकि इस देश पर नव उदारवादी वैश्वीकरण की नीति को लागू किया गया था, और अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संकट में इस देश ने भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। अभी बहुत लम्बा समय नहीं बीता, जब 1977 में दक्षिण-पूर्व एशिया को वित्तीय संकट का सामना करना पड़ा था, अब यह संकट पूरी दुनिया में व्याप्त है, इसके साथ इराक में युद्ध, भारी ऋणों का परिणाम, अपशिष्ट पदार्थों की बढ़ती मात्रा और ऊर्जा की बढ़ती कीमतें, मुद्रा का भाग्य-कि उसका कभी भी अवमूल्यन हो सकता है, और इसके अनिश्चित निर्गमन के साथ इस ग्रह की मुख्य आर्थिक व सैन्य शक्ति की व्यवस्थाओं में लगातार विद्यमान घाटा।

समस्या वैश्विक स्तर पर है, और इसी कारण वैश्विक स्तर पर चेतना उत्पन्न हो रही है। इसी कारण वह गरिमामय दिन भी आएगा और एक बेहतर दुनिया भी निश्चित रूप से सामने आएगी। इसी कारण मैं एक वाक्य कहूँगा। यह वाक्य शायद आपने ही प्रस्तावित किया है, और जो आज बहुत ही सशक्त होता जा रहा है: 'एक बेहतर दुनिया संभव है' (A Better World is Possible)। लेकिन जब हम एक बेहतर दुनिया प्राप्त कर लेंगे, जो कि संभाव्य है, तब भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हम दोहराएंगे: 'एक बेहतर दुनिया संभव है', क्योंकि आज दुनिया एक दोराहे पर खड़ी है-या तो बेहतर बनो या समाप्त हो जाओ।

मैं विचारों पर विश्वास करता हूँ, और मैं चेतना ज्ञान, संस्कृति और विशेषकर राजनीतिक संस्कृति पर विश्वास करता हूँ। हमने कई वर्षों तक चेतना जगाने के लिए प्रतिबद्धतापूर्वक कार्य किया, और मुझे इस पर पूरी तरह से विश्वास है। इसके साथ यह भी कहूँगा कि मैं शिक्षा व संस्कृति पर सबसे ज्यादा विश्वास करता हूँ, विशेषकर राजनीतिक संस्कृति पर बहुत गहराई से विश्वास करता हूँ। हम एक ऐसी दुनिया में रह रहे हैं, जिसमें राजनीतिक संस्कृति की सबसे ज्यादा कमी है। किसी और की अपेक्षा आपको यह बहुत बेहतर तरह से जानना चाहिए, क्योंकि आप उस राजनीतिक संस्कृति को विकसित करने के लिए संघर्षरत हैं, जो नवीन आर्थिक क्रमानुक्रम और नव उदारवादी वैश्वीकरण के कारण उपजी समस्याओं का भार वहन करने में सक्षम हो।

दुनिया के लगभग हर विद्यालय में मतान्धता ही पढ़ायी जाती है-यहाँ भी हम मतान्धता ही पढ़ते हैं।

आप मतान्धता/हठधर्मिता से चिढ़ते हैं ?

हाँ। मैं हर किस्म की मतान्धता/हठधर्मिता का विरोधी हूँ, मैं गंभीरतापूर्वक मतान्धता/हठधर्मिता का विरोधी रहा हूँ। इस विषय पर हमने पहले भी बात की है। इसीलिए मैं आपको बताता हूँ कि कहाँ-कहाँ हमारे विश्वास झूठे हैं, विचारों की विस्मयकारी शक्ति में चालीस से ज्यादा वर्षों में हमने विचारों और ज्ञान के मूल्य में क्या सीखा, और आज भी क्या खतरे हमारे सामने हैं। इसलिए हम हमेशा ही लोगों को अधिक से अधिक शिक्षित करने का प्रयास करते हैं, नई पीढ़ी को तो और अधिक शिक्षित करने का प्रयास करते हैं। क्योंकि आज वैश्वीकृत दुनिया आपको मज़बूर कर रही है कि आप अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करें, जिससे सामने उपस्थित समस्याओं को देख, समझ पाएँ, और उनके वैश्विक हल खोज पाएँ।

जैसे ?

पहले यह सुनिश्चित करना कि मानवीयता संरक्षणीय है, क्योंकि आज के दौर में मानव जाति के अस्तित्व के प्रति कोई प्रतिश्रुति नहीं है। यह बात हमने अपने इतिहास से जानते हैं, जिसमें देख सकते हैं कि कुछ ही वक़्त पहले प्राणियों में आस्तित्विक संघर्ष हुआ। हमारी (मानव) प्रजाति बहुत ही नई है, उत्पत्ति के विभिन्न चरणों की लाखों लाख वर्षों की प्रक्रिया की तुलना में इस जाति की तो बहुत कम उम्र है।

अपनी सारी बौद्धिक क्षमताओं के साथ आज का मानव लगभग 100,000 वर्ष ही पुराना है। हम जानते हैं कि जीवन की उत्पत्ति कई बार उल्का पिण्डों द्वारा बाधित हुई है-यह एक ऐसा तथ्य है, जिसे आज सभी स्वीकारते हैं..... वैज्ञानिक कहते हैं कि यह बहुत बड़े नाभिकीय विस्फोट के समान था, जिसमें इस ग्रह का वातावरण धूल से भर गया और पूरी धरती की सप्ताहों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के लिए अंधकार में डूब गई। कौन जानता है कि इससे न जाने कितनी प्रजातियों के डायनासोर और इसी तरह के अन्य जीवों का उन्मूलन हो गया, वही दूसरे किस्म के जीवों की भी उत्पत्ति हुई... लेकिन उस समय भी मानव जाति का अस्तित्व नहीं था।

आज औद्योगिकीकृत दुनिया के सामने नया खतरा है: आज आबादी 6.5 बिलियन है, और प्रतिवर्ष 100 मिलियन व्यक्ति या कम से कम 80 मिलियन की दर से आबादी बढ़ रही है। मेरे पास तीन घड़ियाँ हैं, जो थोड़े-बहुत अंतर से प्रतिदिन हो रही वैश्विक जनसंख्या की बढ़ोत्तरी के बारे में बताती हैं। और हमें ध्यान रखना चाहिए कि चीन ने अपनी जनसंख्या को नियंत्रण में रखने के लिए बेहतरीन प्रयास किए हैं, इसके बावजूद इस ग्रह की आबादी 6.7 बिलियन से ज्यादा है।

हर एक व्यक्ति जानता है कि कितनी आबादी बढ़ने जा रही है, हर व्यक्ति जानता है कि अशिक्षा, संस्कृतिविहीनता और परिवार में बच्चों की संख्या में आपस में क्या रिश्ता है। आज की दुनिया में हर एक व्यक्ति इस विषय में सैकड़ों अन्य बातों को जानता है। वास्तव में उन कई एक देशों में भी जनसंख्या विस्फोट हो रहा है, जहाँ की अर्थव्यवस्था बढ़ोत्तरी नहीं कर पा रही है- इस तरह इन जगहों को भी ऋण और विनाश का सामना करना पड़ रहा है।

और वैश्वीकरण लगातार ही इन विनाशक सच्चाईयों को नज़रअंदाज कर रहा है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष का शासन कई देशों को और (विशाल संख्या में) आदमियों को गर्त में झोक रहा है, क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष पूर्णत: शक्तिपूर्वक निर्देशित कर रहा है। इसी तरह साम्राज्यवाद, जिसकी रुचि केवल बड़े कार्पोरेशनों के हितों का संरक्षण करने में है, और वह यह सबकुछ हर एक ज़िन्दा व्यक्ति की क़ीमत पर कर रहा है। वे (संयुक्त राज्य अमरीका) जिस किसी पर चाहते हैं, कर लगा देते हैं, उन्होंने कनाडा पर भी लकड़ी आयात पर 30 प्रतिशत का कर थोप दिया है, जिससे कई बिलियन डॉलर का बाज़ार प्रभावित होता है।

यही बात कि वहाँ दुनिया के देवता विद्यमान हैं.....जब वे कुछ देशों के समूह को बरबाद करना चाहते हैं, वे (संयुक्त राज्य अमरीका) इस्पात के आयात पर भयंकर कर आरोपित कर देते हैं। लेकिन इसके अपने छोटे व्यवसायियों को भी हर किस्म की रियायतें मिलती हैं। अमरीकी राजनीतिक अर्थशास्त्र पूरे विश्व और (यहाँ तक कि) अपने सहयोगियों के सापेक्ष कभी भी स्वकेंद्रित नहीं रहा है (जैसी स्थिति अभी भी है)।

सारी दुनिया में, देशों में सशक्त राष्ट्रीय भावनाएँ विकसित हो रही हैं। और यह कोई अच्छी बात नहीं है, इस समय हमारी चिताएं व सरोकार राष्ट्रीय नहीं हैं, बल्कि वैश्विक हैं। अब दुनिया में अंतर्राष्ट्रीय भावनाएं विकसित होना है, क्योंकि यदि हम अंतर्राष्ट्रीयतावादी नहीं होंगे, या वैश्विक भ्रातृत्व के सिद्धांत का अनुकरण नहीं करेंगे, या हम दूसरे राष्ट्रों पर दोषारोपण करना शुरू कर करेंगे, यह बिल्कुल उसी तरह होगा जैसे कि नाजीवाद के आतंक के लिए पूरे जर्मनी के लोगों को दोषी ठहराया जाए, और मैं आपको बताऊँगा कि एक खास समय में जर्मनी के कई लोगों ने इस विकरालता का समर्थन किया था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आपका मतलब हिटलर और नाजीवाद के उदय से है।

लेकिन वह एक ऐसा देश था जो 1919 की ब्रुसेल्स संधि के परिणामों को भुगत रहा था, जो असहनीय था। जिस कारण से (1933 में) हिटलर को बहुमत प्राप्त हुआ, उनमें सबसे प्रमुख बात उसके द्वारा ब्रुसेल्स संधि की की गई आलोचना थी, आप इस बात पर अवश्य सहमत होंगे। इसी संधि ने एक पूरे राष्ट्र को बहुत कठित स्थिति में ढकेल दिया था। उसकी पराजय के बाद, अंतर-साम्राज्यवादी युद्ध के बाद एक नई देशभक्ति की भावना वाली दुनिया में इस संधि ने जर्मनों को एकबद्ध किया। उन्होंने वोट दिया। हाँ, क्योंकि हिटलर सत्ता में चुनावों में विजय प्राप्त करके आया था, और उसने चांसलर पद तक अपना उत्थान किया, और यह बात सही है कि 1923 में उसने म्युनिख में विद्रोह करने का प्रयास किया था। इस एक पागलपन भरी कार्यवाही के लिए वह कुछ समय तक जेल में भी रहा..... और उसने अपने देश का राष्ट्रवादी कार्यक्रम नस्लवाद के हास्यास्पद और आपराधिक सिद्धांतों के आधार पर तैयार किया, और उन्हें लागू करते हुए देश का नेतृत्व किया। मैं 1972 में आश्वित्ज़ गया था, और यह कल्पना करना भी मुश्किल था कि यहाँ पर कितनी क्रूरतापूर्ण आपराधिक कार्यवाहियों को अंजाम दिया गया था।

अपराधों का अपराध

हजारों वर्षों तक मानवजाति इस नस्लवादी संहार 'होलोकास्ट' को याद रखेगी। आश्वित्ज़ और अन्य उन्मूलन शिविरों को आतंक, घृणा और जुगुत्सा के साथ मानव जाति याद करेगी....

यद्यपि आश्वित्ज़ के आतंक की किसी चीज़ से तुलना नहीं की जा सकती। फिर भी आज लगभग उसी तरह से वैश्वीकरण पर्यावरण के विरुद्ध महा-अपराध करने के लिए बिल्कुल प्रतिबद्ध है। जबकि पर्यावरण के प्रति इस आपराधिक व्यवहार के कारण ही भविष्य की पीढ़ी को विपत्तिकारक नुकसान और मृत्युजनक भयावहता का सामना करना होगा। क्या आप पर्यावरण संरक्षण के प्रति संवेदनशील हैं?

तीस साल पहले इन समस्याओं के बारे में कोई नहीं बात करता था, जिनके बारे में हम आज बहुत अच्छी तरह से जानते हैं। एक समय 'क्लब ऑफ रोम' था-इसमें कई प्रतिष्ठित व्यक्ति एकबद्ध हुए और भविष्यवाणी की थी, और कई तरह की सांख्यिकी व ब्याज दरों के विश्लेषण के आधार पर विभिन्न विषयों पर बातचीत की थी। उन सभी व्यक्तियों की आलोचना की गई थी, कई लोगों ने तो उन लोगों को दिवास्वप्न देखने वाला भी कहा था, कुछ ने उन लोगों को क़यामत को नज़दीक से देखने वाले काल्पनिक लोक के वासी तक भी कहा था, और भी इसी तरह की कई बातें उन लोगों के विषय में कही गई थीं। वे पहले व्यक्ति थे। मेरा ख्याल है कि इस बात के तीस से ज्यादा साल हुए होंगे। शताब्दी के पिछले चतुर्थांस में पर्यावरण का मुद्दा ज्यादा से ज्यादा भयावह होता चला गया है। और वास्तविक रंगमंच और उस पर हो रहा नाटक हमारी नज़रअंदाजी से झूठ नहीं हो सकता। हम इसी (खतरे) के साथ लम्बे समय से रह रहे हैं।

क्या आपका ख़्याल है कि लोग नहीं जानते हैं या वे जानना नहीं चाहते हैं, क्योंकि उनको विज्ञान और तकनीक पर अंधविश्वास है?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं आपको बताऊँ, मैं मात्र एक व्यक्ति के रूप में नहीं सोचता हूँ। 1945 में द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति-के पच्चीस साल बाद, और उसके सही कारणों का प्रयोग करके और जानकर कि कैसे पढ़ें और लिखे-के बावजूद उनके अपने जीवन के प्राकृतिक स्तंभों के विनाश की ओर मानवीयता की अंधी, निर्दयी और अत्याधिक तीव्र गति के विषय में एक भी शब्द नहीं सुनने को मिलता है। कोई दूसरी पीढ़ी नहीं, बल्कि सैकड़ों वर्षों के बाद सामने आई आज की पीढ़ी इस तरह के कटु खतरों का सामना करेगी, या इस तरह की विशाल जिम्मेदारी को वहन करना होगा।

मैं फिर दोहराता हूँ कि मुश्किल से 30 वर्ष पहले मानव जाति इस त्रासदी के बारे में जरा सा भी चेतस नहीं थी (जो अब उसके सामने है) उसी समय लोगों के सामने सबसे बड़ा खतरा वृहदाकार परमाणवीय हथियारों द्वारा उत्पन्न विनाश से था, जो क्षणभर में अपनी विनाशकता फैलाने के लिए तैयार थे। आज भले ही पूर्वोक्त खतरे से हम पूरी तरह से नहीं मुक्त हो पाए हैं, लेकिन एक अन्य खतरे, भयावहतापूर्ण दांतेवादी खतरे के समक्ष मानवीयता झूल रही है। मैं निश्चिंत हूँ जब आप कॉलेज में होंगे, आपने कभी भी नहीं सुना होगा कि लोग ओजोन परत और मौसम बदलाव के बारे में बातें करते हैं। आपके स्नातक होने के कई वर्षों बाद लोगों ने इन समस्याओं पर चर्चा करनी शुरू की। इसी तरह की न जाने कितनी समस्याएँ हमारे सामने हैं।

आज हम जानते हैं कि तेल, जो कि एक प्राकृतिक आश्चर्य था और जिसके निर्माण में 300 मिलियन साल लगे, मानव जाति ने इसे प्रयोग करना शुरू किया और पाया कि यह मात्र 150 वर्षों के लिए ही पर्याप्त है.... यह तथ्य उतना ही गंभीर है, जैसे कि हम किसी गंभीर प्राकृतिक आपदा की कल्पना करते हैं, क्योंकि यदि हमें अचानक ईंधन से वंचित कर दिया जाए, दुनिया की हर कार रुक जाएगी। और कम से कम अभी तक इसका कोई विकल्प नहीं प्राप्त हुआ है-यद्यपि एक समय हम सोचते थे कि यह विकल्प नाभिकीय ऊर्जा होगी।

रोम क्लब के उन्हीं सदस्यों ने परमाणु शक्ति की आवश्यकता पर प्रश्नचिन्ह लगाए थे। इस समय न जाने कितने हजार नाभिकीय ऊर्जा संयंत्र विद्यमान हैं, और लोग पहले से ही इसके प्रदूषण (विकिरण आदि) के खतरे से आतंकित हैं, क्योंकि कई स्थानों पर बीस वर्षों बाद भी लगातार बहुत गंभीर विकिरण हो रहा है।

एक वक़्त क्यूबा नाभिकीय ऊर्जा को लेकर उत्साहित था, यहाँ तक उसने सिनेफ्यूगस में एक नाभिकीय संयंत्र का निर्माण भी शुरू करवाया था। मेरा ख़्याल है कि बाद में आपने इसे प्रतिबंधित कर दिया।

हाँ, इस कार्ययोजना को प्रतिबंधित कर दिया गया था। यह कोई खुला नाभिकीय संयंत्र नहीं था, इसमें चर्नोबिल की तरह की ग्रेफाइट प्रशीतक की तकनीक को नहीं प्रयुक्त किया गया था, यह एक बंद व जल प्रशीतक संयंत्र था, जिसका पूरी दुनिया में सबसे ज्यादा प्रयोग होता है, और अब तक उपलब्ध सबसे अधिक सुरक्षित तकनीक के द्वारा संचालित होता है। नाभिकीय ऊर्जा ने फ्रांस जैसे कुछ देशों में ऊर्जा की समस्या को हल कर दिया है, फ्रांस अपने पड़ोसियों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की भी भूमि पर इस तरह के संयंत्र लगाने के लिए उत्साहित है, जिससे अतिरिक्त ऊर्जा का उत्पादन किया जा सके, और वह इसे उन दूसरे यूरोपीय देशों को सस्ती दरों पर बेचेगा, जिन्होंने नाभिकीय संयंत्र नहीं लगाए हैं। लेकिन तेल की क़ीमतें बढ़नी शुरू हुई–जिसके विषय में किसी ने नही सोचा था। मैं तो कहूँगा क्योंकि तेल प्रशान्त महासागर में बहुतायत में उपलब्ध है–तब सत्तर के दशक में तेल की कीमतों में बढ़ोत्तरी एक सकारात्मक परिणाम था: इसने लोगों को मजबूर किया कि वे उस तकनीक का प्रयोग करें जिससे कारखानों में, उद्योगों आदि में कम ऊर्जा खर्च हो। लोगों ने ऊर्जा को बहुत प्रभावकारिता के साथ प्रयोग किया (जैसा किया) आटोमोबाइल्स, बसों, वायुयान आदि में। कुछ वर्षों पूर्व कहा गया कि यह तेल समाप्त प्राय: है। इसके चलते लोगों में ऊर्जा संरक्षण के लिए दबाव उत्पन्न हुआ, और फ्रांस व इस तरह के अन्य देशों ने नाभिकीय उद्योग को विकसित किया, यदि तेल की कीमतें न भी बढ़ें, तब भी नाभिकीय ऊर्जा से बहुत कम प्रदूषण होता है, और इससे तेल की क़ीमतें नियंत्रित रहेंगी।

फ्रांस नाभिकीय उद्योग विकसित करने में सक्षम था, लेकिन उदाहरणस्वरूप आज इरान नाभिकीय ईंधन का उत्पादन करना चाहता है और वाशिंगटन इस विषय में कुछ सुनना तक नहीं चाहता, इस तरह एक विश्वव्यापी संकट उत्पन्न हो गया है। इरान के मामले को लेकर जो स्थिति उत्पन्न हुई है, उसके विषय में आप क्या सोचते हैं?

जिस तरह किसी अन्य औद्योगिक देश को नाभिकीय ऊर्जा उत्पादित करने का अधिकार है, उसी तरह ईरान को भी यह अधिकार है, और ईरान अपने इस अधिकार को बचाना चाहता है। उसे किसी तरह से मजबूर नहीं किया जा सकता कि वह अपने उन कच्चे माल के भंडार को नष्ट कर दे, जिनसे केवल ऊर्जा ही नहीं, बल्कि उर्वरक, कपड़ा और अन्य अनगिनत उत्पादों का निर्माण होता है, और पूरी दुनिया में इनका प्रयोग होता है। यदि ईरान नाभिकीय ईंधन का उत्पादन करता है, तो साम्राज्य उस पर हमला करने की धमकी दे रहा है। नाभिकीय ईंधन नाभिकीय हथियार नहीं होता है, यह कोई परमाणु बम नहीं होता है। तात्कालिक भविष्य को ध्यान में रखते हुए किसी भी देश को ईंधन उत्पादित करने से रोकना बिल्कुल उसी तरह से है, जैसे किसी को तेल की खोज करने से रोकना। तेल तो वर्तमान का ईंधन है और यह जल्द ही समाप्त हो जाएगा। क्या दुनिया में किसी भी देश को ईंधन, कोयला, गैस, पेट्रोलियम की खोज करने से प्रतिबंधित किया गया है।

70 मिलियन से ज्यादा की जनसंख्या वाला देश ईरान औद्योगिक विकास के लिए प्रयास कर रहा है, और उसकी सोच बिल्कुल ठीक है। यदि उसके प्रयास को रोका जाता है, तो यह औद्योगिक विकास करने के लिए तृतीय विश्व के देशों को उनके अपने प्राकृतिक गैस, पेट्रोलियम के आरक्षित कोषों (रिजर्वो) का प्रयोग करके करोड़ों किलोवाट प्रति घण्टे की ऊर्जा उत्पादित करने की क्षमता को प्रतिबंधित करना भयावह, आतंकपूर्ण होगा। साम्राज्य इन देशों को इस क्षमता को अर्जित करने से रोकना चाहता है, और प्रत्यक्ष रूप से वह उसे बम के खतरे के रूप में प्रस्तुत कर रहा है। आज (दिसंबर, 2005) अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर (बमबारी कब होगी) दिन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और घण्टों को लेकर बहस हो रही है, और यह साम्राज्य ही होगा या साम्राज्य इसका प्रयोग करेगा-जैसे उसने इराक का प्रयोग किया-उसके इजराइली सेटेलाइट द्वारा नाभिकीय ईंधन उत्पादित करने के लिए तकनीक विकसित करने के कार्य में लगे शोध संस्थानों पर पूर्वसंरक्षण हेतु बमबारी हो सकती है, और यदि उन्होंने ईरान पर बमबारी की तो हम भविष्य में देखेंगे कि क्या किया जा सकता है।

क्यूबाईयों पर आरोप लगाया गया है कि उन्होंने ईरान को तकनीक के साथ कई अन्य सहायताएँ दी हैं।

हाँ, हम पर इस किस्म के आरोप लगाए गए हैं-वैसे तो हमें हर किसी चीज़ के लिए आरोपित किया ही किया जाता है। हम पर आरोप लगाया गया है कि हमने ईरान के साथ गठबंधन किया है, और उद्देश्यपूर्ण ढंग से तकनीक का स्थानांतरण भी किया है। जी हाँ, हमने ईरान के साथ सहयोग किया है, लेकिन परमाणु ऊर्जा के मामले में नहीं, बल्कि हम ईरान के सहयोग के साथ कैंसर के ईलाज में प्रयुक्त होने वाली दवाओं के एक कारखाने का निर्माण कर रहे हैं! हम यह कार्य कर रहे हैं! जिस तरह से हमने परमाणु अप्रसार संधि (NPT) पर हस्ताक्षर किए हैं, उसी तरह से ईरान भी परमाणु अप्रसार संधि (NPT) पर हस्ताक्षर कर चुका है। हम परमाणु हथियार के निर्माण के विचार को कभी भी नहीं स्वीकारेंगे, क्योंकि हमें इसकी आवश्यकता ही नहीं है। यदि वे तकनीकगत रूप से संभाव्य भी हो, तो उनके निर्माण में कितना खर्च होगा? और फिर परमाणु हथियार विकसित करने से हासिल क्या होगा, जबकि हमारे दुश्मनों के पास तो वे हजारों की संख्या में हैं? इस तरह तो एक बार फिर हथियारों की अंधी दौड़ शुरू हो जाएगी। किसी को भी नाभिकीय हथियार विकसित करने/निर्माण करने का अधिकार नहीं है, और न ही होना चाहिए। साम्राज्यवाद से कम वरीयतम् अधिकार माँगना उसकी प्रभुता को (पूरे विश्व पर) आरोपित करना है, और इस तरह की स्थिति को स्वीकार करके एक तरह से तृतीय विश्व को उसके प्राकृतिक संसाधनों और कच्चे माल से वंचित ही करना है। हमने इसी बात को हजारों बार कहा है। और हम अंत तक दुनिया के हर मंच, हर अदालत में नाभिकीय ईंधन उत्पादित करने के हर देश के अधिकार की रक्षा करेंगे। हमें इस बात की जरा सी भी फिक्र नहीं कि परिणाम क्या होगा। हमें इन सारी मूर्खताओं/दुरुपयोग पर एक अंकुश लगाने की जरूरत है, जिन्हें साम्राज्य पूरी दुनिया में बल और आतंक का प्रयोग करके प्रसारित कर रहा है। अधिक से अधिक राष्ट्रों के एक साथ होने से भय कम होगा, अधिक से अधिक राष्ट्र विरोधी होंगे, और साम्राज्य किसी तरह से अपनी घृणित व तिरस्करणीय व्यवस्था को विद्यमान रख पाने में सक्षम नहीं रहेगा, जिसे वह आज पूरी दुनिया पर आरोपित किए हुए है। एक दिन सल्वाडोर अलेंदे 'अभी या बाद में' विषय पर बातचीत कर रहे थे- 'अच्छी बात है, मैं सोचता हूँ कि अभी या बाद में साम्राज्य विश्व का मालिक या देवता नहीं बना रहेगा।'

इस संकट का पहला परिणाम होगा कि पेट्रोलियम उत्पादन में कमी आ जाएगी, और इसके साथ न जाने कितने परिवर्तन होंगे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हाँ, क्योंकि पेट्रोलियम के 80 प्रतिशत स्रोत तृतीय विश्व के पास हैं, जबकि इनका प्रयोग दूसरे कर रहे हैं- इनमें संयुक्त राज्य अमेरिका भी है, जिसके पास स्वयं तेल गैस के विशाल भंडार हैं। अब यह कुछ ही वर्षों के लिए ही पर्याप्त हैं, इसी कारण वे इस ग्रह पर कहीं भी उपस्थित तेल पर निश्चयात्मक अधिकार जमाने की कोशिश कर रहे हैं, वह यह किसी भी तरह व किसी भी रूप में करना चाहते हैं। जैसा कि हम पहले ही विश्लेषित कर चुके हैं कि ऊर्जा का यह स्रोत खत्म हो रहा है, और अगले 25 वर्षों में, ज्यादा से ज्यादा अगले 30 वर्षों में बिजली के विशालतम उत्पादन में यह बिल्कुल समाप्त हो जाएगा। इस स्थिति में सौर (ऊर्जा), वायु या गोबर ऊर्जा के बावजूद भी ऊर्जा का जो आधारभूत मूल स्रोत होगा तो वह है, नाभिकीय ऊर्जा। क्योंकि वह दिन अभी बहुत दूर है जब तकनीकी प्रक्रियाओं के माध्यम से हाइड्रोजन से ऊर्जा उत्पन्न कर पाए, यह तकनीक अभी केवल शुरुआती दौर में है, लेकिन ऊर्जा के बेहतरीन स्रोत में तब्दील हो सकती है। मानवजाति ऊर्जा के बिना जीवित नहीं रह सकता, कम से कम मानवजाति के विकास के एक स्तर के बाद तो ऐसा कहा ही जा सकता है। यह एक गंभीर विकट समस्या है, और अब यह हमारे सामने आ खड़ी हुई है, और यह पूरी दुनिया के सामने उपस्थित है।

अनगिनत पर्यावरणीय समस्याएं सामने आ खड़ी हुई, जिन्हें हम अभी केवल चिन्हित भर कर पाना शुरू कर पाए हैं, एक के बाद एक महाआपदाएं सामने आ रही हैं, और यह प्राकृतिक विनाश नाभिकीय ऊर्जा से भी ज्यादा घातक है, जैसे कैंसर।

अथवा एड्स

पच्चीस वर्ष पूर्व एड्स नामक बीमारी का कोई अस्तित्व नहीं था, और आज पूरी दुनिया में कम से कम 40 मिलियन लोग एड्स वायरस का शिकार हैं या उससे संक्रमित हैं। और (विभिन्न देशों में) बेहतरीन प्रयोगशालाएँ इस बीमारी के रक्षण या वैक्सीन के लिए नहीं, बल्कि मात्र इलाज खोजने के लिए कार्य कर रही हैं, क्योंकि एक इलाज-यह सामान्य जानकारी-का खर्च 10,000 डॉलर प्रतिवर्ष का है, और बीमार व्यक्ति को इसे नियमित रूप से लेना ही होता है, और यह (एक बार वैक्सीन लगाने से) ज्यादा मुनाफ़े वाली बात है। अब भी गंभीर तीव्र श्वसन सिंड्रोम (Severe Acute Respiratory Syndrome-SARS) विद्यमान है, जिसकी कोई अपेक्षा नहीं करता था, और नाइल बुखार संयुक्त राज्य अमरीका के उत्तर-पूर्वी हिस्से में से विश्व से किसी भी हिस्से में संक्रमित होगा, और डेंगू बुखार, जिसके चार विभिन्न प्रकार के वायरस होते हैं, एक दूसरे के संयोग से बहुत जटिल बीमारी रक्तस्रावी डेंगू उत्पन्न हो जाती है। बर्ड फ्लू एक आतंकपूर्ण ढंग से अकल्पनीय महामारी के रूप में सामने आया है। कुछ समय पहले तक इन बीमारियों के बारे में सुना तक नहीं गया था, आज हमारे पास इस बारे में एक स्पष्ट समझदारी है कि इन सभी चीज़ों का अर्थव्यवस्था, उद्योग, जनसंख्या, विकास, पर्यावरण आदि से एक प्रत्यक्ष और गंभीर रिश्ता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सामान्य रूप से कहा जाता है कि भूतपूर्व समाजवादी समूह के देशों में पर्यावरण के मुद्दे पर ध्यान ही नहीं दिया गया। हमने इस विषय पर पहले भी बात की है। क्या क्यूबा में इस मुद्दे पर ध्यान दिया गया है ?

पर्यावरण के विकास के साथ हम अपना ध्यान इस विषय पर केन्द्रित् कर रहे हैं-हमने क्यूबा में मौसम में आने वाले बदलावों का आकलन करना शुरू किया है, समुद्र तल में आए परिवर्तन को भी हमने यहां क्यूबा में जाँचना शुरू कर दिया है। और यह सच्चाई है कि हमारे देश में पर्यावरण को लेकर चेतना प्रसारित हो रही है। लोग शिक्षित हो रहे हैं, हमारे टेलीविजन पर भी इस विषय पर लगातार कार्यक्रम प्रसारित होते हैं, हमारे सभी बच्चे इस विषय की अनिवार्य रूप से पढ़ाई भी करते हैं, और आज वे पर्यावरण के आधारभूत संरक्षक हैं।

जैसा कि मैंने पहले कहा कि मात्र 100 ही वर्षों में मानवजाति की संख्या 1.5 बिलियन से 6.5 बिलियन हो गई है। मनुष्य जाति की यह पूरी संख्या पूर्णरूप से उन ऊर्जा स्रोतों पर निर्भर होगी जिनका विकास व जिनकी खोज करना बाकी है। ग़रीबी की दर लगातार बढ़ रही है, पूरे के पूरे राष्ट्रों को नई व पुरानी बीमारियों का खतरा है, और वह उससे आतंकित है, पृथ्वी का क्षरण, मौसम तब्दीली हो रही है, इसकी उर्वरा शक्ति नष्ट हो रही है, हवा और हमारे पीने का पानी और समुद्र दिन प्रतिदिन अधिक से अधिक संदूषित होते जा रहे हैं।

इन मसलों पर कार्यवाही करने की संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकार को नष्ट कर दिया गया है, यह संस्थान अवरुद्धता का शिकार हो रहा है, और नष्ट हो रहा है। विकास के लिए सहायता में लगातार कमी आ रही है। तृतीय विश्व को 2.5 ट्रिलियन डॉलर का ऋण चुकाना है, जो कि वर्तमान स्थिति में किसी तरह से भी चुका पाना संभव नहीं है। और हथियारों पर होने वाले मौजूदा खर्च के अलावा प्रतिवर्ष 1 ट्रिलियन डॉलर परिष्कृत और प्राणघातक हथियारों पर खर्च हो रहा है। यह सब क्यों और किसके लिए ?

बिल्कुल इतनी ही धनराशि व्यवसायिक विज्ञापनों पर खर्च हो रही है, जो करोड़ों-करोड़ लोगों में उपभोग की लिप्सा जगाते हैं, जिसे परितुष्ट करना असंभाव्य है। यह सब क्यों और किसलिए ?

यह पहली बार है कि हमारी प्रजाति समाप्ति के वास्तविक खतरे के समक्ष खड़ी है, स्व-विनाश, स्व-उन्मूलन, क्योंकि इस तथाकथित 'सभ्यता' के जो लोग शिकार हैं, मानव के अपने ही पागलपन के ही कारण है।

15 वर्ष या इसी के लगभग कुछ वर्षों पूर्व 1992 में जिस समय कोई राजनीतिज्ञ इस विषय पर बातचीत नहीं करता था, संयुक्त राष्ट संघ (UN) द्वारा आयोजित रियो डी जेनरियों में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन (Earth Environment Summit) में मैंने इन खतरों के विषय में चेतावनी दी थी, उस वक़्त कई लोगों का विचार था कि मैं बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बातें कर रहा हूँ, उन्होंने मुझे दिवास्वप्नदर्शी तक कहा था। उस समय मैंने कहा था कि विशेष रूप

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से एक प्रजाति विनाश व उन्मूलन की कगार पर है: मनुष्य। आज समय फिर मेरी बात को सच प्रमाणित कर रहा है, दुर्भाग्यपूर्ण ढंग से हर अगले दिन यह बात और अधिक स्पष्ट होती जाती है।

क्या आप उदारवादी वैश्वीकरण और त्वरित गति से हो रहे पर्यावरण के विनाश के बीच क्या किसी संबंध को आप देख पाते हैं ?

मेरा विचार है कि पर्यावरण संरक्षण के सभी प्रयासों और विश्व पर आरोपित आर्थिक व्यवस्था, दोनों में परस्पर भीषण अंतर्विरोध है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा आरोपित व शर्त के रूप में प्रत्यारोपित निष्ठुर व बेरहम नव उदारवादी वैश्वीकरण ने अरबों लोगों के स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा की बलि ले ली है, और क्रूरतापूर्वक तरीके से सशक्त देशों व तृतीय विश्व के देशों की सबल व निर्बल मुद्राओं के बीच मुक्त रूप से मुद्राओं की खरीद-बिक्री में एक बहुत बड़ा धन तृतीय विश्व से चला जाता है।

सार रूप में कहें तो मैं सोचता हूँ कि विश्व व्यापार मंच की नीतियों के साथ पर्यावरण संरक्षण का कार्य अधूरा व वंचित ही रहेगा, क्योंकि विश्व व्यापार मंच उद्देश्यपूर्ण ढंग से इस तरह से निर्मित है, जो बिना किसी प्रतिबंध के धनी देशों को विश्व में कहीं भी अपनी व्यापारिक वस्तुओं को तीव्रता से भरने की अनुमति देता है, जिससे गरीब देशों के औद्योगिक व कृषि क्षेत्र का विकास नष्ट हो जाता है और इनके पास भविष्य में कच्चे माल व सस्ते श्रम का निर्यात करने के सिवा और कोई विकल्प शेष नहीं रहता है। नाफ्टा (की नीतियों) के साथ काम करने का मतलब शार्क और सार्डिन मछली के बीच मुक्त व्यापार समझौता होना है। यह मुक्त व्यापार समझौते: कुख्यात विदेशी ऋण इस प्रकार से नियोजित किए गए हैं कि वे कभी-कभी राष्ट्रों के राष्ट्रीय बजट का 50 फीसदी से ज्यादा हिस्सा हड़प जाते हैं, और ये ऋण वास्तविकता में इतने और इस तरह से हैं कि जिन्हें चुकाना किसी तरह से संभव ही नहीं, प्रतिभा पलायन के साथ इस गृह पर उपस्थित सारे प्राकृतिक व ऊर्जा स्रोतों का अनुचित व ग़ैर संतुलित प्रयोग के लिए प्रत्यक्ष या अ-प्रत्यक्ष रूप से एकाधिकार कर रखा है।

अन्याय की यह सूची यहीं समाप्त नहीं होती है। स्थितियाँ और अधिक गंभीर और बुरी हो रही हैं, लूटमार और ज्यादा, और ज्यादा, और ज्यादा होती जा रही है.......

क्यूबा एक 'उपभोक्ता समाज' नहीं है, तथ्यात्मक रूप से कहा जाए तो आडम्बरहीन है, और यहाँ भी कुछ लोग इस बात को लेकर रो-पीट रहे हैं। उन लोगों के बारे में आप क्या कहेंगे, जो शिकायत करते हैं कि पूँजीवादी उपभोक्ता समाज में उपलब्ध उत्पाद (वस्तुएँ) उन्हें नहीं उपलब्ध हैं ?

हाँ, मैं उन लोगों से कह चुका हूँ कि उपभोक्ता समाज आज के नव उदारवादी वैश्वीकरण के दौर में विकसित हो चुके पूंजीवाद द्वारा खोजी गई सर्वाधिक भयभीत करने वाला, त्रासदीपूर्ण और एक आतंकपूर्ण आविष्कार (खोज) है। यह अनर्थकारी है, बिल्कुल आतंकपूर्ण भयभीत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करने वाली डरावनी वस्तु है, क्योंकि मैं कल्पना करता हूँ कि यदि 1.3 बिलियन चीनी लोगों के पास प्रति व्यक्ति उतनी ही कारें हों, जितनी संयुक्त राज्य अमरीका के पास हैं......मैं भारत की कल्पना भी नहीं कर सकता हूँ, जहाँ 1 बिलियन आबादी एक उपभोक्तावादी समाज में रह रही है, मैं नहीं कल्पना कर सकता हूँ कि उप सहारा अफ्रीका में रहने वाली 600 मिलियन की आबादी, जिसके पास बिजली नहीं है, और जहाँ कई स्थानों पर 80 प्रतिशत जनसंख्या लिखना-पढ़ना तक नहीं जानती है, एक उपभोक्तवादी समाज में रह रही है।

क्रूर (राक्षसी) व अव्यवस्थित आर्थिक व्यवस्था में विद्यमान उपभोक्ता समाज ने साबित व संभाव्य कर दिया है कि वह अगले पचास या साठ वर्षों में वह सारे जीवाश्म ईंधन (पेट्रोलियम, कोयला, गैस आदि) को समाप्त कर देगा। .... इस विषय में कोई स्पष्ट व रैखिक सांख्यिकी नहीं उलपब्ध है कि पचास साल या इसके बाद कितने बिलियन मोटर गाड़ियाँ धनी देशों के शहरों और राजमार्गों पर होंगी, और विश्व की क्या स्थिति होगी। (उपभोक्ता समाज) जीवन और उपभोग के एक पूर्णतया तिरस्करणीय व चिढ़ पैदा करने वाले तरीके की अभिव्यक्ति है, और यह तेल युग की समाप्ति के बाद इस ग्रह पर संभाव्य 10 बिलियन आबादी के जीवन प्रारूप/शैली के लिए किसी तरह से संभाव्य नहीं होगा।

आर्थिक उच्चावच्च क्रम व व्यवस्था और उपभोग के ये प्रारूप दुनिया के सीमित व अभरणीय जरूरी स्रोतों और प्राकृतिक जीवन के नियमों के बीच में असंगतता है। और मानवता के द्वारा सृजित नैतिकता के सर्वाधिक प्रमाणिक सिद्धांतों, संस्कृति और नैतिक मूल्यों के उसका संघर्ष होना अनिवार्य है।

नागरिकों को भौतिक उत्पाद की तो आवश्यकता होती ही है, आप क्या सोचते हैं ?

हाँ, बेशक, मैं भौतिक आवश्यकताओं को जरा सा भी सीमित नहीं करता हूँ। आपको इसे हमेशा पहली प्राथमिकता देने की आवश्यकता है, क्योंकि अध्ययन के क्रमानुक्रम में एक उच्च कोटि के जीवन की प्राप्ति के लिए कुछ निश्चित आवश्यकताओं को संतुष्ट होना/पूरा होना अनिवार्य है-और ये प्रत्यक्ष भौतिक वस्तुएँ होती हैं, जो पूर्वोक्त आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। लेकिन ज्ञान में, संस्कृति में, गुणवत्ता का जीवन एक झूठ है। वास्तविकता में मूल्य वास्तविक गुणवत्ता के जीवन का निर्माण करते हैं, सर्वोच्च गुणवत्ता के जीवन का निर्माण करते हैं, यहाँ तक कि ये भोजन, आवास, वस्त्र से ज्यादा प्राथमिकता रखते हैं।

निश्चित रूप से आप अविश्वसनीय साहस के धनी स्वप्नदर्शी हैं।

स्वप्नदर्शी जैसी कोई चीज़ नहीं होती है, आप स्वयं भी एक स्वप्नदर्शी हो सकते हैं। जिसने यथार्थ देखने के प्रति वरीयता प्राप्त की है, वह कभी भी स्वप्न देखने की क्षमता नहीं रखता (बल्कि भविष्य की वास्तविकता को देखता है)।

क्या हमें मानव जाति से निराश होना चाहिए ? या हम एक छोटी सी आशा रख सकते हैं कि रसातल में जाने की अंधी दौड़ को रोकने की मानव जाति में क्षमता है ?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज हम जानते हैं कि किस तरह से चीज़ें अव्यवस्थित हैं। मेरे दृष्टिकोण से इस समय एक वैश्विक चेतना प्रसारित करने से ज्यादा जरूरी कोई कार्य नहीं है, समस्याओं को हर उम्र के अरबों स्त्री, पुरुषों की बहुसंख्यक आम जनता तक ले जाना होगा, बच्चों के पास भी, जो इस ग्रह के निवासी हैं। वस्तुनिष्ठ परिस्थितियाँ अत्याधिक आबादी के लोगों के लिए चेतना निर्माण के लिए विषयगत परिस्थितियों का निर्माण कर रही हैं। सभी चीज़ें आपस में संबद्ध हैं: निरक्षरता, बेरोजगारी, गरीबी, भूख, बीमारी और महामारी, पीने के पानी की कमी, आवास, बिजली, मरुस्थलीकरण, मौसम परिवर्तन, जंगलों की समाप्ति, बाढ़ हैरीकेन (समुद्री तूफान), सूखा, सिंचाई, जैव विविधता का क्षरण, प्लेग और अन्य त्रासदियाँ, जिनसे आप लोग सचेत हैं।

1992 में हुए रियो सम्मेलन से हमें क्या परिणाम प्राप्त हुए ? लगभग कुछ नहीं। बल्कि विपरीत ही परिणाम प्राप्त हुए। जबकि क्योटो प्रोटोकाल की घमण्डपूर्ण ढंग से अवहेलना की गई, उसे एक प्रकार से बहिष्कृत कर दिया गया। कार्बन डाई आक्साइड के उत्सर्जन में कमी की बात तो बहुत दूर की है, अधिकतर आबादी वाले देशों में तो वह 9 प्रतिशत और बढ़ गया है, संयुक्त राज्य अमरीका में कार्बन डाई आक्साइड का उत्सर्जन 18 प्रतिशत तक बढ़ गया है। 1992 की तुलना में आज समुद्र और नदियाँ ज्यादा प्रदूषित हैं, 15 मिलियन हेक्टेयर जंगल का प्रतिवर्ष बरबाद हो जाता है/विनाश हो जाता है, यह क्षेत्र स्विटजरलैंड के क्षेत्रफल के चार गुने के बराबर है।

मानवीय समाज ने पर्वताकार भूलें/गलतियाँ की हैं, और लगातार उन्हें कर रहा है। लेकिन मैं विश्वासपूर्ण रूप से सहमत हूँ कि मानवजाति बेहतर व अतुलनीय विचार से सहमत होने में सक्षम हैं, सर्वोच्च उद्दात्तपूर्ण भावनाओं को उत्पन्न करने में सक्षम है, और हम इस जाति को पाएंगे कि यह उस शक्तिशाली प्रवृत्ति से बाहर आ आएगी, जो प्रकृति ने उन पर थोप दी है। हम जो कुछ सोचते हैं, जो महसूस करते हैं, उसके लिए अपना जीवन देने में भी सक्षम हैं। और यह इतिहास में कई, कई बार देखने को मिल चुका है।

जिस तरह से आपने बताया, क्या उस लिहाज से क्यूबा ने पर्यावरण संरक्षण में भागीदारी के लिए कोई कदम उठाए हैं ?

मैं आपको बताऊ, जब समाजवादी समूह का पतन हुआ और हमारे सामने असाधारण कठिन परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गईं–हमारा देश चालीस सालों से नाकेबंदी का शिकार है। इसके बावजूद हमारा देश जीवनक्षम था, उदाहरणस्वरूप शहरों में बाकी बची ज़मीन पर प्रतिवर्ष 3 मिलियन टन सब्जियाँ उत्पादित करने में सक्षम था, और लगातार उत्पादित कर भी रहा है। छिड़काव पद्धति (सिंचाई के लिए) का प्रयोग और अन्य कृषि अपशिष्टों का प्रयोग करके, कृषि में उत्पादन के लिए पानी का अल्पतम प्रयोग कर रहे हैं, और लगभग 300,000 नागरिकों को अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध कराया है, और यह सब हमने एक ग्राम भी कार्बन डाई आक्साइड उत्सर्जित किए बिना किया है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्यूबा तम्बाकू का उत्पादन करता है, और आज कई उपभोक्ता संगठन कह चुके हैं कि तम्बाकू के कारण कैंसर होता है। आज आप स्वयं सिगार पीने के लिए प्रसिद्ध हैं, हाँलाकि अभी आपने धूम्रपान बंद कर दिया है। आप इस समस्या को कैसे देखते हैं ?

हर व्यक्ति जानता है कि ऐतिहासिक रूप से हम पिछले 500 वर्षों से तम्बाकू का उत्पादन करते आ रहे हैं, इस द्वीप के मूल निवासी इसे यहाँ उत्पादित और प्रयोग करते थे। और जब कोलम्बस यहाँ आया, उसने हमारी व हमारे तम्बाकू की 'खोज' की। आज भी हमने इसका उत्पादन नहीं बढ़ाया है। नाकेबंदी का शिकार होने के बावजूद भी हम इसका उत्पादन लगातार कर रहे हैं। यदि हम ऐसा कर सके हैं तो निश्चय ही यह बहुत आश्चर्यजनक बात है। जब हम अपने किसी मित्र को सिगार का डिब्बा देते हैं, हम कहते हैं कि यदि 'आप धूम्रपान करते हैं तो आप इसका इस्तेमाल कर सकते हैं, यदि आपका कोई मित्र धूम्रपान करता है तो आप यह उसे दे सकते हैं, लेकिन इस सबसे ज्यादा अच्छा कार्य आप यह कर सकते हैं कि आप इसे अपने दुश्मन को दे दें'।

क्यूबा तम्बाकू उत्पादक व निर्यातक है, लेकिन अब यह धूम्रपान विरोधी अभियान संचालित कर रहा है। क्यूबा कुछ बेहतरीन गुणवत्ता की रम का भी उत्पादक है, और मैं इसे इस्तेमाल करने की कभी भी सलाह नहीं दे सकता। लेकिन यदि कोई इसका प्रयोग करता है, तो उसे इसे संयमपूर्वक इस्तेमाल करना चाहिए। गर्भवती महिलाओं द्वारा इसकी बहुत माँग है, लेकिन उन्हें मेरी सलाह है कि उन्हें इसे नहीं इस्तेमाल करना चाहिए- वे शराब व धूम्रपान, दोनों से ही बहुत नुकसान होता है।

क्यूबा में जिसे आप 'विचारों का युद्ध/संघर्ष' कहते हैं, उस पर आपने बहुत कुछ दाँव पर लगा रखा है। यह 'विचारों के युद्ध/संघर्ष' की परिभाषा क्या है ?

हम लोग जो कुछ कर रहे हैं वह 'विचारों का युद्ध/संघर्ष' ही है। अब कई नई बातें सामने आई हैं, बिना किसी विशेषाधिकार के इन सारी बातों को मैं असाधारण कहूँगा। हमने बहुत सारी बातें सीखी हैं, लेकिन अब जो कुछ हमारे सामने है, वह पराकाष्ठा है।

इस मामले में आप स्वयं भी सहायता कर सकते हैं, क्योंकि सांस्कृतिक आक्रमण विषय पर आपकी पुस्तक और आधारभूत संचार मीडिया पर बहुराष्ट्रीय के संदर्भ में जो आँकड़े आपने दिए हैं, हमने उनका अध्ययन किया है, इन पर चर्चाएँ की हैं, और इस सारी सामग्री को हम एक निबंध संग्रह में ला रहे हैं। विचारों के युद्ध/संघर्ष से पहले हमारा पहला युद्ध यह था कि किस तरह से अपने देश की संस्कृति की रक्षा की जाए। बौद्धिक लोग उस एक वाक्य को याद कर पाएंगे जिसे मैंने एक विशेष दौर में कहा था, जब सारी चीज़ों के विषय में संशय था: 'हमें अपनी संस्कृति को जरूर बचाना चाहिए।'

हमने कुछ महीनों पहले यू.एन.इ.ए.सी. (Union de Escritores Artistas de Cuba -क्यूबाई लेखकों कलाकारों के संघ) एक सम्मेलन आयोजित किया और यह सम्मेलन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu
कुछ दिनों तक चला, और इस दौरान हमने 'सांस्कृतिक आक्रमण' के विषय में चर्चा की और हमने इस चर्चा में उन आंकड़ों का प्रयोग किया, जो आपकी एक अन्य पुस्तक में प्रकाशित हैं। इस पुस्तक को बाद में यहाँ भी प्रकाशित किया गया। लेकिन उसी वक़्त पत्रकारों ने भी अपनी बैठक की, बाद में लगभग हर छमाही इन बहसों का पुनर्रीक्षण किया गया। हमने चेतना प्राप्त करनी शुरू की है।

आप स्वयं नव उदारवादी वैश्वीकरण के साथ संबद्ध न जाने कितनी समस्याओं को प्रकाश में लाए हैं। कितने समय पहले विश्व के बौद्धिक, शोधार्थी और अर्थशास्त्रियों ने पहली बार इन समस्याओं के बारे में बातचीत करनी शुरू की ? मेरा विचार है कि यह इस कारण हो रहा है, क्योंकि हम आशावादी हैं कि यह दुनिया बचाई जा सकेगी। बावजूद इसके कि हमने गलतियाँ की हैं, बावजूद इसके कि एक भयावह, एकपक्षीय शक्ति का जन्म हो चुका है, फिर भी यह दुनिया बचाई जा सकेगी। क्योंकि मेरा विश्वास है कि बेहतर/श्रेष्ठ विचार भी शक्ति से ज्यादा प्रभावी होते हैं, और किसी भी शक्ति के मुकाबले श्रेष्ठ विचार ही ज्यादा वरीयता प्राप्त करेंगे।

यह विचार ही हैं, जिन्होंने विश्व को ज्ञान सम्पन्न बनाया है, और जब मैं विचारों के विषय में बातचीत करता हूँ, उस समय विचारों से मेरा तात्पर्य न्यायकारी व निष्पक्ष विचारों से होता है, जो विश्व में शांति ला सकते हैं, जो दुनिया के समक्ष उपस्थित युद्ध के खतरों का हल दे सकते हैं, जो विश्व में हिंसा समाप्त कर सकते हैं। यही कारण है कि मैं हमेशा 'विचारों के युद्ध/संघर्ष' की बात करता हूँ।

प्रत्येक नागरिक के ज्ञान, शिक्षा व संस्कृति के स्तर को उच्च करने के लिए क्यूबा ने (जिसे) 'सामान्य शिक्षा' (कह सकते हैं) पर विश्वास किया है। ज्ञान का सामाजीकरण। बहुसंख्यक अच्छाई के लिए ज्ञान। क्या मैं सही हूँ ?

इन चीज़ों को खोजने में बहुत वक़्त लगा: कई लोगों का विचार था कि इस विषय में धन निर्णायक भूमिका रखता है। ग़लत। ज्ञान का स्तर, सामाजिक वर्गों की शिक्षा निर्णायक कारक हैं। दसियों हजार लोग बुर्जुआ वर्ग से संबंध रखते हैं, अथवा इससे प्रभावित हुए, ज्ञान व शिक्षा सम्पन्न लोगों ने मियामी (संयुक्त राज्य अमरीका) जाने के लिए क्यूबा छोड़ दिया। क्रांति के बाद यहाँ समाज के कम वरीयता प्राप्त वर्गों के ८00,000 लोग स्नातक हुए, वे पेशेवर हैं, बौद्धिक हैं।

और हमने क्या खोजा ? हमने खोजा है कि अधिक ज्ञान व संस्कृति सम्पन्न परिवारों के लोग अच्छे स्कूलों में जाते हैं, क्योंकि आप भी उन स्कूलों में अपने अकादमिक रिकार्ड के बदौलत प्रवेश पा सकते हैं, और वे अच्छी स्थिति व अच्छे रोजगार प्राप्त कर लेते हैं। इसी वर्ग से नेता, प्रबंधक और सभी प्रमुख राजनीतिक अधिकारी भी आते हैं। समाज के ये हिस्से इस तरह के अधिकार पदों पर हमेशा कायम रहते हैं। जबकि जिन परिवारों में बहुत शिक्षा की सुविधा नहीं है, वे अपनी विद्यमान स्थिति में ही हमेशा रह जाते हैं। गरीब से गरीब बच्चों को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पूंजीवाद (व्यवस्था) में अत्याधिक विभेद के विरुद्ध विभेद का शिकार होना पड़ता है।

मैं बहुत शक्तिपूर्वक स्पष्ट करना चाहता हूँ कि मैं इन वर्ग विभेदों के बारे में किसी सख्त, रूढ़िवादी आर्थिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए बात नहीं कर रहा हूँ। मैं गरीबी और हाशियाकरण के साथ संबद्ध शिक्षा के स्तर की विभिन्नताओं के विषय में बात कर रहा हूँ। एक नवीन समाज का निर्माण जिस तरह से प्रतीत होता है, उससे भी कठिन कार्य है, क्योंकि इस मार्ग में ढेरों बाधाएँ विद्यमान हैं।

हमारे अपने समाजवादी समाज में कई वर्षों बाद यह हो पाया है। अब जब यहाँ कोई निरक्षर नहीं बचा, जब यहाँ हर व्यक्ति कम से कम नवीं श्रेणी तक शिक्षा अवश्य ही पाता है। यह इस तरह हुआ। इसके बाद हम कहेंगे यहाँ भी अधिक वरीयता प्राप्त वर्ग अपनी स्थिति विद्यमान रखना चाहते थे, और दूसरा हिस्सा, वंचित वर्ग, जो तीव्र हाशियाकरण का शिकार था, वह भी स्वयं को किसी तरह से कायम रखना चाहता था, यानि ज़िन्दा रखना चाहता था।

1959 के बाद हमने शिक्षा व्यवस्था के सारे तंत्र को तब्दील कर दिया। अब यहाँ कोई निरक्षर नहीं है, यहाँ कोई बच्चा ऐसा नहीं है, जो स्कूल नहीं जाता हो। लेकिन स्कूली व्यवस्था में और विश्वविद्यालय में (आवेदनकर्ताओं का) प्रवेश अकादमिक रिकार्ड और ली जाने वाली परीक्षाओं के आधार पर होता है, और इसमें सामाजिक हिस्सों की स्थितियों में बहुत अंतर आया है। पहले समाज के एक हिस्से को दूसरे के ऊपर वरीयता प्राप्त थी, दूसरा हिस्सा जो श्वेत, अश्वेत और ग़ैरवरीय थे, पूँजीवादी दौर में ग़रीब सामाजिक हिस्सों के सबसे ग़रीब व्यक्ति थे, उनकी स्थिति में परिवर्तन आया है। हमारी क्रांति के बाद अभिभावकों की शिक्षा पर और बाद में बच्चों की शिक्षा के स्तर पर विस्मयकारी प्रभाव सामने आया। समाज के निम्न आर्थिक स्तर वाले तबकों के अभिभावकों के बच्चे या जो बहुत ज्यादा ज्ञान (शिक्षा) नहीं प्राप्त था, या अच्छे स्कूलों में प्रवेश पाने के लिए श्रेणी नहीं थी, उनके स्तरों में भी भीमकाय परिवर्तन आया है। दशक दर दशक इस प्रवृत्ति में लगातार अंतर आया है, जैसा मैंने आपको पहले भी बताया यदि आप चीज़ों को आधे रास्ते पर छोड़ देंगे, आप कभी भी आशा नहीं कर सकते कि वे लोग कभी कारखानों, फर्मों के प्रबंधक, या चिकित्सक बनेंगे या कोई महत्वपूर्ण पद प्राप्त कर पाएँगे। यह निश्चित बात है कि आप विश्वविद्यालयी शिक्षा के बिना कुछ भी व्यवस्थित नहीं कर सकेंगे। यदि आप इस प्रक्रिया को अधूरा छोड़ देंगे, तो ग़ैरवरीय वर्गों के लिए आप क्या आशा करेंगे, जेल?

और आपने सामाजिक विभेद को परिवर्तित करने का प्रस्ताव किस तरह प्रस्तावित किया?

मुझे थोड़ा संशोधन करने दीजिए, हम अब एक शैक्षणिक क्रांति लाने के लिए प्रयासरत हैं-जो कि (क्रांति के) पहले कदम के साथ शुरू हुई प्रक्रिया के साथ शुरू करना संभव नहीं था। हम सारी चीज़ें तब्दील कर रहे हैं। और इसका यह मतलब कतई नहीं है कि जिन लोगों को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अच्छे स्कूल में जाने के अवसर मिल रहे हैं, उनके स्थान पर दूसरों को प्रस्थापित कर दिया जाए। युवा लोग स्वयं से ही क्रांतिकारी हैं। नहीं, हम पूरे देश में उच्च शिक्षा की संभावनाओं को प्रसारित कर रहे हैं, यह शैक्षणिक विकास का अग्रगामी कदम है, जो कि (उदाहरणस्वरूप उच्च शिक्षा) एक ओर होगा, वहीं दूसरी ओर सामाजिक स्तरीकरण (समानता) के लिए बड़ा तंत्र भी उपलब्ध होगा। कई वर्षों बाद अब सोलह से तीस वर्षों के सभी युवक आज न्यूनतम रूप में नवीं श्रेणी तक शिक्षित हैं। लेकिन जो लोग किन्हीं सामाजिक कारणों से अपना अध्ययन नहीं पूरा कर पाए, या काम करने लगे, हम उन्हें भी शिक्षित करने का प्रयास कर रहे हैं। हमने उनके लिए समसामयिक, विविधतापूर्ण और आकर्षक पाठ्यक्रमों का निर्माण किया है और उन्हें वित्तीय सहायता भी दी है।

हमने यह कार्यक्रम सितंबर 2001 में शुरू किया था, और सितंबर 2005 में 45,000 से ज्यादा संख्या में इन छात्रों ने विश्वविद्यालय में प्रवेश पाया। ये लोग हमारे नागरिकों में सर्वाधिक क्रांतिकारी हैं, क्योंकि इन कार्यक्रमों ने उन लोगों का पुनर्जन्म किया है। सोचिए जहां कई लोग बिना शिक्षा प्राप्त किए समाप्त हो जाते थे, बिना रोजगार के समाप्त हो जाते थे, इन स्थितियों में वे अब कहाँ बचेंगे? और ध्यान रखिए कि बिना शिक्षा के कोई रोजगार नहीं, और रोजगार नहीं होता है तो सामाजिक समर्थन भी नहीं होता है, और सामाजिक समर्थन के बिना कोई सामाजिक परिवर्तन भी नहीं होता है।

वे कहाँ नुकसान करेंगे?

मैंने बीस से तीस वर्ष की उम्र वाले सभी कैदियों की स्थिति जाँचने के आदेश दिए। इस जांच का आदेश दिया गया कि इन कैदियों को किसलिए समाजवादी राज्य में सामान्य अपराधों के लिए जेल भेजा। इसमें हर व्यक्ति के मामले की जांच हुई। हमने पाया-यह अविश्वसनीय है-उनमें से मात्र 2 प्रतिशत लोगों ने ही सामान्य अपराध करके जेल की सजा पाई, जिनके बच्चे पेशेवर काम करने वाले या बौद्धिक हैं। आप देश के अच्छे स्कूल में जाएं, और वहाँ सामान्य के विपरीत बहुतायत में ऐसे छात्रों की संख्या है, जिनके पिता या अभिभावक पेशेवर काम करने वालों या बौद्धिकों के बच्चे हैं, जबकि उनमें से बहुत ही कम छात्र होंगे जो गरीब परिवार के बच्चे न हों। अच्छा होगा मैं आपको पूरी सांख्यिकी ही बताता हूँ।

शिक्षा के क्षेत्र में हम जो कुछ कर चुके हैं, अब हम उससे और बेहतर कर रहे हैं। कला प्रशिक्षण स्कूलों में 16,000 छात्रों ने शिक्षा प्राप्त की है। इन छात्रों ने बेहतरीन संस्थानों में बेहतरीन प्रतिष्ठा के साथ शिक्षा प्राप्त की है। ऐतिहासिक औसत की तुलना में यह संख्या सामाजिक व नस्लीय विभेदों का अब समानुपातिक है। यह केवल नृत्य में ही नहीं, जिसके लिए एक ही जातीय वर्ग को ही वरीयता प्राप्त थी, बल्कि संगीत, नाटक, चित्रकारी यानि सभी क्षेत्रों में-सभी किस्म की कला अभिव्यक्तियों में यह स्थिति है। और हम इससे बहुत ही खुश हैं। युवा व्यक्तियों को एकीकृत पाठ्यक्रमों का अध्ययन करने के लिए 'कार्य की तरह अध्ययन' की नवीन अवधारणा के अंतर्गत अब लगभग 1,13,000 छात्र स्कूलों में हैं। इन पाठ्यक्रमों का उन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लोगों के लिए निर्माण किया गया है, जिन्होंने किसी कारण से स्कूल छोड़ दिया था, और अब बेरोजगार थे। चिकित्सकीय विशेषज्ञता के लिए नए विद्यालय खोले गए हैं, जिनसे हमारा देश दिन-प्रतिदित बेहतर होता जा रहा है। हमने सैकड़ों कम्प्यूटर क्लबों की स्थापना की है, और दसियों हजार युवा लोग कम्प्यूटर शिक्षा के लिए खोले गए पॉलीटेक्निक संस्थानों में अध्ययनरत हैं, और सूचना तकनीक को समर्पित एक विश्वविद्यालय में 8000 से ज्यादा छात्र अध्ययन कर रहे हैं।

यदि किसी कार्यक्षेत्र में नौकरियों में कटौती होती है, या अधिक प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है तो हम तरक्की के लिए कुछ लोगों को स्कूल भेज देते हैं, और इस दौरान उनको पूरा वेतन भी देते हैं। यद्यपि यह स्वैच्छिक आधार पर ही होता है। हमारी अपनी कुछ परिस्थितियों के कारण एकात्मक उत्पादन क़ो ध्यान में रखते हुए इस व्यवस्था की क़ीमत ज्यादा होती है, जैसे गन्ना उत्पादन में कार्यरत श्रमिक, लेकिन हम उन्हें भी पूरा वेतन देते हैं। हम यह यही करते हैं।

क्यूबा में कितने छात्र हैं ?

वर्तमान में 600,000 से ज्यादा छात्र हमारे विश्वविद्यालयों में हैं, जो विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में अध्ययन कर रहे हैं। वे नागरिक जो अर्हता व पुनर्अर्हत प्रमाणित करते हैं (जैसे प्रशिक्षण और पुनर्प्रशिक्षण के दौरान ऐसे लोगों को चिन्हित किया जाता है, क्योंकि सामान्य रूप से ऐसे लोगों का शिक्षा के प्रति सकारात्मक रुख होता है)। उन्हें एक गतिविधि से दूसरी गतिविधि में स्थानांतरित किया जाता है, और वे दूसरे कार्य करने में सक्षम होते हैं। उन युवा छात्रों में 90,000 से ज्यादा युवा होंगे जो न तो स्कूल ही गए, न ही काम करते थे-आप कह सकते हैं कि इनमें से कई तो बहुत ही ग़ैरवरीय स्थिति में रहते थे, आज विश्वविद्यालय केन्द्र हैं। 169 म्युनिस्पल केन्द्र (कैम्पस) हैं, जो सीधे तौर पर उच्च शिक्षा मंत्रालय के अंतर्गत हैं, भूतपूर्व गन्ना केन्द्रों में भी 84 विश्वविद्यालय केन्द्र हैं, जेलों में भी 18 विश्वविद्यालय केन्द्र हैं, जो बिल्कुल ही कुछ समय पूर्व स्थापित किए गए हैं, और 169 म्युनिस्पल विश्वविद्यालय सार्वजनिक स्वास्थ अध्ययन के लिए हैं, 1,352 पॉलीक्लीनिक स्वास्थ इकाईयों और रक्त भण्डारों में हैं। इनमें पूर्णकालिक व अल्पकालिक दोनों ही श्रेणियों के अध्यापकों के साथ लगभग 100,000 के लगभग अध्यापक हैं। कई लोग जो गन्ना केन्द्रों और अन्य स्थानों पर प्रशासनिक तंत्र में कार्य करते हैं, वे भी आजकल कक्षाएं लेते हैं, वे सहायक प्रोफेसरों की तरह कार्य करते हैं। मैं उन लोगों के बारे में नहीं कह रहा हूँ, जो विश्वविद्यालय में काम करते हैं, लेकिन छात्र व अध्यापक की दो श्रेणियों के बीच लगभग 600,000 लोग हैं।

द्वारा रितु गुप्ता, ए ए आई ग्रुप, सी डेक
एनएसजी आईटी पार्क, छठवां माला, सरजा होटल लेन
औंध, पुणे (महाराष्ट्र)
मो. 09420732622

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रेस व पुस्तक पंजीयन अधिनियम 1847 (संशोधित 1955) धारा 5 के अनुसार त्रैमासिक प्रगतिशील वसुधा के स्वामित्व तथा अन्य तथ्यों के संबंध में विवरण

1. प्रकाशन का नाम	:	प्रगतिशील वसुधा
1. प्रकाशन का स्थान	:	भोपाल (मध्यप्रदेश)
3. प्रकाशक का नाम	:	राजेंद्र शर्मा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	एम-24 निराला नगर, दुष्यंत मार्ग, भदभदा रोड, भोपाल
4. मुद्रक का नाम	:	महेन्द्र गगन
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	25-ए, प्रेस काम्पलेक्स, एम.पी. नगर, भोपाल
5. सम्पादक का नाम	:	स्वयं प्रकाश
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	3/33, ग्रीन सिटी, ई-8, अरेरा कॉलोनी भोपाल
6. उन लोगों के नाम और पते जो समाचार पत्र के मालिक हों और जिनके पास कुल पूंजी का एक फीसदी से अधिक हिस्सा हो।	:	मध्यप्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ द्वारा राजेंद्र शर्मा एम-24 निराला नगर, दुष्यंत मार्ग, भदभदा रोड, भोपाल
7. कुल पूंजी में एक फीसदी से अधिक हिस्सेदारी रखने वाले शेयर होल्डरों के नाम और पते	:	लागू नहीं

घोषणा

मैं, राजेंद्र शर्मा, घोषणा करता हूँ कि ऊपर दिये गये विवरण मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार सही हैं।

दिनांक : 31 मार्च 2012

राजेंद्र शर्मा
प्रकाशक
म.प्र. प्रगतिशील लेखक संघ के लिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

D-70974

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

प्रगतिशील
वसुधा
RNI No. MPHIN/2005/14693
वर्ष 8, अंक 2, जनवरी-मार्च 2012

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

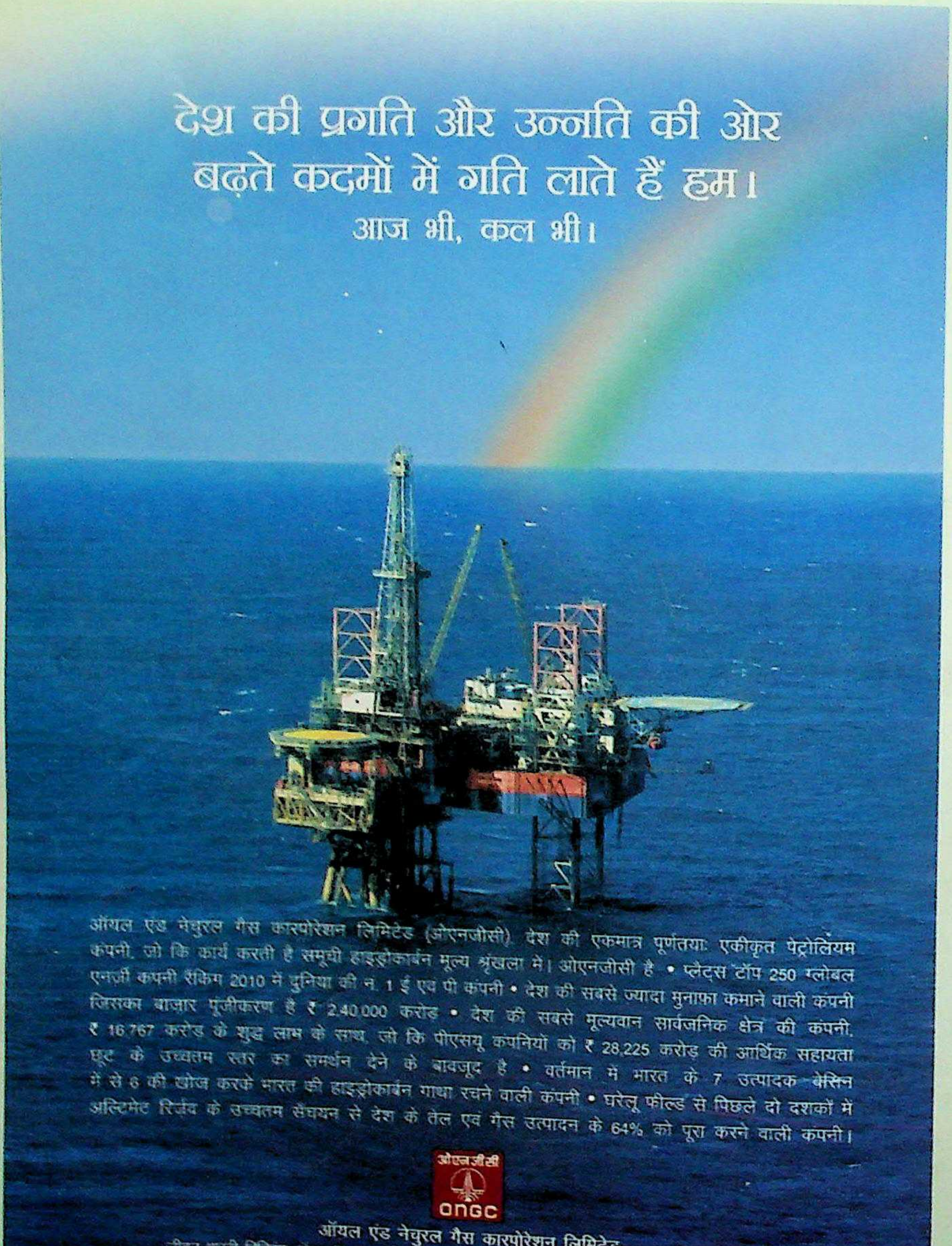

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant